श्रीमद्भागवत

एकादश स्कन्ध भाषा

प्रकाशक—
मास्टर रामगोपाल शर्मा......

श्रीमद्भागवत

एकादश स्कन्ध भाषा

लेखक

स्वामी सन्तदासजीके शिष्य

स्वामी चतुरदासजी संवत् (१६५२)

प्रकाशक

मास्टर रामगोपाल शर्मा

प्रथम वार १०००] संवत् १९८४ [मूल्य १)

प्रकाशक—
मास्टर रामगोपाल शर्मा
नं० १० बी, चित्तरञ्जन एवेन्यू,
कलकत्ता।

मुद्रक—
गंगाप्रसाद भोतीका
एम० ए०, बी० एल० काव्यतीर्थ के
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन, कलकत्ता।

भूमिका

संसारमें मनुष्य-शरीरका मिलना अतीव दुर्लभ है, चौरासी लक्ष योनियोंमें जब यह जीव भटक आता है तब कहीं यह पावन नरदेह प्राप्त होती है अर्थात् जन्म-जन्मान्तरके पापोंसे मुक्त होनेके लिए यही एकमात्र अवसर प्राप्त होता है, इसी एक योनि द्वारा मनुष्य अपने आपको जैसा चाहे वैसा बना सकता है; अर्थात् मोक्षका साधन होना इसी शरीर द्वारा सम्भव है। तब मनुष्यका क्या कर्त्तव्य है? क्या यही कि आजन्म माया-जालमें फंसे रहकर अन्तमें फिर चौरासीका मार्ग ग्रहण करना। नहीं, वरन् यह कि ईश्वरके आदेशानुसार चलकर परमपद पानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह अनुपम पद बिना भगवद्भक्तिके कदापि नहीं मिल सकता। भगवद्भक्ति ९ प्रकारकी है; जैसे प्रेम, श्रद्धा, सेवा, पूजा, अर्चा, वंदना, स्मरण, श्रवण, कीर्तन। इनमेंसे चाहे जिसे करके मनुष्य वैकुण्ठधाममें स्वच्छन्द विचर सकता है। हमारा देश धर्मप्राण देशोंमें है, यहां उक्त विषयक ग्रन्थोंकी कमी नहीं। अनेकानेक अद्वितीय ग्रन्थ यहां थे और हैं। प्रचलित ग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवतको लोग बड़े चाव और भक्तिके साथ सुनते-सुनाते हैं। परन्तु इसका वास्तविक रस वही पान कर सकते हैं, जो देववाणी संस्कृतको जानते हैं। परन्तु हमारे भारतवर्षमें अनेक विद्वान् ऐसे हुए हैं कि जिन्होंने वेदान्तकी कठिन-से-कठिन ग्रन्थियोंको भी बड़ी सरल रीतिसे सुलझाकर सर्वसाधारणके कल्याणके लिये ज्ञानका मार्ग सरल और साध्य बना दिया है। पाठकोंकी सेवामें निवेदन है कि रात्रि-दिवा अपने समयको व्यर्थ बिताना उचित नहीं, बल्कि किञ्चित् समय अपने पारलौकिक हितके लिए भी लगाना चाहिये। इसके लिये सर्वोत्तम साधन श्रीमद्भागवत है। और इसका एकादश स्कन्ध तो दर्शनशास्त्र-सागर है। इसमें स्वयं श्रीकृष्ण भगवानने उद्धवजीको वेदान्तका

अनुपम उपदेश सुनाया है, इसके अध्ययनसे मनुष्य निश्चय ही मुक्तिको प्राप्त होता है। परन्तु यह विषय इतना कठिन है कि सर्व साधारणकी समझमें नहीं आ सकता। इसलिये मुझे यह लिखते हुये अतीव हर्ष होता है कि श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धका एक भाषानुवाद श्री चित्रकूटान्तर्गत रियासत चौबेपुर निवासी पंडित वल्लभीनंदनजी त्रिपाठीके पास मिला, जिसे आप इस समय अपने करकमलोंमें देख रहे हैं।

यह पुस्तक मिती ज्येष्ठ शुक्ला षष्टी सं० १६५२में राजपूताना प्रान्तान्तर्गत श्रीमहात्मा संतदासजीके शिष्य स्वामी चतुर्दासजीने लिखी थी। इसके आदिमें स्वामी सन्तदासजी तथा स्वामी राम-सरणदासजीकी वाणियां भी हैं। लेखक महात्माका कोई जीवन-चरित्र नहीं मिला, इसके लिये अन्वेषण कर रहा हूं, यदि मिला तो इन्हीं महात्माकी एक दूसरी हस्तलिखित किताब महाभारत-का इतिहास है, (जो मुझे एकादश स्कन्धके साथ प्राप्त हुई है) उसके साथ ही पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करूंगा। मैंने इस पुस्तकमें विशेष संशोधन नहीं किया। केवल ह्रस्व-दीर्घ मात्राएं जहां बहुत खराब मालूम होती थीं उनको सुधार दिया है। पाठकगण इसकी भाषा पर कुछ ख्याल न करें, बल्कि विषयकी उपयोगितापर ही ध्यान दें। इसका विशेष सुधार करना मुझ जैसे अज्ञान व्यक्तिकी साहस-सीमाके बाहरका काम था, यदि पाठकोंने इसे अपनाया तो आगामी संस्करणमें समुचित संशोधन कर दिया जायगा।

अन्तमें मैं श्रीमान् कुंवर श्रीनिवासदासजी पोद्दारको हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इस पुस्तकके प्रकाशित करानेमें धनकी पूर्ण सहायता दी है।

भवदीय,
रामगोपाल शर्मा,
श्रीशभवन (कलकत्ता)।
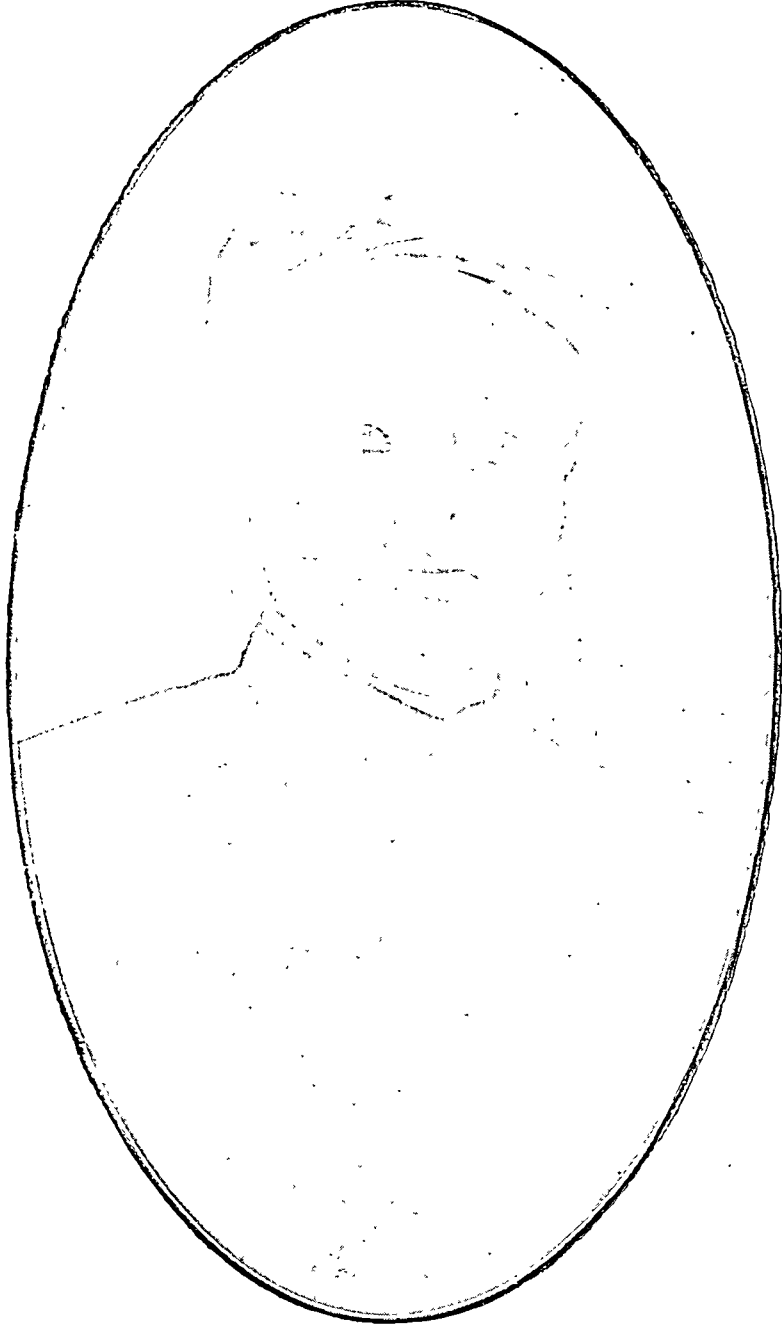
वैश्य कुल-भूषण श्रीयुत बा० श्रीनिवासदासजी पोद्दार,
रामगढ़ (सीकर)
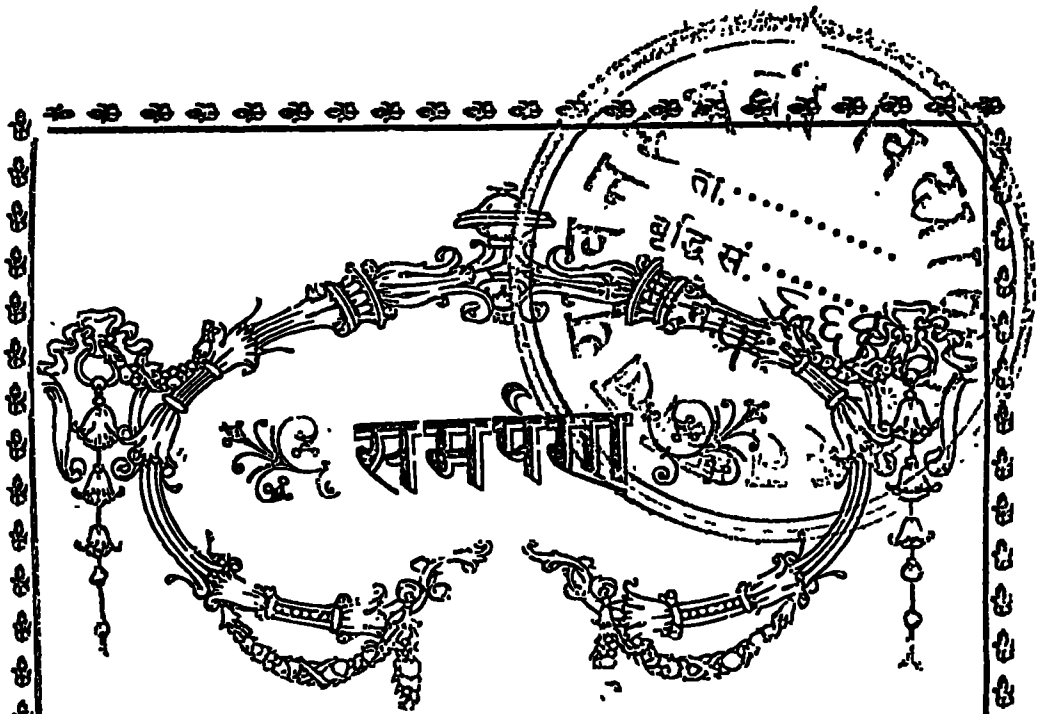
मारवाड़ी-समाजके समुज्ज्वल रत्न

श्रीमान् सेठजी श्रीकेशवदेवजीके सुपुत्र

कुंवर श्रीनिवासदासजी पोद्दारकी

सेवामें ।

आपकी हिन्दी-भाषा तथा दर्शनशास्त्रमें अतीव भक्ति है, अतएव आपकी ही कृपाके फलसे मुझ जैसे असमर्थ और अनुभवशून्य व्यक्तिके हृदयमें हिन्दीकी सेवा करनेका भाव उत्पन्न हुआ है। इसलिये आपके अखण्ड प्रेम और असीम कृपा एवं दयालु तथा धर्मप्राण हृदयके उपलक्षमें आपके ही प्रेमकी यह वस्तु श्रीमान्‌के कर कमलोंमें प्रेम-चिह्न स्वरूप सादर सप्रेम समर्पित कर आशा करता हूं कि इस तुच्छ भेंट को अस्वीकार न करेंगे।

भवदीय कृपाभिलाषी,

रामगोपाल ।

—:वृन्दावनविहारिणेभ्यो नमः—

श्रीमद्भागवत
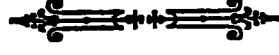
एकादश स्कन्ध भाषा

तत्रादौ स्वामी संतदासकृत साषियां

प्रथम साषी गुरुदेवके अंगकी

स्तुति

अणुभै[1] पद[2] प्रकासके, दाइक[3] सतगुरु राम।
नन्त[4] कोटि जन साहिबी, ताहि करूं परनाम ॥१॥

सतगुरुको एकहु सबद, जो मन लेवै मानि।
सन्तदास सहजहिं लहै, मुसकिल सूं आसानि ॥२॥

सतगुरु अकरनको[5] करयो, करन[6] दास लघु जानि।
रामनामकी ह्र रही, रोम रोम रज ध्यान ॥३॥

सन्तदास तिहुं लोकमें, सन्तसिरोमणि येहि।
बिछड़्या पूरब जन्मका, कंत मिलाया जेहि ॥४॥

सतगुरु मेल मिलाइया, सुरति सबदका संग।
सन्तदास नहिं छूटही, लगा करांरा रंग ॥५॥

रामनाम सिम्भू[९] सबद, ध्यावत नित सिव सेस।
सतगुरु पावन शब्दको, दीन्हों सुचि उपदेश ॥६॥

---

१ अनुभव २ पद ३ देनेवाला ४ अनन्त ५ असम्भव ६ सम्भव ७ ध्यान पका ९ स्वयंभू अर्थात् स्वयं उत्पन्न।

संतदास सतगुरु कहैं, सुनो हमारी सीख ।
राम छांड़ि करि मत मरो, अगल बगलको भीख ॥७॥

मांडी१ होती सन्तदास, जो सतगुरु मिलता नाहिं ।
नेक२ जन्मका आंतरा३, भागा इस भौ४ माहिं ॥८॥

सतगुरुके दीदार५ में, सन्तदास फल एह ।
राम मिलनकी जुगति कूं, एह बतायां देह ॥९॥

राम रच्या जिनजीव कूं, चौरासीमें जाहिं ।
गुरुका रचिया राम भजि, मिलै रामके माहिं ॥१०॥

रामनाम सूधाई६ दरा७, सतगुरु दिया बताय ।
सन्तदास जो चालई, निश्चय सुरपुर जाय ॥११॥

सन्तदास गुरु ग्यान बिन, हिरदै नहीं प्रकास ।
हरयो भरयो कैसें रहे, छानि ऊपला पास ॥१२॥

अथ साखी सुमिरणके अंगकी

राम शब्द जा मनुजको, विसरत कबहूं नाहिं ।
सन्तदास लव भजनकी, लाग रही मन माहिं ॥१॥

राम कह्यां सू पहुंचिया, मुकति तरणम घर माहिं ।
सन्तदास यहि बातमें, फेर सार कछु नाहिं ॥२॥

आदि अन्त लगि एकसी, रहै रामसूं प्रीति ।
सन्तदास नर देहकी, वे गये जो बाजी जीत ॥३॥

राम भजनको लगि रहै, तलबानो मन माहिं ।
सन्तदास उद्यम करूं, आरम्भ करिये नाहिं ॥४॥

सन्तदास वह इन्द्रसूं, नर बड़ भागी होय ।
रामनाम जो दिवस निस, याद करत है सोय ॥५॥

---

१ किरकिरी २ अनेक ३ भ्रम ४ जन्म ५ दर्शन ६ सरल ७ मांग ८ ताना ।

रामनाम सुख शान्तिमें, जो सुमिरै नर कोइ ।
सन्तदास मुक्ती लहै, मनबांछित फल होइ ॥६॥
सन्तन पैड़ी एक है, प्रभुको नाम अधार ।
चढ्यो जो साँस उसांससे, पाया हरि दीदार ॥७॥
राम भजनमें रामके, पावैं नर दीदार ।
सन्तदास बिन भजनके, पचमूवा संसार ॥८॥
राम क्रिया जब होत है, कह्यौ जात तब राम ।
सन्तदास बिनहीं क्रिया, होत नहीं ए काम ॥९॥
रामभजनकी औषधी, जो अठ पहरी खाय ।
संतदास जो रुचि पचै, चौरासी मिटि जाय ॥१०॥
भिन भिन करि आराधना, तीन लोक रह्यौ जोय ।
सन्तदास, सम रामके, दुतिया नाहीं कोय ॥११॥
भटक भटक देख्यो घनो, करि करि बहुत उपाय ।
सन्तदास सागर तिरन,एक नाव प्रभु नांव ॥१२॥
सब जग मैला देखिये, निर्मल नाहीं कोय ।
सन्तदास प्रभु नामसूं, मिलै सो निर्मल होय ॥१३॥
आकासा ध्रुव कहत हैं, कहत पताला सेस ।
सन्तदास मधि लोकमें, रामहिं कहत महेस ॥१४॥
राम भजनसूं पहुंचिया, आगे ही संपत्ति ।
सन्तदास उन जीवको, सहजहिं भई मुकत्ति ॥१५॥
सन्तदास सिव यो कहो, सुणिज्यो सब्दा माहिं ।
रामनामसूं अधिक तन, तीन लोकमें नाहिं ॥१८॥

राम निरंजन राय सों, जग समरथ नहिं कोय ।
पलक माहिं परलै करै, संतदास पुनि जोय १ ॥१७॥
धनवन्तां निर्धन करै, निर्धनियां धन देय ।
सन्तदास नहिं जान कोइ, करताकी गति ऐह ॥१८॥
रामनामके मोरचे, खबरदार नर होय ।
सन्तदास तिन लोक बिच, गंजिन सकि हैं कोय ॥१९॥
सिद्ध सब्द तिहुं लोकमें, रामनाम है एक ।
सन्तदास ता बीचसूं, निकसी सिद्ध अनेक ॥२०॥
सब पीरोंका पीर है, सब देवनका देव ।
सब सिद्धोंका सिद्ध हैं, ताकी करिये सेवा ॥२१॥
रामनाम जब नर कह्यौ, सब आयो यहि माहिं ।
सन्तदास तिन लोक बिच, कहन रह्यौ कछु नाहिं ॥२२॥
सन्तदास सत् सब्दसूं, गिर तरिया ३ जल माहिं ।
जिसदिन तो दूजा सबद, लिखिया कोई नाहिं ॥२३॥

अथ साषी उपदेशके अंगकी

रामनाम सुमिरन करयौ, संकर गौरि सुसेस ।
सन्तदास यह नाम है, सब काहू उपदेस ॥१॥
रामनामको ध्यान धरि, करि साधूकी सेव ।
सन्तदास इस भीतरै, मिलै निरंजन देव ॥२॥
सतगुरुके उपदेस सूं, रहै राममें रत्त ।
सन्तदास तब जायफट, चौरासीको खत्त४ ॥३॥

१ बनावे २ नष्ट करना ३ उद्धार हुये ४ लेख ।

हे स्वामी तुम अजब हो, मैं पूछत हूं तोहि ।
इन चौरासी जीवकी, कहो मुक्ति किमि होय ॥४॥
जो चाहौ करि आपनो, मुक्तिपुरी बिच धाम ।
तौ एकाग्र मन राखिके, निसदिन कहिये राम ॥५॥
मुक्ति लहै, प्रभु नामको, स्वास मध्य प्रति लेह ।
सन्तदास गुनिये खरो, समाचार है एह ॥६॥
अगल बगल भटकत रहै, सन्तदास बेकाम ।
जो चाहो मिलि मुक्तिसों, कहिये रामहि राम ॥७॥
सप्त दीप नौ खंडमें, राम नाम तत[1] सार ।
सन्तदास जेहिं काल नहिं, ध्यान धरै औतार ॥८॥
अवतारन हीं या कही, निज स्वरूप है नाम ।
जो चाहौ मुक्ती मिलन, निसदिन कहिये राम ॥९॥
सन्तदास रामहिं भजन, राजा तजि गये राज ।
मोती हीरा असतरी, और किते गज बाज ॥१०॥
सन्तदास सब राजके, छांड़ि छतीसों भोग ।
हरि रस पीवन काज हित, लियो भरथरी योग ॥११॥
राम भजनसों ऊबरौ, मिल्यौ रामसों जाय ।
ता पीछे राजा बली, केतेहि गये विलाय ॥१२॥
जो नृप रहते राजमें, भजें राम चित लाय ।
सन्तदास तेहिं राजहो, मिलैं रामजी आय॥१३॥
सन्तदास जे सन्तजन, सत ही कहें सुभात ।
और सबै ही करत हैं, ललो पतोकी बात ॥१४॥

---

१ तत्व।

संतदास साखी सबदजे कहत कुहावत राम।
गहला१ दुनियां बावली, लेत औरका नाम ॥ १५ ॥
आद इष्ट जोहि रामको, सही मुकति ले जाय।
संतदास दूजा इस, धरै सो खोटा खाय ॥ १६ ॥

॥ अथ साखी चेतावनीके अंगकी ॥

संतदास प्रभु नामकी, मोड़ी२ पड़ी पिछान।
बालापन बहु दिन गये, केतिक गये अजान ॥ १ ॥
राम भजनसे जोइ नर, ग़ाफ़िल रहत गंवार।
नहिं सोचत यह देह नर, मिलै न वारम्बार ॥ २ ॥
संतदास चेत्यौ नहीं, मानुष देही मांहि।
अबका बिछुड्या रामसूं, सो मिलता फिर नाहिं ॥ ३ ॥
संतदास आयो पहर३, होइ सहरा४ इस माहिं।
बार बार नर देहका, चेहरा मेंडली५ नाहिं ॥ ४ ॥
रामनामसूं रैन दिन, जो न रम्यौ एक सार।
संतदास नरजन्मकी, वे गया जो बाजी हार ॥ ५ ॥
राम नामको ध्यान बिच, धारि सके तो धारि।
संतदास पीछे पड़ै, गा आड़ा जुग चारि ॥ ६ ॥
बीते चारि जुगानके, नर पावै एक बेर।
संत, भजन प्रभु रामको, मोसर मिलै न फेर ॥ ७ ॥
मानुष देही पाइके, राम न ॱन्यौ एक।
सोइ चौरासी जोनिमें, धरसी जनम अनेक ॥ ८ ॥

१ अज्ञान २ विलम्बसे ३ समय ४ सचेत ५ न बनेगा।

लख चौरासी भोग करि, पाई मानुष देह ।
संतदास बिन भजनके, पुनि चौरासी एह ॥ ९ ॥
रामनामके मोरचे, गाढ़े रोपो पांव ।
संतदास औसर गये, मोड़ा[१] आसी दांव ॥ १० ॥
संतदास प्रभु नामको, करि रे करि कछु याद ।
मूरख मिनषा जन्मकी, देह जात है बाद ॥ ११ ॥
काची माया कारने, झुरि मूवा संसार ।
संतदास नहिं संग चले, अंत कालकी बार ॥ १२ ॥
रामनामकूं छाड़ि करि, दूजो करत सुपास ।
संतदास सो भूगतै, जन्म जन्म जम त्रास ॥ १३ ॥
संतदास निश्चै मरण, जाना है जग छोड़ि ।
तंह लेखा देना पड़े, वह डारै मुख तोड़ि ॥ १४ ॥
संतदास दीरघ दिनन, अदल हिसाबी एह ।
नेकी सब भर देयगा, बदी सबै भरि लेय ॥ १५ ॥
संतदास बिनसै जगत, बिरथा भोग विलास ।
जाके जैसे कर्म हैं, सुरपुर होय निकास ॥ १६ ॥
राम बिना दम जात हैं, बिनिदिनि बंदि न जाय ।
संतदास उन क्या किया, मिनषा देही पाय ॥ १७ ॥
अन्न दिया नहिं हाथसूं, मुखसूं कह्यौ न राम ।
संतदास नर देह यह, ज्यों पाई बेकाम ॥ १८ ॥
संतदास नहिं राम कहि, हाथों दे॰ कोइ ।
लख चौरासी जोनिमें, चुग करि खावें सोइ ॥ १९ ॥

---

१ देह सें

संतदास नर देहका, जो धालो फल यह ।
के भजिये करतारको, के कछु करसे देह ॥ २० ॥
राम कहत अरु देन कर, दुलभ हैं ये दोय ।
संतदास सोही करै, बड़ भागी जो होय ॥ २१ ॥
माया बरती१ ही भली, संचित कीजे नाहिं ।
जन्म जन्म आगे मिले, सुजस रहै जग माहिं ॥ २२ ॥
संतदास माया जगत, उड़ती है वेकाम ।
अरथ न लागे रामके, जाको ठीक न ठाम ॥ २३ ॥
दुनिया अपजस कारणे, सब धन देत लुटाय ।
उन दीया उन जस किया, समोसमां होइ जाय ॥ २४ ॥
धन खरचे आधो दुनी, तामें सुद्धि न काय ।
संतदास एक राम बिन, जमके लेखे जाय ॥ २५ ॥
संतदास जो सम्पति, निमित रामके जाय ।
तो जन्म-जन्म उस जीवकूं, रजू होयगी आय ॥ २६ ॥
संतदास माछर सरिस, है तेरो उनमान ।
अंत प्रलय ह्वै जायगी, काहे करै गुमान ॥ २७ ॥
पाव घड़ी आधी घड़ी, घड़ी पहर अब जाम ।
संतदास कछु बनहिं जो, कहिये केवल राम ॥ २८ ॥
साचा राम बिसारिया, काचा धारि सरीर ।
संतदास जावै बिनसि, आज कालिहमें बीर ॥ २९ ॥
संतदास घर धंधका, करत करत ही काम ।
नर देही छुटि जाय जब, कब रे कहोगे राम ॥ ३० ॥

---

१ खरचना

अंधकार संसार है, सूझत नाहीं राम ।
आप आपसूं लगि रह्या, अपणौ अपणौ काम ।। ३१ ।।
दिवस गुमायौ धंध करि, रैन गुमाई सोय ।
संतदास इस रामका, यूं तो भजन न होय ।। ३२ ।।

इति श्रीसंतदास कृत साषी समाप्तः

अथ स्वामी

श्रीरामचरण महाराजकी साषी

प्रथम साषी गुरुदेवके अंगकी स्तुति

रमतात राम गुरुदेवजी, पुनितिहूं कालके संत ।
जिनकूं रामाचरणकी, बंदन बार अनंत ।। १ ।।
ब्रह्म रूप गुरु संतजू, प्रगटे जनहु कृपाल ।
राम चरण बंदन करै, सतगुरु परम दयाल ।। २ ।।
बंदन करि बिनती करूं, सुनौ परम गुरु आप ।
राम चरणकी अरजगे, भौ में हरष संताप ।। ३ ।।
रक्षाकर गुरुदेव हैं, देवे सांचो जाप ।
राम चरण सुख स्वांति करि, मेटै सकल संताप ।। ४ ।।
नमो निरंजन रामकूं, नमो गुरु गणऽपार ।
राम चरण बंदन करै, मैं तुम्हरे आधार ।। ५ ।।
राम चरण गुरु ज्ञानमें, तन मन रहे समाइ ।
ऐसी स्तुति सब सधी, गुर सिखलोपिन जाइं ।। ६ ।।

गुरु गुसाईं सिर तपै, राम चरणके ईस।
राम गुसई उर बसैं, गुरां तरणी बगसीस॥ ७ ॥
राम निरंजन देवको, राखूं उर विश्वास।
गुरु बाइक साहिक सदां, राम चरण निज दास॥ ८।
गाइ गाइ गुरु रामका, राम रूप मिलि जाय।
सो सरूप अनन्द मय, सतगुरुजी सूं पाय॥ ९॥
राम चरण सतगुरु बिना, सुखिया करै न कोय।
सुन नर रामां रावजी, सबही दुखिया जोय॥ १० ॥
सतगुरु सोहो सांचरे, मेटि भरमनां कांच।
राम चरण तेहि अर्पिये, अपने मनको सांच॥ ११ ॥
आरा सिमधि चित्रामको, प्रती बिम्ब दरसाइ।
सिख सुचेत गुरु ज्ञान लखि, सुनि मुख उदय कराइ॥ १२॥
ज्ञान सुचेती सूं लहै, लहै मूढ़ प्रकास।
जो अरक होय बहुंता उदै, तो नहिं अन्ध उजास॥ १३॥
राम चरण गुरु कथा करै, जो सिख हिये कठोर।
ज्यों लोहरका मैल परि, नहिं पारसको जोर॥ १४॥
राम चरण हमकूं दिया, सतगुर तत्त अनूप।
रामनाम पिछनाइया, सब नामां सिरभूप॥ १५॥
छांड़ि मनोरथ कामनां, राम [illegible] लौ लाइ।
राम चरण विसराम पद, गुरु क्रिपासूं पाइ॥१६॥

---

१ शान्ति २ अपार ३ गुरुकी।

सत गुरु दाता मेघ ज्यूं, बरसि भरे सर ताल ।
मंह भागीरीता रह्या, जिनमें फूटि न पाल ॥१७॥
सरणहि ले सतगुर दिया, सुमिरण सील सँतोष ।
काम कल्पना क्षोभता, मेटि किया निर्दोष ॥ १८ ॥
राम चरण समरत्थ गुरु, कर समरत्थ उपकार ।
आपहि मारग मुक्तिको, कांपै बिपति अपार ॥ १६ ॥
रामचरण तन रोगका, वह दारू वह वेद ।
सतगुरु ऐसा कीजिये, कहै चौरासी कैद ॥ २० ॥

॥ अथः साखी सुमरणके अंगकी ॥

रामचरण इकतार सूं, भजिये केवल राम ।
तजिये दूजी भरमना, तब पावै विसराम ॥१॥
रामचरण भजि रामको, दूजि दुरासा खोइ ।
सब आया इस एकमें, न्यारा रह्या न कोइ ॥२॥
सबही रचना रामकी, राम सकलके माहिं ।
रामचरण जिनकूं भजे, न्यारा रहै जु नाहिं ॥३॥
न्यारा न्यारा साधतां, पार न पावै कोइ ।
रामचरण भजि रामकूं, जेहि सब साधन होइ ॥४॥
रसनां रहतां रामकूं, खुलि हैं अमृत सीर ।
रामचरण सों चाखिके, निश्चय करि [illegible] बीर ॥५॥
रामभजन आग्यां लगूं, कलियुग माहिं विशेष ।
रामचरण बरती कहै, जो अपने भई सो देख ॥६॥

रामचरण खेती फलै, जो पावै समय पिछाण ।
करषण वही कमाइये, सो ऋतु बिन निफल जाण ॥७॥
वरणाश्रम कुल कर्म तजि, विधि निषेधको सर्म ।
रामचरण भजि रामकूं, यह अविनासी धर्म ॥८॥
ये अविनासी धर्म है, सरम रहत सुखरूप ।
सर्व धर्म या मध्य हैं, भजिया लहै अनूप ॥९॥
रामचरन आकाशमें, सब उडगनको बास ।
ऐसें सब भ्रम नाममें, भजै सो साधै दास ॥१०॥
रामनाम साबण सरस, निरस मैल धुपि जाय ।
पलै बंध्यां उजलै नहीं, धोया ऊजल थाय ॥११॥
अक्षरमल मलचर हरै, जल मल हरै पवन ।
यूं रामनाम मन मल हरै, दूजा हरै सो कवन ॥१२॥
दूजी ठाम न जाय अब, रहै रांम सूं बानि ।
पावन करता राम है, निरमल बारि समानि ॥१३॥
पक्षी उड़त आकाशमें, यथा शक्ति उनमान ।
यूं राम भजन परतापको, करि गये संत बखान ॥१४॥
निर्भय यह निर्वाणको, होत न एक प्रमाण ।
तोल माप आवै नहीं, भजै सो हो निरबाण ॥१५॥
निरबाणू निर्भय सदा, राम अखंडाकार ।
नाम रूप यह नाव है, भौजल तारन हार ॥१६॥
जगदीश जगत गुरु आप हैं, ताप मिटावण जोग ।
रामचरण भजिये सदा, कहा न व्यापै सोग ॥१७॥

शोक मिटावन राम है, यों सबको निरधार ।
सबहीके सिर सोभहीं, निजू स्वार मसार ॥१८॥
सावन भादव मास दोइ, यूं स्रो समो दोइ स्रण ।
वे समयो सुरभिष करें, ये जापक अभय करन ॥१९॥
समरथके संशय नहीं, निःसंशै वरताइ ।
रामचरण जैसी वखत, तैसी करै सहाइ ॥२०॥
नामाके भारी भयो, फोरौ सिला तिरात ।
रामचरण समरथ करै, दोइ दशा कुशलात ॥२१॥
लोक माहिं भारी सुजस, कुनि फेरो परलोक ।
रामचरण सुमरत सुखो, सो भी करत विसोक ॥२२॥
यथा अरथ देखी सबै, अपनी दृष्टि निहारि ।
धरम भगति खेती कहाँ, कीजे समय विचारि ॥२३॥
रति बायां धरनीपजै, प्रापति फलता माहिं ।
बोआ भल बरसी अभो, रति बिन निवजै नाहिं ॥२४॥
चार वेद षट शास्त्र हैं, अरु व्याकरण पुरान ।
रामचरण इन सबनको, है निज नांव निधान ॥२५॥
रामनाम औषद खरी, करी जानाए ठीक ।
जो कोइ गाहक पूछि हैं, जाको देये शोक ॥२६॥
जी औषध सूं आपको, गयो भरमको रोग ।
जो कोइ रोगी जांचि है, तो वह देवै योग ॥२७॥
रामभजनकी धारणा, जिन धारी दिल माहिं ।
ये बड़भागी सूं बनै, मंद भागी सूं नाहिं ॥२८॥

निस दिन भजिये रामकूं, तजि गल्ला१ बकवाद ।
तन मन हरि हित लाइये, परिहर द्वेष फसाद ॥२६॥

राम भगति रावत२ करै, रंका सूं नहिं होय ।
जीतै रावन कामना, रंक कुटाइल सोय ॥३०॥

रामभजन या पण करै, अरु करै भजन उपदेश ।
रामचरण उनकी सही, होवै मुक्ति प्रवेश ॥३१॥

निरमल नांव उचारता, मन निरमल होय जाहि ।
सास उसासां लै बंधे, सुमरत झोलन खाहि ॥३२॥

उभे अखिर बिच आइया, निराकार आंकार ।
रामचरण माया विरन्ह, भजो रकार मकार ॥३३॥

नाम अनल बहु तेजवत, जारे पाप कठोर ।
बड़े बड़े अघवंतके, मेटि नरक अति घोर ॥३४॥

अधम उधारण भै हरण, विपति निवारण राम ।
रामचरण भजि तासुको, तजि और भरमना काम ॥३५॥

सरणो लीजे सबलको, जो सरणै होय सहाय ।
निबलाको सरणो कहां, जो सुतै दबावै आय ॥३६॥

अथ साखी पतिव्रताके अङ्गकी ।

धरताकी नहिं धारणा, करता मेरे एक ।
रामनिरञ्जन गुरु कह्यौ, सोही निह्चै टेक ॥१॥

मैं मुख सुमिरु एक रस, परम सनेही राम ।
दूजी दृष्टि न देखहूं, तो पतिवरता नाम ॥२॥

---

१ झठो बातें २ भक्ति विषयक,अमीर ३ भक्ति शन्य ४ पिटनेवाला

साईं मैं तेरा नफर१, तेरा ही इकतार ।
इकतार२ बिना क्या नफरगी, नहिं साईं के इतबार ॥३॥
इकतार लियां सो आसकी, महरि करै महबूब ।
बिन इकतार हुलास करि, महरि न पावै खूब ॥४॥
पतिबरताके पीव बिन, और न आवै दाय ।
भल कोई राजी रहौ, भलि कोइ रहौ रिसाय ॥५॥
साईं के सनमुख रह्यां, उभय लोक सुख होइ ।
वैराग सधै सुमरण वधै, बधै ज्ञान गति सोइ ॥६॥
रामचरण इकतार बिन, मन थिरता नहिं होय ।
सकल विकलता ऊपजै, वट वध मिटै न कोय ॥७॥
दुरसि नहीं दूजी धर्‌यां, कसर पड़ै पण माहिं ।
एक राम इकतारमें, कोइ न्यारा रहै जो नाहिं । ॥८॥
रामभजन इतबार तजि, और विचारै कोइ ।
भरमैं कोट उंचासमें, मन थिरता नहिं होय॥ ९॥
साईं समरथ एक रस, एकहिं रस वरताहिं ।
पै महरि जानियो सांचमें, सांच चुरायां नाहिं ॥१०॥
पतिव्रतकी ऐसी सिपति, पतिहीको उर जाप ।
दूजा कूं दिल दे नहीं, सिर खावंद प्रताप ॥११॥
पतिबरता विचलै नहीं, व्यभिचारियांकी खेद ।
रामचरण गुरु ज्ञानको, जिन पायौ निज भेद ॥१२॥
पतिबरता जो ना करै, व्यभिचारिणिको संग ।
रामचरण जुग क्यों बंधै, जैसे सारि३ दुरंग४ ॥१३॥

१ सेवक २ एकाग्र मनसे ध्यान ३ लोहा ४ दुष्ट

पतिबरता बिभचारिणी, कैसे होय मिलाप ।
वाके सत्ता स्यामकी, यहि बहु पुरबांकी ताप ॥ १४ ॥
ताप मिटै पतिव्रत सूं, लगै रामको रङ्ग ।
व्यभिचारियां कूं भल कह्यो, यूं पतिबरता संग ॥ १५ ॥
पति बरताके संगते, बिभचारिण सुधरे आप ।
व्यभिचारिणके संगते, पतिबरता लगे कुछाप ॥ १६ ॥
कुलवंती कुलमारिगां, चल्यां मल्यां सब कोय ।
नकुली बहै कुमारिगां, घर बर लाजे दोय ॥ १७ ॥
सत बारन बिरली चले, बोहोलि उजड़ जाय ।
राम चरण भूलोकमें, वै जिय सरम गुमाय ॥ १८ ॥
सरम सबूरी नूर गति, कूर कहरनां माहिं ।
रामचरण गुर ग्यान गम, उन उर बिन्ध्यो नाहिं ॥ १९ ॥
राम चरण व्यभिचारसूं, धणी धकावे मार ।
जारांकी चाले नहीं, अबराइ जीं बार ॥ २० ॥
जार ख्वार कर देयगा, तातें तजिये तास ।
रामचरण मन जीतिये, तो गहि राम उपास ॥ २१ ॥
और धरम आरे करे,जप तप तीरथ दान ।
राम भजन निरबासना, कोइ बिरला माडे कान ॥ २२ ॥
जगत अराधे आनसुर, भगत जगत पति सेव ।
रामचरण निर्वासना, तो अस बासा लेव ॥ २३ ॥
पंच तत्व गुण तीनकी, भरि विकारां देह ।
सो रोकै पति व्रतसूं, बिभचार कियां तजि देह ॥ २४ ॥

सबका साहिब एक है, जिन रच्या सकल ब्रह्मंड ।
रामचरण ताहि छाड़िकैं, कूंण भरै जमडंड ।।२५।।
पति मुरजादा लोपिकैं मनकै चलै सुभाइ ।
रामचरण बिभचारणीं, धरम गयां पिछताइ ।।२६।।

अथ साषी साधसंगतिका अंगकी

रामभजन करबो करै, संतजनांकौ साथ ।
रामचरण ऐसो वणैं, जो राम सम्हावै हाथ ।।१।।
मक्के जा भलि द्वारिका, भलि देवल और मसीत ।
रामचरण सतसंग बिनि, कोई न करै मन जीति ।।२।।
सतपुरसांका संगसैं, भूलि भरमनां भाजि ।
असति पुरस भरमाइदे, अपणां स्वारथ काजि ।।३।।
रामचरण षोटो संगति, जै भोलि भालिमैं होइ ।
परष भयांसैं त्यागीऐ, तो जाकौ दोस न कोइ ।।४।।
संगति सोधिर कीजीऐ, जीं करतां सुधरै काज ।
ऐसौ स‍ंग न कीजीऐ, जीं उलटो होइ अकाज ।।५।।
पहली परषिर कीजीऐ, उतिम आस निहारि ।
रामचरण पारष विनां, कीयौ कित जाइ हारि ।।६।।
संगति सार असारकी, पारष सोही सुचेत ।
बिनि पारष प्रवता करै, वै सब जहंग्रि अचेत ।।७।।
जो बरतन लेइ कुलालका, परषै देषि बजाइ ।
फूटां बाजै जो जरा, ताकूं दे छिटकाइ ।।८।।

संत सुलषणां सेवतां, सुलषण उदै कराइ ।
जैसौ रंग रंणीं हुतो, तैसा रंग चढ़ाइ ॥१०॥
जे जैसी संगति करै, तैसी लछिता होइ ।
न्हचल तो न्हचल करैं, चंचल चंचल सोइ ॥१२॥
ऐकैं रजाका कीया, फाड़ि नांतणां दोइ ।
तातिगणूं कालौ भयौ, गलणूं स्याम न होइ ॥११॥
चोर साहाकौ संग करै, तो चोरी छुटि जाइ ।
साहा बसै चोरां महीं, तो चोरपदीकूं पाइ ॥१२॥
सुबध्यां संगि पावै सुबधि, कुबध्यां कुबधि कलेस ।
जाउरि जैसी धारणां, सोही करै उपदेस ॥१३॥
कुबधि गुमाई चाहीऐ, तो सोधि करो सतसंग ।
रामचरण उपजै सुबधि, संतांकै प्रसंग ॥१४॥
दरसण संगति ऊंचकी, बरणीं बेदां मांहि ।
ऊंचाकूं नींची संगति, करणीं कहो ज नांहि ॥१५॥
ऊंच दसा नींची बिरति, जांहां ग्यांन न पावै कोइ ।
ज्यूं गतराड़ाकी सेझमैं, नहीं पूत परापति होइ ॥१६॥
ऊंची संगति अचाहकी, चाहो नींची जांनि ।
ऊंचै संगि आनंद बधै, नींचै बधै गिलांनि ॥१७॥
रामचरण ऊंची संगति, ज्यूं पारसका परसंग ।
लोहो पलटि कंचन करै, ऐसा उतिम अंग ॥१८॥
रामचरण आसै परषि, संगति कीजे जाइ ।
बिनि परष्यां संगति करै, तो फरि पीछै पिछताइ ॥१९॥

अरमाइल त्याणां तणीं, परप न उपजै काइ ।
तो रामचरण ताहि सारिषौं, कीजे परपत वाइ ॥२०॥
असलि आव नरपति करै, कै धनधारी होइ ।
मांड़ सवांयां कांकरा, नकलड़ी सोभा होइ ॥२१॥
नकल सोभ मानैं परा, सो नहीं परषणहार ।
परपै कोई विचषणां, जे समझै सार असार ॥२२॥
विवेकसूं संगति करै, सोही तिरै संसारि ।
रामचरण भजि रामकूं, करि कुसंग परहारि ॥२३॥
सतसंगति अघतिम हरै, करै ग्यांन उदोत ।
जन दांनीं निज नांवका, भौत्यारण वड़ पोत ॥२४॥
संगति सोभा बधै, प्रापति समता ग्यांन ।
रामचरण संसार संगि, है दुषरू पापांन ॥२५॥
संगति विनि सुधरै नहीं, नर पसु पंषी कोइ ।
अर संगतिही सूं बीगड़ै, जे पड़े कुसंगां सोइ ॥२६॥
साचौ सतसंग कीजीऐ, निसदिन साचै मन ।
संगति विनि भौ तिरणकूं, दूजो नांहि जतन ॥२७॥
जन जगपतिके दास है, नहीं जगतकी आस ।
दुषी जगत संगति करै, ताकूं देत निवास ॥२८॥
सदा संतोषी दासकी, संगति कीजे जाइ ।
आपण कुछि वंछे नहीं, देवै साच दृढ़ाइ ॥ २९ ।
व्यास कही भागोतमैं, कलिजुग केवल नाम ।
सोही संत सतगुर कहै, अब काहां औरसूं काम ॥३०॥

बीतराग सुष मुष सुण्यौ, नरप परीषत ग्यांन ।
जाकौ जांहां तांहां होइ रह्यौ, लछिपर वांणि बषांन ॥३१॥
गाड़ी नांवैं ऐक है, षांड षातकी सोइ ।
जामैं जैसी बुसत होइ, जिसौ जाबतो होइ ॥३२॥
साधूजन बोहो जांण है, जाकै उर परकास ।
रामचरण जन हंस है, मांनसरोवर बास ॥३३॥
रामचरण सबला करै, सबल ग्यांनकी पेल ।
निबला अजक लगाइदे, जे सांसाका मारेल ॥३४॥

अथ साषी न्हचाका अंगकी

रामचरण न्हचौ बड़ौ, न्हचै हरि बसि होइ ।
बिनि न्हचै क्यूंहीं करौ, कारिज सधि न कोइ ॥ १॥
अैसा होइ हरिकूं भजै, तब हरि पकड़ै हाथ ।
निस बासुरि संगि हो रहै,जनकौ तजै न साथ ॥२॥
जाकै चसमां ग्यांनका, षुलीया हिरदा मांहि ।
रामचरण वा समि सुषी, कोई धनवंत सुषीया नांहि ॥३॥
ग्यांन बिनां सुषीया नहीं, काहा लोक प्रलोक ।
जांहां जाइ तांहां दुषही, मिटै न सांसै सोक ॥४॥
सतपुरसांका संगतैं, भगै भरमनां भास ।
रामचरण गुरग्यांनसैं, उदै [illegible]भि परकास ॥५॥
रामचरण समझ्या सोही, रहै ममत सुरझांहि ।
ज्यूं जल उपज्या जलमैं रहै, पैं कवला लिपै ज नांहि ॥६॥

रामचरण करतार लगि, सबही करत न जोइ ।
करताकी न्हचै कीयां, न्यारा रहै न कोइ ॥७॥
निज सरूप दरस्यां विनां, सुषीया कैसें होइ ।
रामचरण गाढ़ी पड्यां, न्हचै रहै न कोइ ॥८॥

अग्यानींका अंगकी

धिक जिनूंका जीवणां, रह्या जगत लिपटाइ ।
सुपनै सुप पावै नहीं, निसदिन सांसौ पाइ ॥१॥
रामनाम जांण्यौं नहीं, दीयौ विकारां मन ॥
ज्यूं रतन चढ्यौ करि अंधके, षोयौ विनां जतन ॥२॥
नर सुधी न्यारा रहै, लिपै नहीं दुष तांहि ।
रामचरण नर बांदरा, उलझ पुलझ ग्रह मांहि ॥ ३ ॥
अग्यांनीं समझै नहीं, दीयां ग्यांनकी गांस ।
छार विनां सीझै नहीं, ज्यूं गधाकौ मांस ॥ ४ ॥
चहरै दीस मांनवी, उर अकलि प्रकटकी पूरि ।
जे समझाया समझै नहीं, उलटा षाइ लबूरि ॥ ५ ॥
काहा भयौ नरतन लह्यौ, लछि तो पसू समांनि ।
समझि न सार असारकी, दोऊ ऐक उनमांनि ॥ ६ ॥
षोटा बिणज्या याइ तन, कीयां करम अनंत ।
नरचहरो कहि कामको, चंचल जाकै चित ॥ ७ ॥
करताकी करतूतिकी, चरचा भी न सुहाइ ।
रामचरण संसारकी, अकलि चरषि चढ़ि जाइ ॥ ८॥

चरषि चढ़ि उतरै नहीं, फिरि फिरि अति उकलाइ ।
करता सेती बिमुष होइ, जाहीको बित षाइ ॥ ६ ॥
चेतन मुषी सुचेत है, गाफिल रहै अचेत ।
हाथ झाड़ि आवै घरां, भेलि नींपज्या षेत ॥ १० ॥
छाड़ि कुफाती जीवकूं, करि संतांसूं प्यार ।
रामचरण संतां बिनां, दुखदाई संसार ॥ ११ ॥

अथ साषी चितावणीका अंगकी ।

घड़ी घड़ी रजनीं घटै, करै घड़ावलि चीक ।
यूं रामचरण बीतै अवधि, आवै काल नजीक ॥ १ ॥
संत चितावै महरि करि, जो कोई होइ सुचेत ।
परमारथके कारणैं, साधू हेला देत ॥ २ ॥
संताको हेलो सुणैं, सोही चेतन होइ ।
जे नर बहरी सुरतिका, रहै नचीता सोइ ॥ ३ ॥
तातैं पहली चेतिकैं, रामनांवकूं गाइ ।
भीड़ पड़्यां नांहीं सधै, पछैं रहै पिछताइ ॥ ४ ॥
संसार सगाई स्वारथी, बिनि स्वारथ सगा न कोइ ।
पुत्र कलित्र बंधवा, भलि मातपिता किन होइ ॥ ५ ॥
सदा साहाइक रामजी, और न दूजा कोइ ।
दूजा सुख स्वारथ सगा, दुःखमें दूरा होइ ॥ ६ ॥
सुमरो रमता रामकूं, जबलग सरधा थाइ ।
रामचरण सरधा घट्यां, सुमरण कीया न जाइ ॥ ७ ॥

यौ औसर ऐसौ लगौ, लोके लमैं सताइ ।
रामभजनसैं रामचरण, मति गाफिल होइ जाइ ॥ ८ ॥
गाफिल भये गिंवार जे, नरतन जासी हारि ।
पीछै मोड़ौ पावसी, देषौ सोचि बिचारि ॥ ९ ॥
रामभजन कीजे सदा, आलस करीऐ नांहि ।
काहा जांणूं कहि बारमैं, काल दबावै आंहि ॥ १० ॥
काल दबावै आइकैं, ज्यूं तीतरकूं बाज ।
तुरति पकड़ि लेजाइगा, पड़्या रहैगा साज ॥ ११ ॥
राजा रांणां पातस्या, बड नबाब अमराव ।
मैं मेरी करता मूवां, करि फोयावाला पाव ॥ १२ ॥
रामचरण भजि रामकूं, ऐ जग जांनि सराइ ।
किता आइकैं ऊतरे, केता चलि चलि जाइ ॥ १३ ॥
आऊषौ तन बीति हैं, च्यारि अवसथा मांहि ।
रामचरण कहै अवसता, सोमो थिरता नांहि ॥ १४ ॥
थिरसूं करीयां आसिकी, आसिक भी थिर होइ ।
ज्यूं सिलता सागर मिल्यां, चंचल रहै न कोइ ॥ १५ ॥
आदि अंति अर मधिमैं, ऐक रामही मिंत ।
ताहि न कबहू बिसरीऐ, निस दिन करीऐ चिंत ॥ १६ ॥
मिंताई जासूं करो, जे साहिक बांकी वार ।
काम पड़्यां टलि जाइ जौ, ताका [illegible] अधिकार ॥ १७ ॥
राम बिनां बांकी बषत, करै न कोई साहाइ ।
आंन धरम कुलकुटंबका, सब न्यारा होइ जाइ ॥ १८ ॥

रामचरण निज नांव धरि, सो सारांसार निधांन।
धरा धरे तन धरि नहीं, सब ऊंच नींच मझि मांन ॥ १९ ॥
जैसैं अंजली नीर ज्यूं, टपकै निसदिन सास।
रामचरण यूं तन महीं, नहीं रहणकी आस ॥ २० ॥
क्रीला करत किसोर बै, बीति गई बेकांम।
काला चाल्या कुंच करि, अब धोला कीयौ मुकांम ॥ २१ ॥
म्रिति अगाऊ दोड़िकैं, जुरा दबावौ आइ।
तब सुक्रत सुमरण सार सुचि, सरधा बंधे न काइ ॥ २२ ॥
पुस पंष्यांमैं राषतौ, मिनष जनमकी चाहि।
सो भूंडू षोयौ भजन बिनि, भरम बिकरमां लाइ ॥ २३ ॥
ऐसे अधम अधोगती, सकै न राम सम्हारि।
बादि गुमावै बिकरमां, वै षर सूकर उणिहारि ॥२४॥
बूढ़ासूं बालक भला, निरबिकार कहै राम।
बूढ़ां लागी आवदा, भरे कांमनां काम ॥ २५ ॥
रामराम मुषसूं कहै, सुध बासनां धारि।
दया दरध हिरदै रहै, तो जीतै नरतन सारि ॥ २६ ॥
रामचरण नर देहमैं, बड़ो लाभ है पेह।
रामराम मुषसूं कहै, कुछि भूषांकूं अन देह ॥ २७ ॥
काहा रैति काहा राजवी, सुणिज्यौ ऐह बिचार।
समै गयां मिलिसी नहीं, यौ म्हेलर या बार ॥ २८ ॥
समैं साष फल नीपजे, बिना समैं फल नांहि।
यूं कलिजुग समैं ज नांवकी, सो साधि समझि मन मांहि ॥२९॥

रामचरण बड़ भाग जे, जे औसर चूकै नांहि ।
जे नर अवकै चूकीया, सो चौरासी दुष पांहि ॥ ३० ॥
अति विपता करीऐं नहीं, रहिऐ समता भाइ ।
आगैं कुण कुण ले गया, अर अवैं कूंण ले जाइ ॥ ३१ ॥
षाजे षरचि षुवावजे, मत कोई गाडौ जोड़ि ।
राम विमुष नर जोड़ि जोड़ि, अंति गऐ सिर फोड़ि ॥ ३२ ॥
दुष भुगतै पैदा करै, नांनां करम कुमाइ ।
सौ अरथ दरब संसारकौ, बिरषै डंडमैं जाइ ॥ ३३ ॥
दिनां च्यारिकी चांदणीं, चेते नहीं अमांन ।
मांन विनां रत मोहोमैं, आघा पड़ै अग्यांन ॥ ३४ ॥
चौरासीकूं जीतिकैं, नरतन पायौ आइ ।
रामभजन बिनि हारिकै, फिरि चौरासीकूं जाइ ॥ ३५ ॥
चौरासी दीसै दरध, तो सरद करो मन काम ।
रामचरण न्ह काम होइ, भजीऐ केवल राम ॥ ३६ ॥
रामचरण ता रामकौ, निसदिन धरीऐ ध्यांन ।
अंतिकालि भीड़ी षड़ौ, तब काया छाडै प्रांन ॥ ३७ ॥
रामचरण तां रामकूं, भजीऐ बारूंबार ।
अति समैं संगी सदा, निज सगा न चालै लार ॥ ३८ ॥
मेरो मेरो कहत है, यामैं मेरो कूंना ।
रामचरण ग्रितिकै समैं, तन धन संगी न भूंन ॥ ३९ ॥
ई मायाका मदनमैं, चाल्यौ नरतन खोइ ।
भला बचन अभिमांनतैं, मांनत नांहीं कोइ ॥ ४० ॥

बिरषा चाहै सब कोई, अनसंग्रो चाहै नांहि।
यूं हरिचरचा भावै नहीं, जाके पाप घणां घट मांहि ॥ ४१ ॥
पाप पुंनिका वेगमैं, पड़ि चौरासी जाइ।
रामभजन परताप तैं, जन आनंद पद पाइ ॥ ४२ ॥
राम भजै इकतारसूं, तजि पाप पुंनिकौ भोर।
रामचरण उन ऊपरैं, नहीं धरमराइकौ जोर ॥ ४३ ॥
रामभजनसूं होइ सुष, जनमैं मरै न आप।
जनमैं मरै स करमतैं, ऐ झूठ साच पुंनि पाप ॥ ४४ ॥
रामचरण जोबन गयां, जुरा दबावै आइ।
सुत नारी वाल्हा हुता, सोभो टलि टलि जाइ ॥ ४५ ॥
आंधा जीव अभागीया, अब तो राम सम्हालि।
जाकूं कहता आपणां, सो जिनकी तरफां न्हालि ॥ ४६ ॥
काल गलारै गरजिकैं, धड़कै तीनूं लोक।
रामचरण जन रामकै, सरणैं भया बिसोक ॥ ४७ ॥
रामचरण जन रामका, सरणैं छड़कै नांहि।
रच्या स भांडा बिनससी, किसऔ सोच मनमांहि ॥ ४८ ॥
जमकी मार पड़ै नहीं, सहजैं छूटै देह।
रामचरण इक रामसूं, जो जीव करै सनेह ॥ ४९ ॥

अथ साषी नपग्रांनरका अंगकी।

जामैं जो लछि नांहि कुछि, सो बोल्यां धिरकार।
रामचरण लछिकूं लीयां, बोलै पांणींदार ॥ १ ॥

पांणींमैं पांणिप बधै, पांणीं पणिही मांहि ।
रामचरण पणिकैं गयां, पांणीं रहै ज नांहि ॥ २ ॥
रामचरण सूली सारकी, भलि मरणूं इक बार ।
स्वारथ सूली मांन भंग; फिटि जीवण संसार ॥ ३ ॥
लज्या रही तो सब रह्यौ, लज्या गयां सब जाइ ।
रामचरण जीवण अफल, जो जीवै लाज गुमाइ ॥ ४ ॥
रामचरण भजि रामकूं, मनकी छाड़ि सइ काम ।
जीवत सोभा जगतमें, मूंवा तो सदकै राम ॥ ५ ॥
जाकौ जस पाछैं रहै, सो मूवा नहीं जीवंत ।
रामचरण वे जीवत मूवा, जे जग कुजस लहंत ॥ ६ ॥
जे पावस सरसूंका रह्यां, ज्यां ग्रीषम केसी आस ।
तामैं कांदा नीपजै, जाकी बास कुबास ॥ ७ ॥
जाकै उरि नासति भरी, नहीं आसति परवेस ।
ताकै कोहो कैसैं भिदै, सतगुरका उपदेस ॥ ८ ॥
मिंनष जनमकूं पाइकैं, जामैं बुधि बल नांहि ।
तो रामचरण वाकौ जनम, झूठ कपट संगि जांहि ॥ ९ ॥
जा घटि बुधिकी नासती, आसति समझै नांहि ।
वाकी लगनि लगी रहै, नास तिहीकै मांहि ॥ १० ॥
भलि सेवौ नरपति सुरपती, भाग लष्यो पावै ।
भागहींण सिंधि चालणीं, घसि [illegible] आवै ॥ ११ ॥
दूसण अपणां भागनैं, नहीं स्यांमकूं होइ ।
भाग बिनां पावै नहीं, भलि दरीया सेवौ कोइ ॥ १२ ॥

पांणीं बिनि नपणां नरा, षरा षराबी होइ ।
नपणां काइर कूरकौ, संग करो मति कोइ ॥ १३ ॥
पांणिप परषै पारषू, जो अपणैं पाणिप होइ ।
नपणां नर पांणिप बिना, वै पांणिप लषै न कोइ ॥ १४ ॥
पणि पांणींका मेलसूं, मति न्यारी कीज्यौ कोइ ।
पण राष्यां पांणीं रहै, पांणींसैं पण होइ ॥ १५ ॥

अथ साषी कुबधी नरका अंगको ।

कोहो हजारूं बात भलि, ऐ कुबधी धरै न कांनि ।
वै क्रितघणीं कूड़ी भषा, निसटी भिसटी जांनि ।।१।।
हिरदामैं अतिकालस्यां, मुषसैं मीठी बात ।
दाव पड़्यां वौ दुसट नर, जब तब घाले घात ।।२।।
मुष मींठा अंतरि कड़ा, वै नींब तणां फल जांणि ।
अंतरिका गुण प्रगट्यां, मुष मिठासकी हांणि ॥ ३ ॥
मूंज आंवसै नीरबलि, गुढी पड़ै बल षांहि ।
यूं बांदा परवलि बकैं, घणीं कुबधि घट मांहि ।।४।।
निबल निषेदी जीवके, सुबधि तणूं बल नांहि ।
नरतन पाइ बिगाड़ीयौ, असुध चलणके मांहि ।।५।।
जो दुरकारै स्वानकूं, तो दूंणां भुसै ज सोइ ।
यूं कह्यौ न मांनैं निषद नर, जा... आदू खोइ ।।६।।
अब सुणींयौ बात कपूतकी, जामैं दूतादूत ।
जैसे कबहू मति मिलौ, मूरिष मुढ़ कपूत ।।७।।

कुजस बधै सोभा भंडै, कीयौ न लागै ठांम ।
षोटो संग कपूतको, कदे न सुधरै कांम ॥८॥
रामचरण माणस तणूं, आघ तोलसूं होइ ।
तोल गयां सूंघा फिरै, कोडी मूंघा जोइ ॥६॥
मद आसै मद बासनां, उलझ्या फिरै कपूत ।
उतिम आसै हरि भजै, सो जननीं जण्यां सपूत ॥१०॥
जे सपूत साईं भजै, मेटि मनोरथ काम ।
सब बिधि कारिज सारि हैं, सुषका सागर राम ॥११॥
जे उलट पलट बातां करै, ज्यूं दुपड़ी बीती ।
जसैं समंद्रां चालणीं, घलि आवै रीती ॥१२॥
अनंत छिद्र हिरदै लीयां, कैसैं ठहरै ग्यांन ।
जांहां जाइ जांहां कांमनां, ज्यूं बुध मंछी ध्यांन ॥ १३ ॥

अथ साषी दयाका अंगको

दया संतोष न ऊपजै, नहीं भगतिसूं नेह ।
रामचरण वां प्रांणीयां, बादि गुमाई देह ॥ १ ॥
राम सकल पैदा करै, राम सकलकै मांहि ।
लोभ काजि जाकूं हत्यां, दास कुहावै नांहि ॥ २ ॥
माटी भषि हैं बरघड़ा, नरकूं ऐह अंषज ।
नर कारणं बोहो रस कीया, मांहै जंबकषज ॥ ३ ॥
रस बसि भऐ स बावरे, रसनांके रस स्वादि ।
जीं साहिब रसनां दई, ताहि कीयौ नहीं यादि ॥ ४ ॥

हुलसि हुलसि हंस्या करी, रसनां तणैं स्वादि ।
बदलो देतां दरधकी, सुणैं न कोई फ्रादि ॥ ५ ॥
हतन करै हरि बिमुष होइ, नहीं जीवकी दादि ।
दींन दरघे मारतां, घणी करैलो यादि ॥ ६ ॥
दया दरध व्यापे नहीं, हंस्यासूं हुसीयार ।
रामचरण वै षाइगा, जमदरघै बोहो मार ॥ ७ ॥
जीव हत्यां धन पुत्र होइ, तो सब कोई करि लेह ।
होसी पूरब पूनितैं, कै राम दया करि देह ॥ ८ ॥
जवही स्वारथ ऊपजै, तब क्रम न सूझै ऐक ।
ग्यांन ध्यांन सब बीसरै, उपजै नहीं बवेक ॥ ९ ॥
दया धरमकी नावड़ी, दयां बणैं उपगार ।
दया लषावे हंसता, दया कीया मई सार ॥ १० ॥
आंन अराधै राम तजि, सह कांमीं बेईमांन ।
रामचरण सतसंगकौ, वै सुणैं नहीं निज ग्यांन ॥ ११ ॥
सबला राषौ सीस परि, सबलांकी गहौ वोट ।
रामचरण सबलां सरणि, लगे न जमकी चोट ॥ १२ ॥
॥ साषी ॥२२३ ॥

अथ

ग्रंथांमाहिला चंद्राइणा

लिष्यते

प्रथम गुरदेवका अंगका ।

पड्या रुलैछा जीव जगतके मांहि रे,
सतगुर मिले दयाल लीऐ गह बांहि रे ।
हरष सोग भो लार मार सबही मटी,
परिहां रामचरण जग जाल काल पासी कटी ॥१॥

सतगुर सोही जाणि बतावै साच रे,
पोषै अपणीं चाहि सोही गुर काच रे ।
काचासूं मन काढ़ि साचसूं लागीऐ,
परिहां रामचरण ता सरणि राम रस पागीऐ ॥२॥

ग्यांन रुचित बैराग भगतिकी भांवनां,
सतगुर दींनदयाल आप मुष गांवनां ।
भाषो मों क्रिपाल क्रपा करि भेद जू,
परिहां म्हरिवांन म्हाराजि मिटावौ षेद जू ॥३॥

मुरसद कहै मुरीदषो जिवो जूद रे,
अल्ह इलफ भरपूरि जुहां मोजूद रे ।
दोड़ि दूरि क्यूं जाइ निकाजा भटकनौं,
परिहां हरिदम करीऐ यादि आन नहीं अटकनां ॥४॥ सतगु०

सुमरणकौ अंग

रामभजनकूं साधि मिटै ज्यूं व्याधि रे,
ऐक अगरि आराध्य छाडि बकवादि रे।
तब मन निरमल होइ धोइ सब कांमनां,
परिहां रामचरण ऐ धारि सोल गुर आंमनां ॥१॥
दाता बडे दयाल रामजी आप है,
ताप मिटावन जोगि तुम्हारो जाप है।
जो कारिज ततकालि सुधारण स्यांम है,
परिहां निराकार आकार बीचि तुम नाम है ॥ २ ॥
सकल कांमनां पूरि करै कलि ब्रछि रे।
समता सील संतोष धरै उरि लछि रे।
रामभजन उपजाइ ग्यांन रस पाइ हैं,
परिहां रामचरण ता सरणि जरनि ठरिजाइ रे ॥ ३॥
राम रसांइण अजब सारका सार रे,
पीया पेम उपाइ गया जगपार रे।
निति निरंजण राम मिल्या जाइ दास है,
परिहां रामचरण निज ग्यांन भयौ प्रकास है ॥४॥
दसूं दिसा सरबंग रामका नूर है,
अलपति ज्यूं आ[illegible]स अमल भरपूरि है।
कहौ दूरि क्यूं जाइ सुमरि निज नामकूं,
परिहां रामचरण थिर होइ लहै सुषधांमकूं ॥५॥

सतिचति आनन्द ब्रह्म सकल भरपूरि है,

ग्यांन दिसटि करि जोइ नहीं कहु दूरि हैं ।

ऐसौ न्हचौ राष्य भाषि मुष राम रे,

परिहां भरम षेद मटि जाइ लहै बिसरांम रे ॥ ६ ॥

न्यांम सुहाया करै डर नहीं कोइ रे,

सुमरै राम अगाध दींन अति होइ रे ।

न्हचै जांनौं पेक साहिकी राम है,

परिहां रामचरण वो राम सकल सुषधांम है ॥७॥

धीर धीर गंभीर भीरहर राम है,

निराकार नरधार सारन्ह काम है ।

सकल कांमनां दूरि निवारै दासकी,

परिहां रामचरण होइ सरणि करै जो आसकी ॥८॥

आसि करैं म्हबूब दूरि नहीं बीर रे,

कोई चेतै चेतन होइ कहै गुरपीर रे ।

उनका सिर ले दसत रहै नर बंध रे,

परिहां रामचरण होइ सरणि षोजि हैं जिंद रे ॥९॥

उर धरि गुरका ग्यांन ध्यांनकी धारणां,

ज्यूं लहै जीव बिसराम अपनपो त्यारनां ।

तरिकरि मिलिऐ ब्रह्म जहां आनंद घनां,

परिहां रामचरण भजि राम सुषी ग्यांनीं जनां ॥१०॥

जगपालक जग ईस राम जगतात है,

ताहि तजै रत आंन स गोता षात है ।

सुमरयां होइ सुनाथ नाथ रिछपाल है,
परिहां रामचरण जों सरणि बिना बेहाल है ॥११॥
च्यारि धांमकूं परसि चढौ गिरनारि रे,
सपत पुरो करि आवनि ऊषर न्हारि रे।
तपस्या तन त्रकाल साधि बनबास रे,
परिहां रामभजन बिनि ग्यांन नहीं पकास रे ॥१२॥
जैंन जवन सिव धरम दया इकतार रे,
करि त्रिभ्राको नात्र होइ भौपार रे।
दूजा नहीं अलाज काज नर देहकूं,
परिहां रामचरण ऐ धारि डारि जगनेहकूं ॥१३॥
नरतन धनकी बषत क होइ सुचेत रे,
मति षोवै बेअरथि षरचि हरि हेत रे।
रसनां रटीऐ राम कांमनां जीति रे,
परिहां ऐ समैं सम्हालौ बेगि धारि उर प्रीति रे ॥१४॥
नर नारांणीं देह व्रिथा जिन षोइ रे,
नारांइणको नांम सुमरीऐ सोइ रे।
सतगुर ऐ उंपदेस दया करि देत रे,
परिहां रामचरण ऐ धारि होइ सुचेत रे ॥ १५ ।
भौजल करणौं पार रामको नांम है,
कोई भजै धारि इकतार क आठौं जांम है।
जाकूं तरणौ सुलभ दुलभ नहीं होइ रे,
परिहां रामचरण ऐ सति असति नहीं कोइ रे ॥१६॥

सतिबादी सति सबद गहै अति प्रीतिसैं,
असति वादकौ त्याग लाग उरि नोतिसैं।
भूलि भरमनां भांनि भांवनां नामकी,
परिहां अरुचि कांमनां कांम सदा रुचि रामकी ॥१७॥
रामभजन इकतार धारि कोई करत है,
असुध बासनां आस जिनूंकी टरत है।
मन करि सकै न फैल मलनता नां रहै,
परिहां रामचरण वै जांणि जगत संगि नां बहै ॥१८
रमता राम अनूप भूप त्रिऐ लोकको,
जाकौ सुमरण करां करौ सब थोककौ।
कोई न्यारो रह्यौ ज नांहि ग्यांन चष्य जोइ रे,
परिहां रामचरण ईं समझि न भरमैं कोइ रे ॥१९॥
दई दई सो सही गई नहीं होइ रे,
अर गई करै तो दई समझि मन सोई रे।
काहा भली काहा बुरी कोहौ कुण टारि हैं,
परिहां करताकी करतूति न और निवारि हैं ॥ २० ॥
राम नांम निज मित्र सुं त्यारण जांणीऐ,
सुणि संतांका सबद कु हचै आंणीऐ।
सिव अंति समैं दे नाम सिवपुरी मांहि र,
परिहां रामचरण सो सुमरि विसरीऐ नांहि रे ॥२१॥

साध संगतको अंग ।

हरिजन सेती प्रीति सदा सुष पूरि हैं,
भलि भेला मिलि रहौ बिसोक सदूरि है ।
मिल्यां फिट्यां रसि ऐक सुरीति अनारकी,
परिहां रस टूटणकी सीष सुणैं नहीं पारकी ॥१॥
रस टूटणकी सीष सुणैं नहीं पारकी,
प्रथम लछि निरताइ गहै सुधि सारकी ।
आदि अंति लग प्रीति निभैगी जासकी,
परिहां भलि ग्रैही बनवास छुटै नहीं तासकी ॥२॥
आप निरासी होइ उचारै ग्यांन रे,
तो श्रोतांके सुष होइ लहै हरिध्यांन रे ।
ग्यांन धरम तब तेज गाहिका लाग हैं,
परिहां रामचरण जो बुंसत ठिकांणैं आघ है ॥३॥
असार धरम बिसतार बिसारै सारकूं,
जे आपण भूल्या फिरै भुलावै पारकूं ।
समझ्या उनको संग करै नहीं कोइ रे,
परिहां गुरगम सार सम्हाइ रह्या जे सोइरे ॥४॥
गुरगम धारै सार सुग्यांनीं सो सही,
भलीभांति निरताइ जनां याही कही ।
उतिम चलण सुसंग रामकूं गावही,
परिहां रामचरण वै जांणि ऊंचपद पावही ॥५॥

सतसंग समि सुषसार नहीं कोई और रे,

सब देष्यां निरताइ थकी मन दौर रे ।

जहां जाइ जहां चाहि बतावै भटकनां,

परिहां रामचरण आंन नहीं अटकनां ॥६॥

सुत दारा परिवार सजन सब स्वारथी,

जे रामनांम दातार संत परमारथी ।

जिन बिनि कोई नांहि जीवका साहिकी,

परिहां रामचरण जग जांणि मुतलबां गाहिकी ॥७॥

बिरकतको अंग ।

बिरकत रत वैराग कांमनां हींन रे,

रामभजन इकतार ग्यांन परबींण रे

नहीं संग्रहै नहीं सोचत ज्यां दुष धंध रे,

परिहां रामचरण वां जांनि अषै आनंद रे ॥१॥

भयां पंच परबींण हींण भई कांमनां,

अब बरतै सहज बिहार लीयां गुरआंमनां ।

बिषीया गरल उषालि पीयां रस राम रे ।

परिहां सुरति निरति चल नांहि लह्यां बिसरांम रे ॥२॥

मनमुषीको अंग ।

ग्यांनीं ग्यांन बिचारि ग्यांनमैं गरक है,

बादी मांडै बाद तासूं फरक है ।

कोऊ करैगा काहा सबनकी रद है,

परिहां जाकै भै क्यूं होइ सीस गुरसबद है ॥१॥

जांहां बधतो देषै वाद षैंचि नहीं कीजीऐ,

तब हांजी हांजी साधि ढाबिकैं लीजीऐ।

सो पिंडत प्रमांण हुड़ी नहीं देह रे,

परिहां रामचरण बोहो जांण सोही सुष लेह रे ॥ २ ॥

गरवां ग्यान उदोत तिमर गऐ दूरि हैं।

दरस्या सरबग्य ऐक राम भरपूरि है।

कुणसूं बांधै राग दोष कासूं धरै,

परिहां ऐसे जन गम षाइ न्याइ जरणां करै ॥ ३ ॥

जथा अरथकै कह्यां दोस नहीं ताहि रे,

कह्यां और सूं और लगै प्रतिबाइ रे।

पैं तोभी समै बिचारि षैंचि नहीं कीजीऐ,

परिहां लषि बादीको तेज क ढीली दीजीऐ॥ ४॥

अग्यानींकौ।

अहूं ममत आव रति कुमावै कांम रे,

मूंधो नरतन पाइ भजै नहीं राम रे।

अजक्यौ आठूं जांम बंध ग्रहधंध रे,

परिहां नहीं ग्यांन प्रकास अग्यांनीं अंध रे ॥१॥

बड़े अग्यांनीं अंध लीयां गलिफंद रे,

मैं ऐ मेरी मांनि फलावै कंध रे।

नारूति अकलि उपाइ मनावैं आंन रे,

परिहां नहीं आसति औ कूप गुमाया ग्यांन रे ॥२॥

कुबधींकौ ।

कीड़ी छेदर नकत कुसंगी कंटिका,

कूकर निंदक जांणि पकड़िहैं फंटिका ।

कांमणि कांम सरूप नहीं अनुरागीऐ,

परिहां कुबधी कुबध्यां पूरि जिनूंकूं त्यागीऐ ॥१॥

सूर बीरकौ संग हरषिकैं कीजीऐ,

कांइर कपटी कूर ताहि तजि दीजीऐं ।

छाया फल दातार हसा जन रामका,

परिहां लछि बिन सूका सांग नहीं कोई कांमका॥२॥

कालकौ अंग

काल धकावणि हूवां न किसका जोर रे,

मातपिता परिवार रहै सिर फोरि रे ।

सुत नाती अर नारि षड़ा बिललावही,

परिहां रामचरण तिहि बार राम रिछपालही ॥१॥

पछिताऐं काहा होइ धकारों कालकै,

तब पांणीं पहली पालि बंधी नहीं तालकै।

रहै भजनकूं भूलि भरम परिमूठिही,

परिहां सिंघ गह्यौ म्रिग आइ तबै क्यूं छूटिही ॥२॥

चिंतावणींकौ ।

मेरी मेरी करत मरै सब लोइ रे,

होइ रह्यौ तन आप लार नहीं सोइ रे ।

मातपिता परिवार रहै सब रोइ रे,

परिहां रामचरण तिहि बार न अपणां कोइ रे ॥२॥

घड़ी पहर दिन पाष महीनौं बरष रे,

अवधि चली यूं जाइ मांनि रहे हरष रे।

आवरि लीया अग्यांन न सुमरै राम रे,

परिहां उलझि रहै ग्रहधंध अंधरसि कांम रे ॥३॥

बिषै बिकरमां संगि मिनषतन षोईयौ,

अंतकालकी बार अग्यांनीं रोइयौ।

सोऐ औसर चूकि बिगाड़यो कांम रे,

परिहां नरतन पदवी पाइ भज्यौ नहीं रामरे ॥४॥

राम राम करि यादि कहूं मन तोहि रे,

सासूं सास सम्हालि रहै मति सोइ रे।

यौ मोसर या बार बोहोरि नहीं पांवणां,

परिहां सतगुर कहै चिताइ अषंडत ध्यांवणां ॥४॥

अपणीं अपणीं बार चल्या सब जांहि रे,

बाल तरण अर बिरध रहै कोई नांहि रे।

ज्यूं अंजली टपकत नीर सास यूं जात है,

परिहां क्यांपरि बैठा फूलि मांनि कुसळात है ॥५॥

चेति चेति जीव चेति कहै गुर संत रे,

भजौ राम रमतीत सबनकौ तंत रे।

मिथ्या माया संगि दुषी निसदिन हैं,

परिहां रामचरण ऐ देषि मिथ्या ही तंन है ॥ ६ ॥

संसार सराई लोग अगोल गवीर रे,
वासौ वसि उठि जाइ रहै नहीं थीर रे।
इनसैं मोहोवति बांधि बोध जिन वीसरै,
परिहां रामचरण भजि राम सकल सिर ईस रे ॥७॥
धन धरा धांम अपणाइ रहै मसताक रे,
मैं मेरी मगरूर नहीं दिल पाक रे।
सुत नाती परिवार कहै मैं पूरि रे,
परिहां अंति चले छिटकाइ मिलि गये धूरि रे॥ ८॥
राम विनां कहि कांम धरा धनि धांम रे,
माल मुल्क सब रहै ठांमका ठांम रे।
भी सुत नाती परिवार लगै नहीं लार रे,
परिहां काल अचांनक आइ गहै जौं बार रे॥ ९॥
बाजी अति विसतार चिरत बोहो रीतिका,
जाका कहीऐ विड़द अनंत बिपरीतिका।
जनां विनां जगजीवन याकूं जीति हैं,
परिहां माया निबली नांहि सबल या भींति हैं॥ १०॥

सूरातणकौ।

संत विवेकी सूर नूर मुप भल कही,
छोह छूटै तिहि बार क पांडौ पल कही।
माहा मगन मन जीति रूप्या रण मांहि रे,
परिहां पिसण लगाये थाइ राम ल्यौ लांहि रे॥ १॥

रामनाम लै लागि भगाऐ भरम रे,

कनक काम परिहारि उडाऐ करम रे।

कीऐ सूर चौगांन मांनि मद मारिकैं,

परिहां टलैन सूरा संत सिंघ लीहारिकैं ॥ २ ॥

प्रेम मगन मसतांन सिपाई रामका,

जिन थांणां दीया उठाइ कलपनां कामका ।

सुमरण मांहि सुचेतन छाडै षेत रे,

परिहां रामचरण हुसीयार स्यांमकै हेत रे ॥ ३ ॥

गरक ग्यांन गहतूल सिपाई रामका,

बडे सूर सांवंत स्यामका कांमका ।

तरक फरक बैराग्य ज गुरमुष धारणां,

परिहां रामचरण भजि राम क सुत्र सिंधारणां ॥४॥

बडे सूर सांवंत सोही सिरकारका,

ज्यां सजन सगाई नेह तज्या घरबारका ।

गह्यां ग्यांन बैराग भजन हुसीयार रे,

परिहां रामचरण वां साच सबंर इकतार रे ॥५॥

ज्यां साबूतो सोही बडी सिरकारका,

सो घर बाहिर जो होइ दास इतबारका।

उनसूं अंतर नांहि स्यांम कैसोइ रे,

परिहां रामचरण भजि राम ऐक रसि होइ रे ॥६॥

सदा ऐक रसि रहै दास दरबारका,

नहीं नादारी दरसाइ ऐक इकंतारका ।

डरि साता सत सोच संतोषी सोइ रे,

परिहां स्यांम विनां दुरि आस और नहीं कोइ रे॥७।

बिसवासकौ ।

काहा करै निबलकी आस निबल दे रोइरे,

जापैं जाचण जाइ जाचि पड़ै सोइ रे।

षाली सुर संसार जाचि मति वाइकां,

परिहां रामचरण भजि राम सबै बिधि दाइका ॥१॥

पकड़ि राम बिसवास आसं सब मेटि रे,

तेरै काहा पिरवार ऐक ही पेट रे।

लष चौरासी जूंणि रामजी देत है,

परिहां रामचरण तूं भार काहि सिर लेत है ॥ २ ॥

है राम विसवास वैही निज दास रे,

निसदिन सुमरै राम और तजि आस रे।

साईं संम्रथ जाणि पकड़ि रहौ वोट रे,

परिहां हरि बिन दूजी वोट गनैं सब पोट रे ॥३॥

अथ त्रिसनांकौ ।

आसा नदी अपूर तुड़ाऊ बहत है,

करि मोहो मदरा पांन जगत जीव पड़त है।

त्रसनां अंजन आंजि भया नर अंध रे,

परिहां रामचरण ग्रिहजाल लीयां गलि फंद रे ॥१॥

अजरी गुड़परि बैठि रही लपटाइ रे,

सिर धूणैं करि मींड उठ्यौ नहीं जाइ रे।

यूं माया सुषस्वाद उलझि रहे लोइ रे,

परिहां रामबिमुष गरगापन सुलझे सोइ रे ॥२।

माया होइ असवार तुरी संसार रे,

त्रिसनां चाबक हाथि चलावे मार रे।

अपणीं रुष दोड़ाइ न लेवे सास रे,

परिहां दया न उपजे ताहि भुगावे त्रास रे ।३॥

तीन लोक प्रबीण रामका राज है,

जाकूं परिहरि दीयां जीव अकाज है।

ईस दास दसकंध भभीषन रामकौ,

परिहां आंन तणौं अधिकार निपट नहीं कांमकौ॥ ॥

साधकौ

पर कारिजके हेत करे उपगार रे,

रामनाम धन देत बड़े दातार रे।

उलझ्याकूं सुलझाइ आपन्ह स्वारथी,

परिहां रामचरण सो साध बड़े प्रमारथी ॥१॥

ऐक आत्मा दिसटि सकलमैं आंणि है,

नां काहूसूं दोष राग नहीं बांणि है।

बूझ्यांसूं कहै साच मन रषी नांहि रे,

परिहां रामचरण कोई संक नहीं मन मांहि रे ॥२॥

राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम ।

अथ

ऐकादस स्कंद भाषा

लिख्यते

॥ चौपई ॥

संतदास सतगुरके चरणां, तिनकौ गहौं सुदिढ करि सरणां ।
तातैं उपजै ग्यांन बिचारा, छूटै भरम करम विवहारा ॥ १ ॥
बहुरयौं जगत जनम नहीं आंऊं, तिनकौ निजानंद पद पांऊं ।
तिनकी आग्या हिरदै धरूं, लोक हितारथ भाषा करूं ॥ २ ॥
श्री भगवांन विरंचिहिं भाष्यौ, सो ब्रिंचि नारदसूं आष्यौ ।
सो नारद व्यासहि समझायौ, व्यास व्यास करि शुकहि पढ़ायौ ॥ ३ ॥
सो शुक कह्यौ परीक्षत आगैं, छूट्यौ द्वैत सुपन ज्यौं जागै ।
सोई सून अजहूं बिसतरै, सहंस अभ्यासो रिष मन हरै ॥ ४ ॥
श्रीभगवांन आप यहु भाष्यौ, तातैं नांम भागवत राष्यौ ।
आप मिलनकौं पंथ बतायौ, या मारिग बहुत निहरि पायौ ॥ ५ ॥

॥ दुहा ॥

व्यासदेव जो भागवत, भाष्यो द्वादस स्कंद ।
तिनमैं ऐकादस कहूं, नैनं लहै ज्यौं अंध ॥ ६ ॥

॥ चौपई ॥

ऐकादस इकतीस अध्याय, तिनकौ ब्यौरौ कहौं सुनाय ।
जदुकुल नास प्रथमैं गायौ, बहुत भांति बैराग उपायौ ॥ ७ ॥

हरिपुर पंथ कह्यौ पुनि च्यारि, जनकहि जोगेसुरन विचारि।
सो नारद बसुदेवहि कह्यौ, पायौ ग्यांन परम पद लह्यौ ॥८॥
छठे कृष्ण उधव प्रसताव, तेईस करि निज ग्यांन सुनाव।
द्वै जादव बिनास बिसतार, ऐ इकतीस ग्यांन निज सार ॥९॥
श्रीसुकदेव करत आरंभ, श्रोता नृपति अडिग तजि अंभ।
तब सुकजीयहु कीयौ विचार, ग्यांन बिनां नांहीं उधार ॥१०॥
तातै ब्रह्मग्यांन समझांऊं, प्रथहि दिढ बेराग उपांऊं।
पंषी उडै पंष द्वै जैसैं, ग्यांन वैराग मिलै हरि अैसे ॥११॥

श्रीशुक उवाच

राजा सुनौं जगत सुष अैसैं, जिनसौं लागि भ्रमत नर जैसैं।
भये कोटि छपन कुल जाद्‌व, ज्यौं घन घमडि चहुं दिसि भाद्‌व १२
तिनकौ बहुत भांति बिसतारा, गिनती करत लहै को पारा।
भवन आपनो कवला कीयौ, नवनिधि जहां बसेरा लीयौ ॥१३॥
बहुरि सुधर्मा सभा मंगाई, बैठें जांहां न ब्यापै काई।
तिनकी समता कौंन बतांऊं, तीन लोकमैं कहूं न पांऊं ॥४॥
तिनकी बात कहत अब अैसी, पलक मांहि सुपनकी जैसी।
च्यारि घरीमैं सबै संघारे, ज्यूं बुदबुदा पवनके मारे ॥१५॥
रामकृष्ण तहां कौतिगहार, आपुहीं आप सकल संहार।
विप्र श्रापकौ कीन्हौं ब्याज, ऐ सब कृष्ण देवके काज ॥१६॥
लोगनिकूं बैराग जनायौ, ऊधवादि वीदुर समझायौ।
प्रथम भीम अरजुन द्वै अनी, दुष्ट नृपति अरू सेनां हनीं ॥१७॥
या विधि भूकौ भार उतार्‍यौ, नांव रूप जसकौ बिसतार्‍यौ।
जाकूं गहि पहुंचै भवपारा, आनैं जे जन होहिं अपारा ॥१८॥

बहुत भांति करि अदभुत कर्म, थाप्यौ जगति भागवत धर्म ।
या बिधि सबके काज संवारे, तब हरिजी वैकुंठ पधारे । १९॥

॥ दुहा ॥

अैसी सुनि अदभुत कथा, जदुकुलकूं दिजश्राप ।
प्रष्ण करी राजा तहां, लषिवे तिनकौ पाप ॥ २० ॥

राजा उबाच

॥ चौपई ॥

तेतो विप्र भक्त ते सारे, प्रम दांन अरू सेवग भारे ।
बिप्र कोप कीन्हौं क्यौं पूरण, जातैं नास भए सब चूरण ॥ २१ ॥
कौंन निमति श्राप सौ कौंन, कहौ कृपा करि करुणां भौंन ।
ऐक मनां जादव ते सारे, आपुहीं आप कौंन बिधि मारे ॥२२॥

श्रीशुक उबाच

भुवको भार हरनके काजा, भू अवतार लीयौ ब्रजराजा ।
बहुबिधि भूकौं भार उतार्यौ,तब मनमैं गोपाल बिचार्यौ ॥२३॥
जो लग है जादव कुल सारौ, तो लगि नहीं भुभार उतारौ ।
मम आधीन रहै ते सारे, तातैं निज कर बनैं न मारे ॥ २४ ॥
दूजौ कोई सकै न मारि, तातैं कीजै जतन बिचार ।
ज्यूं बहु बांस बढ़े बन मांहीं, पवन निमत पाइ घरषांहीं ॥ २५ ॥
आपु आपु मैं अगनि उपावै, तासूं लागि सकल जरि जावै ।
त्यौंहीं यहां पवन दिजश्राप, क्रोध अगनि तंहां आपै आप ॥२६॥

करि बिसतार होहि संहार, यह ठहरायौ कृष्ण बिचार ।
आये सकल रिषोसर भौंन, निकटि छेत्र करवायौ गौंन ॥ २७ ॥
किनव अंगिरा बिश्वामित्र, दुर्वासा भृगु अंत्रे अगसत ।
कस्यप बांमदेव अरू नारद, और बहुत रिष प्रम बिसारद ॥२८॥
तहां सबै मुनि सुषसौं बैठे, जदुकुमार तहां छल करि पैठे ।
सामहि बिनता भेष बनायौ, बसत्रादिकन्य उद्र अधिकायौ ॥२९॥
अति बिनतीसं चर्णनि लागैं, पूछै कृष्ण षरे तिन आगैं ।
यह बिनता पूछै दिजराजा,सुन मुष होत लगै अति लाजा ॥३०॥
निकटि प्रसव आयौ है वाकौ, करो बिचार आपमें ताकौ ।
तुम त्रिकाल द्रसौ सब जांनौं, काहा जनैं सो हमहि बषानौं ।३१।
तब करि क्रोध बचन ते भनैं, कुलनास मूसल यह जनैं ।
जातैं तुम बहु मदसूं माते, दुष्ट बुधि उपजत है ताते ॥३२॥
बैन सुनत अति भै मनि आयो, तबही ता उद्रहि छिटकायौ ।
देष्यौ तांहां लोहको मूसल, तब तिन जांन्यौं नांहीं कूसल ॥
ते सब बहुत भांति पिछताये, ले मूसल राजापैं आये ।
उग्रसेनसौं बोले बैंनां, अति मलींन नहीं जोरे नैंनां ॥
सुन्यौं श्राप अरू मूसल देष्यौ, जोवन सबनि गयौ करि लेष्यौ ।
मूसल रेत चूरण करवायौ, क्रष्णन पूछे समुद् बहायौ ॥३५॥
रेतत रह्यौं हुतौ अति तुछि, ताकूं निगलि गयौ इक मछ ।
ते चूरण लहरिनिके मारे, आए तीर भए त्रिण सारे ॥३६॥
धीवर ऐक जाल बिसतरयौ, औरनि संगि मछ सो परयौ ।
ताकै उद्र लोह सो पायौ, व्याध्य ऐक सौ बांन बनायौ ॥३७॥

हरिजी बात सकल सो जांनीं, बहुत भली हिरदेमैं मांनीं।
ज्यद्यपि जोग अन्यथा करनं, परिमन मांहि सकल संहरनें ॥३८॥

॥ दुहा ॥

यह वैराग्य निरूपपीयौ, ग्यांन काजि सुकदेव।
ग्यांन कहै अब जो लहै, नारदसूं बसुदेव ॥३९॥

इतिश्री भागवते महापुराणे ऐकादस स्कंधे यदुकुल श्राप निरूपणनांमा प्रथमोध्याय ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

॥ चौपई ॥

द्वारावती आप जहां पालक, तहां न दक्ष श्रापकौं तालक।
नारद तहां निरंतरि आवै, कृष्णदेवके दरसन पावै ॥१॥
जीवनमुक्त भजैं नित जाकौं, बंध्यौ जीव तजे क्यौं ताकौं।
जाको सकल लोकमैं काल, जहां तहां निसदिन बेहाल ॥२॥
मांनवतन इंद्रिनिसौं राजा, इतनीं हरि सेवाकी साजा।
बंछैं जाहि ब्रह्म सुरराजा, कृष्णदेव सेवाके काजा ॥३॥
ऐसी देह भागतैं पावै, हरिकी सेवा क्यौं छिटकावै।
पलमैं कटै कालके पासा, हरिकौं पावैं हरिके दासा ॥४॥
ऐक बार बसुदेवके भौंन, नारद कीयौ क्रपा करि गौंन।
तिन बहुविधि पूजा बिसतरो, ता पीछैं बांनीं उचरी ॥५॥

बसुदेव उवाच—

हे प्रभूजी तुम्हरौ आगमनां, सब देहिनकौं सुखकौ भवनां।

उपमां तुम्हैं कौंनकी दीजै, जिनकै दरस सकल भय छीजे ॥६॥
और देव देवै सुष दुषकौं, तुमसे साधु प्रगट परसुषकौं ।
जिनकै हिरदै बिराजै राम, तिनतैं होहि जीवनहि काम ॥७॥
ऐसे फलदाइक सब देवा, तेतौ लहै जिती करै सेवा ।
ज्यौं कर ले दरपनकौं कोई, आप कर आभासै सोई ॥८॥
तुमसे साध सदा सुषदाई, जिनकी महिमां कही न जाई ।
जद्यपि दरस मैं भयौ कतारथ, पूछौं देव तथापि हितारथ ॥६॥
जे भागवत धरम सुनि जीव, जनम मरण तजि पावैं पीव ।
जिन आचरणनि तुमकूं देव, हरि प्रस्नसों भाषौं भेव ॥१०॥
पूरब जनम सेव मैं करी, माया मोह्यौ समझि न परी ।
तब मैं हरिहि पुत्र करि बस्यौ, ताहीहुतै नहीं उधस्यौ ॥११॥
तातैं अब मैं तुमरी सरनां, सो कछु करो मिटै ज्यूं मरनां ।
कहांलूं कहूं जगतके दुष, तामैं सुपनैंहूं नहीं सुष ॥१२॥
जहां जहां जाइ तहां तहां काल, हरि बिनि जीव सदा बेहाल ।
ऐसे बचन सुनै जब नारद, तब मुनि बोले प्रम बिसारद ॥ १३ ॥

॥ दुहा ॥

प्रम वचन बसुदेवके, सुनिकै भयौ अनंद ।
भगवत धरम प्रकासीयौ, बोलै आनंदकंद ॥

श्री नारद उवाच—

धंनि बसुदेव धंनि तुव बांनीं, जाकरि पूछे सारंगपांनीं ।
जे कोई होइ सकल जग घातक, बिष्ण धरमतैं रहै न पातक ॥ १४ ॥

श्रवन कीरतन आदर ध्यांन, अनुमोदनऊ करै सयांन ।
सो पुनीत होवै ततकाल, वहुरि परै नहीं जमके जाल ॥ १५ ॥
तुम यह कीयौ बड़ौ उपगार, मोहि सुमरायौ सिरजनहार ।
जाकौ श्रवन कीरतन अैसौ, अंधकारकूं सूरज जैसौ ॥ १६ ॥
तुमसैं कहौं कथा इतहास, जातैं छूटै भवके पास ।
रिषबदेव सुतनौ जोगेस, तिनतैं सुनीयौ जनक नरेस ॥ १७ ॥
सुनि करि ब्रह्म परायन भयौ, जनम मरन संसा सब गयौ ।
अब उतपति कहत हौं तिनकी, पूरन प्रीति रामसूं जिनकी ॥१८॥
स्वायंभू मुनि नृप सिरताजा, ताकौ तनय प्रीयव्रत राजा ।
ताकै अग्निध्रव सुत भयौ, नाभि जनम ताहीकैं लयौ ॥ १९ ॥
ताकै रिषबदेव अवतार, जिन प्रगटायौ ब्रह्म विचार ।
ताकै पुत्र ऐक संत भऐ, सकल वेदके पारहि गऐ ॥ २० ॥
तिनमैं वडे भरथसे नांम, जाकै हिरदै वसै निति राम ।
जातैं भरथषंड यह कह्यौ, तब अजनाभ नांमते लह्यौ ॥ २१ ॥
प्रथमहि वहुत भोगये भोग, समझि त्यागि पुनि लीयौ जोग ।
मन वच क्रम करी हरिभक्ति, तीजै जनम लही तिन मुक्ति ॥ २२॥
तिनमैं नव नव षंड नरेस, ऐकरू असी करम उपदेस ।
नवते महाभाग अधिकारी, सब तजि सेवै चरन मुरारी ॥ २३ ॥
तजै अनरथ अरथ बिसतारै, या बिधि बहुत जीव निसतारै ।
देह अतीत दिगंबर भेष, सदा हिरदैमैं ऐक अलेष ॥ २४ ॥
कबि हरि अंतरिष परबुध, पिपलांयन अग्निहोतर सुध ।
द्रूमल चमसकर भाजन नांम, इन नव कीयौ ब्रह्ममैं धांम ॥ २५ ॥

आप आदि संसार पसारा, सबकूं जांनैं सिरजनहारा ।
द्वैत भावकौ कीन्हौं षंड, या बिधि बिचरे सब ब्रह्मंड ॥२६॥
सुर अरू सिध असुर गंधरब, किंनर जष्य नाग नर सरब ।
सकल लोकमैं अंछाचारी, आड रहत सबमैं अधिकारी ॥२७॥
तिमसे नाम जनकके सत्रा, ऐक बार जिन किन्हीं जत्रा ।
रविसी सोभ तन जिनकी देहा, आवत देषे नृपति बदेहा ॥२८॥
राजा बिप्र अगनि उठि धाये, आगैं ह्वै लैबेकौ आये ।
क्रिम क्रिम आंनि धरे सिंघासन, क्रिम हीं क्रिमते बैठे आसन॥२९॥
तब ताही क्रिम पूजा कीन्हीं, करि डंडोत परिदषना दीन्हीं ।
शुक्ल आभरण बसत्र बहुरंगा, ते सब सोभित तिनकै रुंगा ॥३०॥
ग्यांन बिचार ब्रह्ममय अैसैं, ब्रह्मपुत्र सनकादिक जेसैं ।
तब कर जोरि भयौ नृप ठाढौ, बोल्यौ बचन प्रेम अति बाढ़ौ ॥३१॥

॥ दुहा ॥

तब नृपकै आनंद बढ्यौ, कछू न रही सम्भाल ।
प्रेम मगन ह्वै बोलीयौ, बांनीं प्रेम रसाल ॥३२॥

बिदेह उबाच—

तुम पारषत प्रम हरिजीके, मैं जांने सबहिनमैं नींके ।
जीवनके उधर बेकारिज, सकल लोकमैं बिचरो आरिज ॥३३॥
धनि मैं धनि मेरो अवतारा, जातैं पायौ दरस तुम्हारा ।
नांनां जोनि जीव यह पावे, मानव तन कबहू इक आवै ॥३४॥
या बिधि नरदेह हूबहु गहे, दुलभ साध संग नहीं लहै ।
जिनके संग मिटै भवबंधा, नैंन अनंत लहै ज्यूं अंधा ॥३५॥

प्रांणनाथ हरि हिरदै विराजै, छूटै करम भरम भय भाजै ।
आधौ ष्यन होवै सतसंगा, सोऊ करै जगत भय भंगा ॥३६॥
तातें मम सं देह मिटावौ, प्रम पेम सो मोहि बतावौ ।
भगवत धरम कहौ विसतारी, जो मैंहूं सुनि वेअधिकारी ॥३७॥
जिनतैं मिटै जगत भय भारी, बहुरि आपकूं देत मुरारी ।
ऐ सुंनि वचन सबनि सुष पाऐ,तब मांनहि दे वंन सुनाऐ ॥३८॥

॥ दुहा ॥

तब नृपके आनंद भयौ, भागा भरम अंदेस ।
तब राजा प्रसन करी, बोले कवि जोगेस ॥

कविरुवाच—

राजा प्रष्ण करी तुम ऐसी, बड़भागी पूछत है जैसी ।
निृभैपद ऐक है देवा, हरिके चरण कवलकी सेवा ॥ ३९ ॥
ताकूं छोडि करै नर जोई, दुषकौ मूल होत है सोई ।
जहां जहां जाइ तहां दुष भारी, काल पास कहुं टरै न टारी ॥४०॥
तातैं कहूं भागवत धरमां, मिले राम छूटै भव भरमां ।
श्रीमुष श्रीभगवांन सुनायौ, आप मिलनकौं पंथ बतायौ ॥ ४१ ॥
मूरिष नृ जे होवै कोई, इन पंथ निहरि पावै सोई ।
श्रम नहीं होइ बिलंब न लागै, भरम निसां सूतौ जीव जागै ।४२।
आंषि मूंदिऊ ध्यावै कोई, या हरिपंथ न कछू भय होई ।
हरि मिलनैंकौ मारिग ऐही, हरि भजि मुक्ति होइ यह देही ॥४३॥
हरि मिलनैंको मारिग कहूं, तेरे डरको संसौ दहूं ।
मन क्रम बचन बुधि अरू चित्त, होइ सुभावहुतैं जो त्रिति ।।४४॥

सो सब हरिहि समरपन करै, यौं भगवत धरमनि बिसतरै ।
जब यह जीव हरिहि बीलस्यो, तब हरिकी माया आवस्यो ॥ ४५ ॥
तब आपनो सरूप भुलायौ, आप मांनि तनमैं मन लायौ ।
द्वैत भाव तबही तैं उपन्यौं, ताहीतैं यह मरि मरि जन्यौ ॥४६॥
तातैं बुधि सेवै हरिचरणां, जातैं मिटै जनम अरू मरणां ।
सोधि लेइ उतिम गुरुदेवा, हरिकूं जांनि करै निति सेवा ॥४७॥
सो ज्यौं ज्यौं आचरण बतावै, त्यूंहीं त्यूं हरिसूं हित लावै ।
कपट न भजै तजै सब कांम, छूटै जगत मिले तब राम ॥ ४८ ॥
द्वैत कछु हैय नहीं राजा, आभास्यौ सो मनकौ काजा ।
जैसैं म्रषा मनोरथ सुपनां, मिनहीं करिते दोनूं उपना ॥ ४९ ॥
है कछू नहीं परिहै सो सोहै, ताकै संग लागि सब मोहै ।
तो संकल्प बिकल्प नहीं कीजै, मन दिढ़ राषि रामरस पीजै ॥५०॥
हरिके जनम करम गुन नांमां, सुन कहै सुमिरै सब जांमां ।
तजै लाज होवै नहि संगा, मगन रहै निति हरिके रंगा ॥ ५१ ॥
अैसैं भजत प्रेम अधिकावै, सब तनि रोमांचित ह्वै आवै ।
गद्गद सबद अटपटे बैंनां, द्रवै चित जल बरषै नैंनां ॥ ५२ ॥
रोवै हंसै ऊंचे सुर गावै, कबहू मौंनि गहि रहि जावै ।
लोक बेद कुल लाज न जांनैं, ज्यौ उनमंत बिबस यौं ठांनैं ॥५३॥
दसौं दिस्य सरित सिंध नग नागा, रवि ससि तार हंस अरू कागा।
षित जल पावक पवन अकासा, जो कछू देषै सो हरिदासा॥५४॥
हरिको रूप सकलकौं जांनैं, जहां तहां प्रणांमहि ठांनैं ।
कबहू भूलि न भासै आंनां, भयौ अनिन भजै भगवांनां ॥ ५५ ॥

ज्यौं ज्यौं बढै गुण अनुरागा, त्यूं त्यूं और सकलकौ त्यागा ।
त्यूं त्यूं अनुभव ज्यूं प्रतिभासा, तोष पोष अरु भूख पिपासा ५६
या बिधि करतैं पावन भक्ति, हरिजीसूं बाढै अनुरक्ति ।
तब कछू और भूलि नहीं भासै, तबही हिरदै ब्रह्म प्रकासै ।।५७।।
ब्रह्म ऐक्य दसहूं दसि देषै, द्वैत भाव करि कहूं न लेषै ।
ऐसे अंग भागवत मांहीं, सो हरिसैं है जगमैं नांहीं ।। ५८।।

।। दुहा ।।

ऐ सुनि कविजीके बचन, कीन्हीं प्रसन्न बिदेह ।
बहु भाषौ भागोतके, लषिण करुणां गेह ।। ५९ ।।

बिदेह उवाच—

।। चौपाई ।।

प्रभूजी कहौ भागवत लष्यण, जिन वसि होवै राम विचष्यण ।
कौंन धरम हिरदै दिढ राषै, क्यौं आचरै कौंन बिधि भाषै ।।६०।।
कौंन सुभाव निरंतर तिनकै, द्वैतभाव नांहीं उरि जिनकै ।
बोले हरि जोगेस्वर दूजे, नृपके बचन बहुत तिन पूजे ।। ६१ ।।

हरिरुवाच—

थावर जंगम सुष्यम थूला, ऐकै प्रकृति सकलकौ मूला ।
सो इक आतमकै आधारा, सो आतमा अस निरकारा ।।६२ ।।
हरि जीतैं उपजे ऐ दोई, अंति लींन हरिहीमैं होई ।
तात अबहू हरिकूं जांनैं, द्वैत भाव कबहूं नहीं आंनैं ।। ६३ ।।

ज्यूं साइर बुदबुदा तरंगा, यौं सब जगत जगतपति संगा।
या बिधि जांनि भयौ जो थीरा, सो हरिजन उतिम है बीरा ॥६४॥
जाकौ हरिसूं निहचल प्रेमां, अरू हरिजन संगति निति नेमां।
सब जीवनि परि करुणां आंनैं, सबउ घरे हिरदे यौं जांनैं ॥६५॥
जो कोई तापरि दोषहि ठांनैं, तहा तजे के ज्यूं त्यूं वानैं।
निसदिन रहै राम रंग राता, सो हरिजन मधि है ताता ॥ ६६ ॥
जो मूरतिमैं हरिकौं जांनैं, मन क्रम बचन आंन नहीं आंनैं।
ताकूं पूजे हित चित लाई, कछू न मांगे सहज सुभाई ॥ ६७ ॥
यूं हरिजन भजै हरि जांनीं, सतगुरु बिनां नहीं पहिचांनीं।
सबै आत्मां न हरिके जांनैं, सो प्राकृत जन साध बषांनैं ॥६८॥
बहुरि कहूं उतिम हरिभक्त, ताहि परषि हूजे आसक्ति।
दरस परसतैं कारजि सारै, ते हरिजन भवसागर तारै ॥ ६९ ॥
कृष्ण बसै जाके मन मांहीं, और संति कछू जांनैं नांहीं।
जो कछू कहै सुनैं अरू देषै, इंद्रिय कृत माया सब लेषै ॥ ७० ॥
सो हरिजन उतिम है येवा, तातैं मिलै निरंजन देवा।
जो जन ब्रह्म विचारहि पायौ,आप समझि सुष मांहि समायौ।७१।
जनमरू मरण देहके जांनैं, क्षुध्या त्रिषाकूं प्रांणहि मांनैं।
त्रिष्णां बुधिरुभय सौ मनकौ,यह लष्यण उतिम हरिजनकौ।।७२॥
करम बासनां अरू सब कांमां, तिनकौ भूलि न जांनैं नांमां।
बासदेवमैं कीन्हो बास, सो कहीऐ उत्तम हरिदास ॥ ७३ ॥
जिनके जाति बरण कुल कर्मा, लोक न बेद नहीं आश्रमां।
भूलि देह अभिमांन न आवै, सो उतिम हरिदास कहावै ॥ ७४ ।

किसी कुसत परि ममता नांहीं, अरु तनकौ अभिमांन न मांहीं ।
सब भूतन परि समता आंनैं, सो उतिम हरिदास बषांनैं ॥७५॥
अष्टसिधि त्रिभूवन सुप आवै, परि जो कबहूं मन न डुलावै ।
लिवनि मषारध तजै न चरनां, गुणांतीत न्रिभैपद सरणां ॥७६॥
जाकूं सिव ब्रिंच अरु देवा, तन मन लाइ करै निति सेवा ।
तेऊ जाके चरन न पावै, ताकूं जन क्यूंकरि छिटकावै ॥७७॥
हरिके चरण चंद्र चित जाकै, इहां ताप उठै क्यूं ताकै ।
ऐसौ हरिजन उतिम कहीऐ, ताके संगि प्रेमपद लहीऐ ॥७८॥
जाकौं हरिजी निमष न त्यागै, प्रेम डोरि बंधे क्यौं भागै ।
सो कहिये उतिम हरिदासा, कदे न तजीये ताकौ पासा ॥७९॥

॥ दुहा ॥

त्रिबिधि भक्त लक्षन कहे, नृपसूं हरि जोगेस ।
तब मायाके जांनिबे, कीन्हीं प्रश्ण नरेस ॥८०॥

इती श्रीभागवते महापुरांणे ऐकादस स्कंधे वसुदेव नारद संबादे जायते जो व्याष्याने द्वितीयौध्याय ॥ २ ॥

जनक उवाच—

॥ चौपई ॥

अब करि कृपा कहौ हरि माया, जिन ऐ सकल लोक भरमाया ।
तुमरे मुष सरोजकी बांनीं, हरिकी कथा अंमृत मय जांनीं ।१।
ताकौं पीवत त्रिपति न मांनौं, सदा पीऊं ऐसो मन जांनौं ।
भवके ताप तपत जो देही, ताकूं परम औषदी ऐही ॥ २ ॥
ऐसे सुनि नृपतिके बैंनां, बक्ताकूं उपजावन चैंनां ।
तब बोले बांनीं अभिरांमां, तीजे अंतरिक्ष सेनांमां ॥ ३ ॥

अंतरिष्य उवाच—

प्रथमहीं दूजौ हुतौ न नांमां, आपुही आप बिराजै रांमां ।
दयालिंध मन मांहि बिचारा, तब यह कस्यौ सकल संसारा ॥४॥
पंचभूत करि रचीयौ देहा, बंध्यौ तहां आत्मां ऐहा ।
जातैं पहलैं भोगवै भोगा, बहुरि दुषित होवै भवरोगा ॥ ५ ॥
तातैं मोसूं चित लगावै, मेरौ निजानंद पद पावै ।
मगन रहै मेरे आनंदा, बहुरि नहीं व्यापै दुषदंदा ॥ ६ ॥
याहीतैं यह भव बिसतार्यौ, भीतरि अंस आपनौ डार्यौ ।
इंद्रिय दस अरू मन बिसतारे, बहुत भांतिके बिषय पसारे । ७ ।
सो यह अंस एंद्रियन मनसूं, भोग भोगवै सबही तनसूं ।
आप भूलि भोगनि मन दींन्हौं, तब अभिमांन देहकौ कींन्हौं ।।८।।
भोग निमति करम बिसतारे, तिनके फल सुष दुष भय भारे ।
तिन करमनितैं जौंनि अनंता, जनम मरनकौ लहै न अंता ॥ ९ ॥

प्रलय अवधि लौं इहैं निरंतर, लीन होय पुनि माया अंतर ।
बुद्धि जनीं बहुसौं तन पावै, भवसागरकौ अंत न आवै ॥ १० ।
प्रगत प्रसत प्रलय अवधि आवै, तब सब काल काल मन भावै ।
तब सत बरस न बरषै जलध,रतेज तपै तहां द्वादश दिनकर ॥११॥
बहुर्यूं अगनिते समुद निसरै, प्रलय पवन मिलि जहां तहां पसरै
सारे लोक भसम तब करै, बहुर्यूं प्रलय मेघ संचरै । १२ ।
हाथी सूंडि धार जल बरषै, यौं अखंड बीतै सत बरषै ।
तब होवै विराटकौ नासा, आतम करै प्रकृतिमैं बासा ॥१३॥
जो असंख होवै ब्रह्मांऊ, तोहू ब्रह्ममांहि नहीं ठांऊ ।
ते हरिभक्ति हरिहीतैं पावै, और प्रकृतिमैं सकल समावै १४
पवन करै जब गंधहि षींन, भूमि होइ तब जलमैं लींन ।
त्यौंहीं रसकूं हरै समीर, तातैं मिलै तेजमैं नीर ॥१५॥
अंधकार जब रूपहि हरै, तेज तबै पवनहि संचरै ।
बहुरि स्परसहि हरै अकासा, पवन करै तब नभमैं बासा ॥१६॥
काल कीयौ जब सबदहि षींन, तांमस अहंकार नभ लींन ।
तांमस अहंकार मन मिलै, राजसि अहंकार दोऊ गिलै ॥१७॥
इंद्रिय अरू राजस अहंकारहिं, सत्व अहं कीन्हौं अहारहि ।
बुधिदेव सात्विक अहंकारा, महातत्व कीन्हौं संघारा ॥१८॥
महातत्व सो प्रकृतिहि मिलै, या विधि काल सकलकूं गिलै ।
अैसी ही विधि बारंबारा, उतपति परलै अंत न पारा॥१९॥
यह सब हरिकी माया करै, उपजावै प्रतिपालै हरै ।
मैं तुमकूं संषेप सुनाई, बहुरि करो प्रसन मन भाई ॥२०॥

॥ दुहा ॥

अैसी सुनि माया प्रबल, उपज्यौ नृपके भीत ।
तब पूछी आधींन ह्वै, ता तरिबेकी रीति ॥ २१॥

राजा उवाच—

॥ चौपई ॥

अैसी प्रबल ईसकी माया, जिनि यह सकल लोक भ्रमाया
ताकौं तुमसे ग्यांनीं तिरै, हमसे देही क्यौं निसतिरै ॥२२॥
ताकूं सुषही तरिये देवा, सो करि क्रिपा बतावौ भेवा ।
ऐ सुनि बवन नृपतिके सुधा, तब बोले चोथे परबुधा ॥ २३ ॥

प्रबुध उवाच—

सकल मनुष सुषनके काजा, करै क्रम आरंभहि राजा ।
तिनतैं केवल दुष अधिकारा, अबहूं अरु आगैं बिसतारा ॥२४॥
पायेहूं धन दुष अपारा, निसदिन चिंताकौ अधिकारा ।
सोऊ अति दुर्लभ नहीं आवै, जो आवै तो थिर न रहावै ॥ २५ ॥
त्यूंहीं ग्रह कुटंब सुत दारा, पलक मांहि ढह जाइ पसारा ।
ज्यूं पंथ मांहीं मिलनां होई, घरीक मांहि बिछुरै सब कोई ॥२६॥
जे जे कछू इहां करम कमावै, तिनतैं जोनि जौनि दुख पावै ।
इनमैं कोई नहीं छुड़ावै, आपै आपकूं सब को जावै ॥ २७ ॥
याही बिधि बिन स्वरपरलोका, थरि न रहै बिधिहूकौ वोका ।
छोटे बड़े नीच बहु भांती, तिनके मनकी मिटै न कांती ॥ २८ ॥

मद मछर तन काहूँ मांनें, कांम क्रोध अरु लोभ समांनें ।
निपदां द्वेषे कछू न जांनैं, आपु आपुमें ऊधहि ठांन ॥ २९ ॥
काल पाइ ऊहांहुतैं टरै, बहुरि आइ इहां अवतरै ।
जौं विचारि वैराग उपावै, तबही सोधि गुरु सरनिहि आवै ॥३०॥
सब्द ब्रह्म सकल जो भाषै, पारब्रह्म निति हिरदै राखै ।
ऐसे गुरु बिनि ग्यांन न पावै, तातैं सोधि गुरुपहि आवै ॥ ३१ ॥
ब्रह्म जांनि ता सेवा ठांनैं, आलस कपट कांमनां भांनैं ।
तासें सीषै भक्तिके अंगा, जिनतैं हरिजी तजै न संगा ॥ ३२ ॥
सबनैं मनकौ संग मिटावे, उलटि साधु संगतिसूं लावै ।
सब जीवन परि करुणा आनैं, सम मित्रता उतिम बहु मांनैं ।
सोचपाठ तपमां नित सिष्या, बहुविधि लेवे गुरुसूं सिष्या ।
ब्रह्म चिरज अरु कोमल रहना, हिंस्या त्याग द्वंद सब सहनां॥३४॥
गेहकी आश्रम न बाधै, बसत्र टूकनैं वलकल सांधै ।
जहां तहां चेतन आत्म देषै, प्रमात्मां नियंता लेषै ॥ ३५ ॥
ग्रंथ भक्तिकी सरधा करै, निंदा राग द्वेष परहरै ।
देह बचन अरु मनकूं दंडै, सम श्रम सत संतोष न छंडै ॥३६॥
जनम करम अरु गुण हरिजीके, सदा सुनैं उचारन जीके ।
त्यूंहीं कहै निरंतर ध्यावै, सोही करै हरिही जो भावै ॥ ३७ ॥
जप तप जोग जिग ब्रत दांनां, तन मन धन दारा सुत प्रांनां ।
जो कछू सो सब हरिहि निवेदै, या बिध सकल क्रमकूं छेदै॥३८॥
थावर जंगम हरिमय जांनैं, परिसेवा साधुनकी ठांनैं ।
मिलै परसपर हरिगुन गावै, निसदिन कहत सुनत सुष पावै ॥३९॥

पल-पल प्रीति करै हिय फूले, गुनन संभालत तनकूं भूलै ।
दूजो भाव न कबहुं उपनैं, प्रेम मगन जाग्रत अरु सुपनैं ॥ ४० ॥
अैसैं प्रेम भगतिकौं पावै, पल पल तन पुलकित ह्वै आवै ।
कबहू हरि चितवनितैं रोवै, कबहू हसै अनंदति होवै ॥ ४१ ॥
कबहू नांचे कबहू गावै, लाज रहत ज्यूं ज्यूं मन भावै ।
कबहू गुन सुमिरत मिलि जावै,स्वास सबद बाहरि नहीं आवै ॥४२॥
या बिध्य लेवै गुरुसूं सिष्या, गुरु सिष्यनकी यह परिष्या ।
ब्रह्म परांयन ता जनकेरै, माया भूलि न आवै नेरै ॥ ४३ ॥

॥ दुहा ॥

ऐ सुनि बचन बिदेहके, हिरदै बढ़्यौ आनंद ।
प्रष्ण करी तब ब्रह्मकी, ज्यूं छूटै भवफंद ॥ ४४ ॥

बिदेह उबाच—

॥ चौपई ॥

ब्रह्मबेतां तिनमैं अधिकारी, तुम हो मैं यह हिरदै बिचारी ।
तातैं कहो ब्रह्मको रूपा, जांनें जाहि मिटै भवकूपा ॥ ४५ ॥
प्रमात्मां ब्रह्म भगवांनां, ऐ त्रय ऐक किधौं है नांनां ।
सब जीवनकूं अति करुणायन, तब बोले पंचम पिपलायन ॥४६॥

पिपलायन उबाच—

सुष्यम थूल सकल संसारा, जाकी सक्ति सक्तिबिसतारा ।
उतपति प्रलय करै वैह याकौ, काहूहुतैं जनम नहीं ताकौ ॥४७॥

साधन सुगम सुमौनहि हीना, कहुँ सब वेदकहि दुरिया ।
इंद्रिय देह हिराइए अरु प्रांणां, जातैं चेतन है परवांनां ॥४८॥
जैसे यह जड़ लोह न चलै, चुंबक संगि बहुत विधि फिरै ।
सो भगवांन सकल पुनि सोई, सो परमातम जांनैं कोई ॥४९॥
मन अरु बुधि चित अरु प्रांनां, इंद्रिय देह सबद् अभिमांनां ।
कोई ताहि पहुंचि नहीं सकै, जात जात उरैंही थकै ॥५०॥
जैसें पावक लोह तपायौ, पावक समांनि तेज तिन पायौ ।
ता प्रकासै सबकूं जालै, परि पावकपरि जोर न चालै ॥५१॥
यूं मन इंद्रिय हिरदैय अचेतन, ताके संगहुंतै है चेतन ।
और सकल अरथनकौं जांनैं, कौंन सक्ति सो ताहि पिछांनैं ॥५२॥
तै ते अरथ बषांनैं वेदा, परिप्रतक्ष न जांनैं भेदा ।
यह नहि यह नहि यह नहि होई, यातैं परैं सत्य है सोई ॥५३॥
सूक्ष्म थूल न जावै बरनीं, गिगनि पवन पावक जल धरनीं ।
नहीं मन बुधि चित्त अहंकारा, चिदानंदमय सबकै पारा ॥५४॥
नां सो बाल व्रध नहीं जूवा, नां सो बिनसै नां सो हूवा ।
तिरीया पुरष कलीव न होई,सुर नर नाग असुर नहीं सोई ॥५५॥
रक्त पीत सित असित न हरता, जाति बरण आश्रम न धरता ।
सीत न उसन चंद नहीं सूरा,दिवस न राति निकटि नहीं दूरा ।५६
सुप दुष रहत बसै सब मांहीं, आपुही आपु लिपै कहूं नांहीं ।
अंधे भावसूं आतम अंसा, सुनि सूर्गोवर बिलसै हंसा ॥५७॥
गिगनि पवन पावक अरु नीरा, धरनि बंधि सब कीये सरीरा ।
पंच तसत ये पंचौं बंधा, सब्द् सपरस रूप रस गंधा ॥५८॥

इंद्रिय दस अरु तिनके देवा, सांतिक राजस तांमस भेवा ।
मन बुधि चित म्हतत अहंकारा,ऐक प्रकृतिकौ सकल पसारा ५९
ऐक ब्रह्म है ताकौ कारण, बिन इंछा सबकौं बिसतारण ।
ज्यौं भुवमैं बहु घट उपजावे, भूमैं रहै भू मांहि समावै ॥६०॥
ते सब घट दीसै बिधि नांनां, परिभुव छोड़ि नहीं कछू आंनां ।
यूं सब जगत आदि मधि अंता,और न कछू ऐक भगवंता ॥६१॥
सो नहि उपजे बिनसै नांहीं, बाल जुवादि परै नहीं छांईं ।
बधे न घटै चलै नहीं डोलै,रोष न तोष मौंनि नहीं बोलै॥६२॥
जहां तहां पूरण प्रम अनूंपा, चिदानंद बिग्यांन सरूपा ।
देह भेद बहुधा सो सोहै, ग्यांन बिनां सारौ जग मोहै ॥६३॥
जैसैं पवन ऐकही प्रांनां, दस इंद्रिय संगि दीसै नांनां ।
उदिभिज स्वेद जरायज अंडा, च्यारि षांनि पूरन ब्रहमंडा ॥६४॥
लिंग देह जा देहहि जावे, प्रांण बाय तहां आंनि समावै ।
सबद सपरस रूप रस गंध, मन अहंकार बुधि चित बंध ॥६५॥
लिंग देह इनहीं नवकौ है, याके मिटैं निरंजन सो है ।
निंद्रा बसि सुषपति जब आवै,तब यह लिंग देह छिटकावै ॥६६॥
अहंकार ममता कछू नांहीं, मन अरू बुधि चित सब जाहीं ।
तब अद्वैत ऐक है सोई, द्वैत भावकौ नांम न कोई ॥६७॥
मन बुधि चित अहंकार न रहै, जागे प्रथम बातकौं कहै ।
जो करनौ तो जो तौ कीयौ,शाल्नौं पीछैं लीयौ दीयौ ॥६८॥
तातैं सो हरि जांननहारा, या बिधि कीजे ब्रह्म बिचारा ।
परिबासनां सहित ही रहै, तातैं देह फेरि करि लहै ॥६९॥

लिंग सरीर सहित वासनां, ताहि मिटै नहीं भवसासनां ।
तातैं हरि चरननि चित लावै, ओर सकल बंधन छिटकावै ॥७०॥
या विधि सकल चित मल न्हासै, रवि समांन जब ब्रह्म प्रकासै ।
जो नर प्रथम भक्ति नहीं जांनैं, तो वह करम जोगकूं ठांनैं ॥७१॥
करम जोगतैं उपजै भक्ति, तब हरि चरण बढै आसक्ति ।
तातैं होय ब्रह्म प्रकासा, छूटै काल जाल भवपासा ॥७२॥

॥ दुहा ॥

ऐ पिपलायन वैंन सुनि, करी प्रष्ण मथलेस ।
करम जोग अब करि कृपा, कहौ प्रम जोगेस ॥७३॥

विदेह उवाच—

॥ चौपई ॥

करम जोग अब कहौ गुसांई, मैं आयौ तुमरी सरणांई ।
जाके कीऐं मिटै सब करमां, उपजे ग्यांन होय निह करमां ॥७४॥
दूजा प्रष्ण कहौ तुम ऐहा, जाको मेरे अतिसंदेहा ।
ब्रह्मपुत्र सनकादिक चारी, ब्रह्मपरांयण ब्रह्म विचारी ॥ ७५ ॥
ऐक वार कृपा करि आये, पिता समींप दरस मैं पाये ।
यह प्रष्ण मैं तिनसौं कीन्हौं, उतर न दीयौ हिरदे धरि लींन्हौं॥७६॥
नहीं बोले सौ कौनैं कारण, ऐह भाषौ भवसागर तारण ।
ऐसे वचन नृपति तब भाषे, अविहोत्र छठे जब आषे ॥ ७७ ॥

अविरहोत्र उवाच—

राजा सुनौं करमगति गहनां, तातैं जहां तहां बनैं न कहनां ।
यह ज्यौं है त्यौं बेद बषांनैं, तातैं याहि न कोई जांनैं ॥७८॥

बेद प्रगट करता हरिदेवा, रिषि अरु पुरुष लहै क्यौं भेवा ।
भेव लहैं बिनि मिटै न मरणां, लहै भेव पावै हरि चरणां ॥७९॥
तातैं तुम होते तब बाला, जातैं कह्यौ न करम बिसाला ।
अब मैं कहूं सुनौ चित लांई, जांनैं जाहि ग्यांन अधिकाई ॥८०॥
करम जोग है तीन प्रकारा, क्रम अक्रम बिक्रम पसारा ।
हरि निमति सो कहीये क्रमां,हरि बहीन सो सकल बिकर्मां॥८१॥
सो अकर्म जो होऊ त्यागै, ग्यांन बिनां सुष इहां न आगैं ।
कर्म करत छूटै सब कर्मां, उपजै ग्यांन मिटै भव भरमां ॥८२॥
कर्म तजन कूं कर्म ग्रहावै, तातैं बेद न समुझ्यौ आवै ।
पहलैं सुरगादिक फल भाषै, आगैं सकल दूरि करि नाषै ॥८३॥
ज्यूं कोई बालक रोगी होवै, औषदि कटूक नांम सुनि रोवै ।
ताकूं लाडू पिता दिषावै, औषदि काजि लोभ उपजावै ॥८४॥
औषदकौ फल लाडू नांहीं, औषद पीयें रोग सब जांहीं ।
त्यौं सुरगादिक लोभ दिषावै, करमनासकौं करम करावै ॥८५॥
सुरगादिक फल पहुपति बांनीं, तोरें पहुंप होत फल हांनी ।
तातैं करै बेदके क्रमां, हरिकै हेति बड़ौ यह धरमां ॥८६॥
और कछू फल भूलि न जांनैं, हरिकै हेत करम सब ठांनैं ।
मैं करता यौं कदे न भाषै, जो कछू सो हरिकौ करि राषै ॥८७॥
या बिधि प्रेमभक्ति उपजावै, तब सब करम आपही जावै ।
जबही प्रगटै ग्यांन प्रकासा, मिलै राम छूटै भवपासा ॥८८॥
बैदिक पंथ कह्यौ मैं तोसूं, अब सुनि तंत्र पंथ पुनि मोसूं ।
हिरदय गांठि काटी जो चाहै, सो बिधिसूं पूजा अवगाहैं ॥८९॥

देह मिलत भागवतहूं दूजा, जातैं मिटै सकल भ्रम दूजा ॥
श्रीगुरतैं मन्त्राक्षर पावै, सो ज्यौं ज्यौं सब विधिहि बतावै ।९०।
ता मूरति परिक्षा होई, हरिहि जांनि करि पूजै सोई ।
अति पवित्र होइ कर सनांनां, मनकी तजै वासनां नांनां ॥९१॥
वाय अपांन छीक जमुहाई, और पवन गुन उठै न काई ।
कुसकुस बैठि करै तनरक्षा, अंगन्यास मंत्र पढ़ि अक्षा ॥९२॥
आसन सोधि सौंजि सेवाकी, सब ले बैठै तजै न बाकी ।
दिव्य रूप प्रतिमामैं आंनैं, अरघ पाद अरू विष्टर ठांनैं ॥९३॥
मूल मंत्र करि पूजा करै, और न कछू बचन उचरै ।
सकल अंग हरिजीके ध्यावै, संषचक्रगदापदम मन ल्यावै ॥९४॥
भूषन बसन पारषद सहता, हसितवदन देषत दुष हता ।
विविधि भांति सनांन करावै, करि तिलकादि बसत्र पहिरावै ॥९५॥
बहुरि सुगंध माला पहरावै, बहुत भांति करि भोग लगावै ।
गंध धूप आरती सवारै, घंटा आदि सबद बिसतारै ॥९६॥
या विधि संतन सेवा करै, ता पीछे अस्तुति बिसतरै ।
बहुरि करे डंडवत प्रनांमां, पढ़ैं मंत्र लेवे हरिनांमां ॥९७॥
बाहरि वस्त मिलै ते आनैं, और न मनसूं पूजा ठानैं ।
तनमय भयौ निरंतर सेवै, वह प्रसाद मसतक धरि लेवै ॥९८॥
बहुरि देवकूं हिरदै धरै, मूरति सैयन पिटारै करै ।
या विधि हरिकै आतम जांनैं, जथा सक्ति सब पूजा ठांनैं ॥९९॥
ऐसैं सेवत उपजै ग्यांनां, बेगहि आंनि मिलै भगवांनां ।
तब कछू भूलि और नहीं भासै, सब घट ऐक ब्रह्म प्रकासै ॥१००॥

॥ दुहा ॥

ऐ सुनि बचन अदीहोत्रके, वाढ्यौ मनमैं प्यार ।
तब गुन अरू करमनि सहित, पूछे हरि अवतार ॥१०१॥

इतिश्री भागवते महापुराणे ऐकादस स्कंधे बसुदेव नारद संवादे जायते जो व्याष्याने त्रतीयोध्याय ॥ ३ ॥

राजोवाच—

॥ चौपई ॥

अब अवतार कथा बिसतारौ, गुन अरु क्रम सहति उचारौं ।
जे जे लीयें लेहि जो आगे, अबहू सब भाषौ अनुरागे॥१॥
ऐ सुनि नृपति जनकके बैंनां, क्रपासिंधु करुणांके अैनां ।
तब सातयें द्रुस्थलसे नांमां, बोले बचन प्रम अभिरांमां ॥२॥

द्रुमिल उवाच—

जे अनंतके गुन अवतारा, तिनकौ नृपति लहै को पारा ।
भूमि रेंन करि कोई गनैं, सोऊ कहा सकल गुन भनें ॥३॥
हरिके गुन औतार अनंता, बाल बुधि जो चाहै अंता ।
तातैं कछू ऐक मैं भाषौं, तेरे हिरदै न संसा राषौं ॥४॥
पंचभूत निरमत ब्रहमंडा, राष्यौ नीर माँहि ज्यौं अंडा ।
तामैं अंस आपनौ धारा, सोहै आदि पुरष अवतारा ॥५॥
जिनकी देहहुतैं सब देहा, देहमांहि बरतै सब ऐहा ।
तिनके अंगनितैं सब अंगा, इंद्रिय अहं बुधि प्रसंगा ॥६॥
सत रज तमतैं सकल पसारा, उतपति अरू पालन संघारा ।
प्रथमहिं रजतैं ब्रह्मा कीयौ, सांतिक जनम बिसनकूं दीयौ ॥७॥

तामस करि संकर उपजाये, तिनसौं सकल लोक निपजाये ।
ब्रह्मा रचै विष्णु प्रतिपाल , हरै रुद्र यौं भवपंथ चालै ॥८॥
बहुरि सुनौ हरिके अवतारा, भवसागरके तारनहारा ।
धरमपिता अरु मूरति माता, तहां नर नाराइण विख्याता ॥६॥
आत्मग्यांन भक्ति विसतरै,जासूं लागि जीव निसतरै ।
अवहूं प्रगट करै आचरणां, नारदादि सेवै नित चरणां ॥१०॥
ऐकवेर सुरपति मनि आंन्यौं, मम लोकहि लेह हिरदै यौं जांन्यौं ।
तव तिन आग्या कांमहि दीन्हीं,कांम संगि सैंनां सव लींन्हीं॥११॥
रंभादिक अपसरा अपारा, त्रिविधि पवन वसंत पसारा ।
बद्रीषंड सवै चलि आये, नरनारायण वैठे पाये ॥१२॥
भरि भरि वाननि हनें सरीरा, निफल भऐ अगनि ज्यौं नीरा ।
तवते रोम रोम थहरांनें, आपं अगनि जीवन गति मांनें ॥१३॥
हरि अप्राध इंद्र कत मांन्यौं,हंसि वोले सवको भय भांन्यौं ।
मति भय करौ पंचसर वीरा, देवनारि भय प्रांण समीरा ॥१४॥
वैठौं इहां अतिथ करावौ, हम आश्रम सुफल करि जावौ ।
ऐ सुनि अभय दानके वैंनां,ते सव जोरि सकै नहीं नैनां ॥१५॥
लज्या भार नवाऐ सीसा, वोले वचन जांनि जगदीसा ।
हे प्रभु यह कछू नहीं अचंभा, तुम हो प्रकति पुरुषके थंभा ॥१६॥
निरविकार निगुण नर भेदा, जिनकौं जांनि सकै नहीं वेदा ।
निजानंद पूरन मुनि सारे, ते सेवत है चरण तुम्हारे ॥१७॥
तुमरे चरण सरणि जे आवे, तिनकूं सुर वहु विघन पठावे ।
तिनकौ लोक दाबि पग नींचैं, गऐ चहै तुम्हर पद ऊंचे ॥१८॥

तातैं बिघन करैं सब देवा, मिटती जांनि आपनीं सेवा ।
और किसीकूं बिघन न करही, जातैं तिन्हैं दंड सब भरही ॥१९॥
परि तुव जनहि न बिघन सतावे, बिघन न चरण सीस दे जावे ।
जो त्रिभुवनपति तुम रषवारे,काहा करे तो बिघन बिचारे ॥२०॥
तातैं तुम्हरो कहा अचंभा, जातैं मोहि सके नहीं रंभा ।
षुध्या त्रिषा अरू आलस निद्रा,सीत उसन बिरषाकृति तंद्रा ॥२१॥
जिह्वा सिसनांदिक बिसतारा, यनके गुनते जलदि अपारा ।
ताकौं बहुत कष्टकरि तरै,गोपद क्रोध बूडि ते मरै ॥२२॥
तिनकौ तप सब ब्रिथा जाई, दुहु लोकमैं ऐक न काई ।
तातैं सब साधनहु करै, तुम्हरी भक्ति बिनां नहीं तरै ॥२३॥
या बिधि देव बचन उचरै, तब हरि ऐक अचंभा करै ।
अति अदभुत छबि नारि अनेका, मनमोहनी ऐकतैं ऐका ॥२४॥
ते सब सेवा करत दिषाई, मांनौं रंभा सषिन सौं आई ।
तिनके गंध रूप सब मोहै, चंद उदै उडगन ज्यूं सोहै ॥२५॥
तिनसौं हरिजी बोले बैंनां, यनमैं ऐक लेहु तुम मैंनां ।
स्वरग लोककौ भूषन रूपा, जातैं ये सब प्रम अनूपा ॥२६॥
तिन सब हिरिकूं कीयौ प्रनांमां, लींनीं ऐक उरबसी नांमां ।
करि प्रणांमं पुनि बारंबारा, पहुंचे सकल इंद्र दरबारा ॥२७॥
तिन इंद्रहि प्रसंग सुनायौ, बिसमय त्रास इंद्र मन आयौ ।
बहुरि लीयौ हंसा अवतारा, च्यारि भये सनकादि कुमारा ॥२८॥
दतकपिल अरू पिता हमारा, आठहु ब्रह्मरूप बिसतारा ।
हयग्रीव मधुप्रांण निवारे, ताकरि हरे बेद उधारे ॥२९॥

तपित राजा हरि भक्त, ताकूं हरिजी कीयौ निरक ।
तिनहीं दले दलें दिखावीं, कछछप ध्यांनहि लम्बावीं ॥३०॥
बहुरि बराह रूप हरि धारयौ, हिरनाक्ष अति दुष्टहि मारयौ ।
धरती हुती गई जलमांही, सो ऊपरि थापी पलमांहीं ॥ ३१ ॥
कूरम है मंदरगिर धरयौ, इंम्रत काढि सुरकारिज करयौ ।
ग्राह गह्यौ गजराज पुकारयौ, तब हरिजी ततकालि उबारयौ ॥३२॥
बालखिल्यादिक जे रिषराजा, अंगुष्ट सम आकार बिराजा ।
कश्यपके काजें इक बारा, समिधनकूं ते वनहि पधारा ॥३३॥
तहां गऊके पग जल भरिया, तिनमैं आप आप सब परिया ।
हासी करै इंद्र तहां धरौ, तब तिन हिरदय हरिहि संभरौ ॥३४॥
जब आनकूं कोई नांहीं, तब तुम नाथ उधारन मांहीं
तातें अब हम भये अनाथा, करुणांसिंध गहौ कर हाथा ॥३५॥
इतनीं सुनि आरतिकी बांनीं, तहां उठि धाये सारंगपांनीं ।
तब हरि करि गह सबनि उधारा, बालखिल्याउ धरन अवतारा॥३६॥
ब्रह्महत्याभय इंद्र संभारयौ, तबही हरिजी प्रगट उधारयौ ।
सुर बिनता जब असुरनि हरी, तबते हरि सरनय अनुसरी ॥३७॥
तब हरि जोनि सकल उधारी, असुर मारि सब बिपति निवारी ।
पुनि नरसिंघ रूप हरि धारयौ, असुर हरनकस्यप जिन मारयौ॥३८॥
जन प्रहलादहि लींन्हौं राषी, जाकी प्रगट कहै सब साषी ।
जब जब असुर अप्रबल अति भये, देवनिके असथल हरि लये ॥३९॥
तब तब सब मनंतर मांही, विष्णुकला अवतार धरांहीं ।
मारि असुर सब दुष मिटावे, सरनांगति सुरनर सुष पावे ॥४०॥

बांवनरूप इंद्रके काजा, भिष्या छल छलीयौ बलि राजा ।
तीन लोक लै इंद्रहि दपे, बलकी भक्ति आप बसि भपे ॥४१॥
बहुरि अधरमीं उपजे राजा, परसरांम प्रगटे तिह काजा ।
यकबीस बार करी नहछत्री, भूमैं कहूं न राष्यौ ष्यत्री ॥४२॥
बहुरि भपे दसरथसुत रांमां, जेहैं प्रगट लोक अभिरांमां ।
सायर ऊपरि सयल जिन तारे, रांवण आदि दुष्ट संघारे ॥४३॥
आगे रांमकृष्ण अवतारा, भूको प्रबल हरैंगे भारा ।
जदुकुल जनम करम ते करिहैं,जिनसौं लागि जीव निसतरिहैं॥४४॥
असुर देष्य जग्यनके करता, जीवन मारि उदर ते भरता ।
बुध रूप हरिजी तब धरि हैं, जग्यन मेटि पाषंड बिसतरि हैं ॥४५॥
बहुरि धरेंगे कलकी रूपा, अति अप्राध कर जब भूपा ।
कलिके अंत सकल सुंहरि हैं, बहुरि प्रब्रति सतजुग करिहैं ॥४६॥
अैसे बिष्णु करम अनतारा, कहत न कोई पावे पारा ।
कछू येक मैं तुमसौं कहे, औरें कोटि अनंतनि रहे ॥४७॥
यनकूं कहै सुने जो गावै, प्रेम सहति निसबासुरि ध्यावै ।
सो भवसागरमैं नहीं रहै, पावै ग्यांन प्रमपद लहै ॥ ४८॥

॥ दुहा ॥

ऐ बैंनां सुनि दुरमिलके, कीन्हीं प्रष्ण निरंद ।
प्रभुजी तिनकी कौनगति, जे न भजे गोबिंद ॥४९॥

इती श्रीभागवते महापुरांणें ऐकादस स्कंधे बसुदेव नारद संबादे जायते जो व्याष्याने चतुरथोध्याय ॥४॥

निमि उवाच—

॥ चौपई ॥

जे न करैं हरिजीकी सेवा, तिनकी कहौ कौंन गति देवा ।
तिनकैं विपति न सुपनैं आवै, निसदिन विसनां अगनि जरावै ॥१॥
पुनि जो बहु विधि धर्म उपावै, नामहि कहौ कछू सुष पावै ।
ये कहि वचन जनक जब रहे, अष्टमे चंमसनांम तब कहे ॥२॥

चंमस उवाच—

हरिजी विप्र मुखतैं करे, बाहुनितैं क्षत्री विस्तरे ।
जंघनहूतैं वैश्य उपजाये, सुद्र तिम चरननतैं आये ॥ ३ ॥
याही भांति कीये आश्रमां, तातैं भजन सबनिकौ धरमां ।
जे आपही करै प्रतिपाला, आपुही पोषै दीनदयाला ॥ ४ ॥
ऐसे प्रभूकूं जो नर बिसरै, ते अपार अप्राधनि करै ।
तेई गुरुद्रोही पित्रद्रोही, स्वामद्रोही कृतघन वोही ॥ ५ ॥
तिन अप्राध्य अधोगति जावै, कबहू भूलि सुष नहीं पावै ।
सुद्र लोपगता अंत्यज आदि, तिनकूं दूर कथा श्रवणादि ॥ ६ ॥
ते मनमैं अभिमांन न धरै, तातैं तुमसे कृपा करैं ।
जातैं यनकौ है उधारा, पनि ऊंचेकूं वार न पारा ॥ ७ ॥
विप्ररु छत्री वैश्यरु त्रिवरनां, उपनयनादि वेद मष करनां ।
इन सबहिनके ते अधिकारी, तातैं होहि बहुत अहंकारी ॥ ८ ॥
तातप्रजकूं जांनत नांहीं, पुहुपत बांनीमैं भरमांहीं ।
विष्ण भजन उतिम अधिकारा, पायौ ताहि न लिषै गवारा ॥९॥

क्रम अक्रम बिक्रम न जांनैं, अति कठोर आपहि बहु मांनैं ।
हम पंडित जग्यनके कारक, और बहुत क्रमनि बिसतारक ॥१०॥
आप भ्रमैं औरनि भरमावे, प्रियबांनीं बहुभांति सुनावे ।
कांमरू अरथ अरथ करि मांनैं,पढि पढ़ि बेद साषि बहु आंनैं॥११॥
बहु संकल्प करै मन मांहीं, बहुत बहुत आरंभ करांहीं ।
त्यौंहीं त्यौं राजस अधिकारा, कांम क्रोध लोभ अहंकारा ॥१२॥
दंभ कपट चतुराई आंनैं, हरि भक्तनकी हासी ठांनैं ।
आपु आपु मिलि बैठे जबही, ग्रहके सुषन सराहै तबही ॥ १३ ॥
जिनमैं आनंद ष्यनहु नांहीं, दंभमांनसूं जग्य करांहीं ।
बहु तप सुन्य मारै अग्यांनीं, तिन अप्राधनि सकै न जांनीं ॥१४॥
यतनौ धन आयौ यह ऐहैं, ऐतो मिलिऐ तौ तब ह्वैहैं ।
कुल संपति बिद्या ठुकराई, त्याग रूप बल क्रम बडाई ॥ १५ ॥
इनकौ मद बाढ्यौ अधिकाई, तातैं हिरदय समझि नहीं आई ।
हरि भक्तनसूं ठानैं हासी, मगहर मरै छाडि षलू कासी ॥ १६ ॥
थावर जंगम सब घट मांहीं, हरि पूरण षाली कहुं नांहीं ।
ज्यूं आकास लिपत नहीं होई, त्यूं हरि बेद कहत है सोई ॥१७॥
परि वे मुढ कछू नहीं जांनैं, तातैं हरि भक्तन नहीं मांनैं ।
बहुत मनोरथ निसदिन करै, त्रिसनां ताप जलनि नहीं टरै ॥१८॥
मदपांन अरु मास अहारा, नारीनेह सहत जग सारा ।
ता सकलही त्यागिबे निमता, बिधिमैं बेद लगायौ चिता ॥१९॥
संग करै तो नारि बिवांहीं, ताहूमैं बहुतैं थिति नांहीं ।
बहुरि कह्यौ देवे रतुदांनां, प्रजा निमत चित नहीं आंनां ॥ २० ॥

या विध्द क्रम क्रम बहुत छुडावै, बहुरि बेद सब त्याग करावै ।
ऐसैंही आसप मद पांनां, जग्य नाँहिं नांहीं कहुं आंनां ॥ २१ ॥
बहुरयूं वहांहुतैं छुडावै, ऐसौ तातप्रजकौं पावै ।
हरिकी शनिहि आवै कोई, सारी ही विधि समझै सोई ॥ २२ ॥
कै जो तिनकी सरनहि आवै, अभिप्राय सारो सो पावै ।
कै हरिजन अरु हरिहि न जानैं, आपहिकूं पंडित करि मांनैं ॥२३॥
तात तातपरज नहीं जांनैं, पढि पढि बेद अनरथिन ठांनैं ।
धन ऐसौं जो करै उधारा, सौ धन षोवै ब्रिथा गिवारा ॥ २४ ॥
सो धन हरिकै काजि लगावै, सो तब प्रेम भक्तिकूं पावै ।
तातैं होइ ग्यांन परकासा, तब हरि मिलै मिटै सब पासा ॥२५॥
ऐसौ धनतै मुढ़ अयांनां, देह काजि षोवै भरमांनां ।
काल निरंतर हरत न देषै, बहु मदमत दूरि करि लेषै ॥ २६ ॥
मद्र मास सपमैं आंनींजै, और भूलि कहूं नांव न लीजै ।
तहांऊ आप लेय आग्रनां, षांनपांनतैं अधिगति जांनां ॥ २७ ॥
त्यूं विनता रत्युदांनहि देवै, और भूलि कहूं नांव न लेवै ।
सोऊ जो लग ऐक सुत होई, सुतकै भऐं त्यागीऐ सोई ॥ २८ ॥
ऐसौ सकल बरणको धरमां, ताकौ भूलि न पावै मरमां ।
म्रंमहींन श्रुति सुम्रति बषानैं, मूरिष आपहि पंडित मांनैं ॥२९॥
तातैं बहुत क्रम आरंभै, इंद्रिय मनहि कदे नहीं थंभै ।
द्रोह करै बहु जीवनि मारै, ते बहु जनमि तिनहि संघारै ॥ ३० ॥
थावर जंगम सब घट मांहीं, ऐकैं हरि दूजौ को नांहीं ।
तिनकौ द्रोह करै तन पोषै, दारा सुतनि आंनि संतोषै ॥ ३१ ॥

नहीं मूरिष नहीं तत्वग्यांनीं, पढ़ि पढ़ि ग्रंथ होहि अभिमांनीं ।
ते असाधि रोगी सब जांनीं, तिनसौं ग्यांन न मांडै ग्यांनीं॥३२॥
ते सब करैं आपनौं घाता, सुपनैंहु न लहै कुसलाता ।
क्रमपंथमैं सुषकौं चाहै, अम्रत दे करि बिषै बिसाहै ॥ ३३ ॥
नांनां ताप तपत ते रहै, करै मनोरथ फल नहीं लहै ।
बहुत भांति श्रम करि उपजाये,सुत बित दारा सकल मन भाये३४
तिन सबहिनकूं छाडि इहांहीं, बंधे आप जमद्वारै जांहीं ।
जमके दूत नरक भोगावै, तहांके दुष कहे नहीं जांवै ॥ ३५ ॥
तिनकूं को नहीं राषनहारा, हरि रिष्यक सो नहीं संभारा ।
कहा कहूं कछु कह्यो न जांहीं,हरि बिनि कहूं पलक सुष नांहीं३६।

॥ दुहा ॥

चंमस बचन सुनि भूपके, बाढ्यौ त्रासरू प्यार ।
तब जुगि जुगिकौ पूछीयौ, हरिकौ भजन प्रकार ॥ ३७ ॥

राजा उवाच—

॥ चौपई ॥

कौनं समैं कैसौ अवतारा, कैसौ बरन नांम आकारा ।
कहि बिधि भजे बरण आश्रमां, कहौ ग्यांनके साधन धरमां ॥३८॥
जिनतैं ग्यान लहै सब त्यागै, निति हरि चरण कवल अनुरागै ।
सुनि नप बैंन भक्तिके भांजन, तब बोले नवमें करिभांजन ॥३९॥

करिभाजन उवाच—

सत त्रेता द्वापर कलिकाला, बहुत भांति सजीये गोपाला ।
बहु बिधि बरन बहुत आकारा, बहुत नांम बहु भजन प्रकारा ॥४०॥
सतजुग सुकल बरन भुजचारी, सीस जटा बलकल तनधारी ।
कंठ जनेऊ कर जपमाला, दंड कमंडल अरु म्रगछाला ॥ ४१॥
तब मनुष होवै सब सुधा, सम निरवैर सुहिरदय परबुधा ।
सम दम करि इंद्रिय मन प्रांनां, कर सबै निति हरिको ध्यांनां ४२
हंस सुपरन बरन जोगेसुर, नरमल प्रमातम अरु ईसुर ।
पुरसोत्तम बैकुंठ अविक्तां, तिनके नांम होईऐ बिक्ता ॥ ४३ ॥
रकतबरन त्रेता जुग मांहीं, त्रिगुण मेषला गलि पहरांहीं ।
चीर पैल स्रुवादिक हाथा, रिग जजु सांम त्रियमय नाथा ॥४४॥
तब जिन हित जग्यादिक करै, बेद बिहित क्रमन बिसतरै ।
सरब देवमय हरिकूं जांनैं, तब सब यूं हरि पूजा ठांनैं ॥ ४५ ॥
प्रस्निगर्भ उरगाइ कहीजे, बिष्ण व्रषाकपि जग्य भनीजे ।
सरब देव उरक्रम श्रिजयंत, ऐसे नांम कहै सब संत ॥ ४६ ॥
द्वापर पीत बसन घनस्यांमां, संषादिक आयध अभिरांमां ।
च्यारि बाहू म्रगुलता धारनां, लषमीं चहि न बहुत आभरनां ॥४७॥
चामर छत्र आदि बहु सेनां, महाराजि लछ्यन सुष देनां ।
बेद तंत्र बिधि सेवा करै, सब अरपन पूजा बिसतरै ॥ ४८ ॥
बासुदेव संकरष्यन देवा, प्रद्युमन अरु अंनिरुध असेवा ।
नारांयन भगवांन अनंता, जिनको कोई लहै न अंता ॥ ४९ ॥

बिश्वरूप बिश्वेसुर स्वांमीं, श्रबातम सब अंतरजांमीं ।
बहुत भांति अस्तुति बिसतरै, बिधिसूं द्वापर पूजा करै ।। ५० ।।
कलिजुग पीत पितंबर धारो, कृष्णदेव घनस्यांम मुरारो ।
सहित पारषद बहु आभरनां, श्रवन कीरतन पूजा करनां ।। ५१।।
इंद्रिय मन बहु भरे बिकारा, तिनतैं राषे चरन तुम्हारा ।
सब बिधि सब तीरथकौ बासा, सुमरत ही पुरवै सब आसा।५२।
सिव ब्रिंच सुरनर मुनि ध्यावै, जाको भेद बेद नहीं पावै ।
राषिलेत सरनिहीं जो आवै, जनम मरन सब दुष मिटावै ।।५३।।
केवल दीन होत उधारै, भंवसागरतैं पार उतारै ।
ऐसो चरन तुम्हारो गायौ, ताकी सरनि दीन मैं आयौ ।। ५४ ।।
अति दुसत्र सुर बंछै जाकूं, ऐसौ राज छांडि करि ताकूं ।
दसरथ भक्त बचन सति करनां, बनकौं गवन कीयौ जिन चरनां।।
हेम म्रिग सीता मन भायौ, जो ताके पीछैं उठि धायौ ।
जो भक्तनकै यौं आधींनां, ऐसे चरन सरन मैं लींनां ।। ५६ ।।
ऐसी बिधि कलि अस्तुति करै, बहु बिधि हरिनांमन उचरै ।
सुनैं कहै सुमरै अरु ध्यावै, ते ततकालि तत्वकूं पावै ।। ५७ ।।
या बिधि जे जुगजुग हरि सेवै, तिन तिनकूं हरि ग्यांनहि देवै ।
ग्यांन पाइ निज तत्व समावै, जहां जाइ बहुसूं नहीं आवै।।५८।।
जे कलिजुगके जुगकौं जांनत, ते बहुबिधि अस्तुतिकौं ठांनत ।
जैसो प्रमसार कलि मांहीं, ऐसौ और जुगनमैं नांहीं ।। ५९ ।।
सतजुग ध्यांन जिग त्रेता मांहीं, द्वापरि प्रतिमां पूजा रमांहीं ।
कलि केवल नांमांदिक गावै, सो सौ फल ततकालिहि पावै ।।६०।।

या भवसागर मांहि निरंतर, डुब्यत जीव परै नहीं अंतर।
तामैं हरि गुन नांम उच्चारन, ऐकहि जिहाज सकलकौं तारन॥६१॥
पाप अपार घोर कलि मांहीं, जामैं पुनि लेस कहूं नांहीं।
तातैं हरि गुन नांम उचारै, ते तरि आप औरकूं तारै॥६२॥
ते कृत्यकृत्य तेही वड़भागी, जे कलि हरिकीरति अनुरागी।
आप सुमरि औरनि सुमरावै, ते जग जनमि बोहोरि नहीं आवै॥
सत त्रेता द्वापर अवतरही, ते कलिजुगकी बांछा करही।
कलि कछू साधन अरू श्रम नांहीं, हरिगुन गावत हरिहि समांहीं॥
अरू कहू कहूं कोई देस बिसुधा, द्रावड़ादि मांनव तहां बुधा।
जे उपजै ते भक्तिहि करै, तातैं तांहां बहुत उधरै॥६५॥
अरू जहां ताम्रप्रिणि कृतमाला, कांवेरी पयसुनी बिसाला।
अरु सुरस्वती पछिम बांहनीं, गंगा आदि दुरित दांहनीं॥६६॥
जे मांनव पीवै जल यनकौ, दूरि होइ हिरदय मल तिनकौ।
ते अवधा होहि हरिभक्ता, साध्र संग होवै आसक्ता॥६७॥
भ्रत कुटंब पित्र रिष देवा, तिनके रिणीं करै सब सेवा।
सो नर नहीं सेवा करही,सो सब तजि हरिकूं अनुसरही॥६८॥
जे विधि तजि हरि चरनन आवै, तिनके मल हरि दूरि बहावै।
बहु स्यूं मल उपजै नहीं कोई, उपजै कदे हरै हरि सोई॥६९॥
तातैं सब विधिकौ फल ऐका, गहीऐ हरिपद छाड़ि अनेका।
सबके प्रभु सबके सुषदाता, सरनां[illegible] पालक बिष्याता॥७०॥
जब जब जो जो सरनिहि आयौ,तबही तब तिन तिन हरि पायौ।
तातैं और सकल परहरीऐ, श्रीभगवांन चरण चित धरीऐ॥७१॥

ऐसे सुनि नवहू के बैंनां, जनक हिरदय अति उपज्यौ चैंनां ।
संसे मिट्यौ सकल भ्रम भाग्यौ, ब्रह्म जांनि सूतौ सो जाग्यौ॥७२॥
तब तिनकी बहु पूजा कींन्हीं, बिप्रन सहति प्रदछनां दींन्हीं।
या बिधि दरसन पाऐ सबही, अंतरध्यांन भऐ ते तबही॥ ७३ ॥
जनक बिदेह और सब त्याग्यौ, हरिके चरन कवल अनुराग्यौ ।
या बिधि ब्रह्मपरायण भयौ, तरि भवसिंधु ब्रह्ममैं गयौ ॥ ७४ ॥
याही विधि तुमहू बडभागी, ह्वै करि हरि चरननि अनुरागी।
और सकलकौ तजिहौ संगा, तब पाइहो ब्रह्म प्रसंगा ॥ ७५ ॥
अरु तुम तो देवकी बसुदेवा, भऐ कृतारथ करि हरिसेवा।
तुम्हरो जस फूलौ जग सारा, जिनकैं हरि लीन्हौं अवतारा ॥७६॥
दरसन आलिंगन आलापा, आसन भोजन सयन मिलापा।
हरिसौं पुत्र जांनि चित दींन्हौं, तातैं सकल भजन तुम कींन्हौ ७७
कपट बासुदेव अरू सिसपाला, दंतबक्त्र सल्यादि कराला ।
वैरभाव हरिसूं चित धरौ, तिनहूंकूं हरि देव उधारौ ॥७८॥
तातैं प्रेम प्रीतिसूं सेवै, तिनकौं क्यौं न प्रमपद देवै ।
अब तुम पुत्र बुधिमति आनौं,कृष्ण देवकूं ब्रह्महि जांनौं ॥ ७९ ॥
माया करि धारी नर देही, पारब्रह्म तुम जांनो ऐही ।
बढ्यौ देषि भुवमैं अघभारा, मेटनकाजि धर्‍यौ अवतारा ॥८०॥
प्रम पुनींति जसहि बिसतरही, जासौं लागि जीव नित तरही।
जे जे इनसूं प्रीति लगावै, ते सकल प्रमपद पावै॥ ८१ ॥
ऐसी सुनि नारदकी बांनीं, वसुदेव देवकी अदभुत मांनीं ।
आपहि दहू मुक्ति करि मांन्यौं, हरिमैं भाव ब्रह्मको आंन्यौं॥८२॥

यह इतहास कथा जो भाषै, सावधान सुनि हिरदै राषै ।
सो सब भवबंधन छिटकावै, उपजै ग्यांन प्रमपद पावै ॥८३॥

॥ दुहा ॥

यह भाष्यौ संषेपसौं, हरि मिलनेकौ द्वार ।
हरि उधव संबाद अब, बरनौंकरि बिसतार ॥ ८४ ॥

इतिश्री भागवते महापुरांणें ऐकादस स्कंधे बसुदेव नारद संवादे जायते जो व्याख्याने पंचमोध्याय ॥

श्री शुक उवाच--

॥ चौपई ॥

बहुरि सुनौ नृप आत्मविद्या, जाके जांने मिटै अबिद्या ।
मिटै अविद्या ब्रह्महि पावै, ब्रह्महि पाइ बहुरि नहीं आवै ॥ १ ॥
तब ब्रह्मा सनकादिक संगा, नारदादि रंगे हरि रंगा ।
सकल प्रजापति भृगु मरिचादि, महादेव लीन्हें भूतादि ॥ २॥
मनु सुर समूंह संग ले सुरपती, पवन अश्वनीसुत ग्रहपती ।
बसु अंगिरा रुद्र भूदेवा, साध्यादिक अरु बिश्वदेवा ॥ ३ ॥
रिष गंध्रब पितर अर नागा, चारन सिध भरे अनुरागा ।
अपसर अर गुह्यक बिद्याधर, किंनर जष्यादिक मायाधर ॥४॥
कृष्णदेवके दरसन सारे, आनंरत द्वारका पधारे ।
कोई नाचै कोई गावै, केई बाजा बहुत बजावै ॥ ५ ॥
केई जै जै सबद उचारै, केई कृष्ण जसहि बिसतारै ।
या विधि करै वहुत उछाहा, मगन भये हरि प्रेम प्रवाहा ॥६॥

श्री भगवांन मनुजतनधारी, दरसन सब मन हरन मुरारी ।
लोकन मांहि जसहि बिसतारे, श्रवनादिकन सकल अघजारे ॥७॥
निधि रिध पूरन द्वारावती, जाकैं समि नहीं अमरावती ।
तामैं ब्रह्मादिक चलि आये, कृष्णदेवके दरसन पाये ॥८॥
सुरगि ब्रष्य फूलनकी माला, छादित कीन्हें दीनदयाला ।
पावत दरस त्रिपति नहीं होवे, चित्र लिषेसे सुनमुष जोवे ॥९॥
चित्र पदनि बहु अस्तुति करे, उतम अरथनि जस बिसतरे ।
सहस बीनती अरू प्रनांमां, दरस भये सब पूरन कांमां ॥१०॥

देवा उवाच—

हे प्रभू चरन सरोज तुम्हारा, मन बच क्रम चित अहंकारा ।
इंद्रिय बुधि प्रांन अरु देहा, बंदत हैं हम प्रगट पेहा ॥११॥
जाकौं प्रान बचन मन सांधे, सावधांन निसदिन आराधे ।
भाव सहित अभि अंतर ध्यावै, तेऊ या बिधि प्रगट न पावै ॥१२॥
धनि धनि हम धनि भाग हमारे, प्रगट देषे चरण तुम्हारे ।
जिनके ध्यान कीरतन श्रवनां, बहुरि न होवें आवागवनां ॥१३॥
तुम अद्वैत द्वैत यह करौ, अपनीं माया सब बिसतरौ ।
तुम्हहींमैं उपजे संसारा, सदा रहैं तुम्हरे आधारा ॥१४॥
तुमहीं मांहि लींन सब होई, तुमकौं परसि सके नहीं कोई ।
रागरहत आनंद सरूपा, अजित अमित चिद्रुप अनूपा ॥१५॥
बहु अध्ययन श्रवन अरू दांना, क्रिया उपासन तप सनांनां ।
त्याग जोग जग्यादिक जैते, आतम सुध करै नहीं तेते ॥१६॥

तुव गुन श्रवन सुनत अघ नासे, ज्यौं तिम मांहि सूर प्रकासे ।
तातै जनम करम तुम धारो, दीनवंधु दीनन उधारो ॥१७॥
जे तुव चरण कवल मुनि ध्यावे, भव भयभीत न पल छिटकावे ।
अरु निज भक्त निरंतर सेवे,भव नहि समझय नहीं कछू लेवे ॥१८॥
अरु ऐकें वैकुंठ निमता, हरदे धरे ता चरनहि चिता ।
वहुरि ऐक सेवे सहकांमां, ऐक भये चाहै निहकांमां ॥१९॥
जीवनमुक्ति भये इक सेवे, प्रेम भावसूं अतिसुप लेवे ।
ऐकें जग्यादिकन सूं भजे, सरव देवमय तुमकूं जजे ॥२०॥
ऐकें वरन आदि आसरमां, तुमरे हेत करे सव धरमां ।
ऐकें ऐक रूप करि ध्यावे, द्वैतभाव कवहू नहीं ल्यावे ॥२१॥
ऐकें तुव प्रतिमांकौं सेवैं, ऐकें नांम निरंतर लेवैं ॥
ऐकें श्रवण कीरतन ध्यांनां, कांहां लग कहीये विधि नांनां ॥२२॥
यौं जे जे तुव चरननि सेवे, ते ते सव वंछत फल लेवे ॥
सो तुव चरण प्रगट हम पायौ, तातैं अव दीजे मनभायौ ॥२३॥
यह हम वंछा पूरन करौ, अपने चरन कवल चित धरौ ।
भस्म करौ दूजी वासनां, जिनतैं उपजे भव सासनां ॥२४॥
प्रमदयाल भक्त हितकारी, इछा पूरन देव मुरारी ।
इछा पूरन करो हमारी, निश्चल उपजे भगति तुम्हारी ॥२५॥
जो तुव जन वनमाला करे, प्रेम सहित तुव आगें धरे ।
कवला देषि संप्रश्न आंनें, ताकौं आपु सपतनीं जांनें ॥२६॥
परि तुव असे दीनदयाला, भक्ताधीन करन प्रतिपाला ।
तव इंद्रा निरादर करौ, वनमाला ता ऊपरि धरौ ॥२७॥

जो तुव चरण भक्त सुर कारण, दुष्ट असुर सैंनां संहारण ।
असुरनकूं अधगतिको दाता, सुरन सुरग दीसै बिष्याता ।।२८॥
अभय दांन अघ नासन बांनौं, लोक बेद यह प्रगट बषांनौं ।
बंधी धजा गंगा तिहूं लोका, जाके दरस मिटै भय सोका ॥२६॥
ब्रह्मादिक सुर नर अधिकारी, तुमरे चरन कमल बसि चारी ।
जौ अति बली बैल मद भीनां, नाथे नाक धुनीं आधींनां ॥ ३० ॥
जब जब असुरन तैं दुष पावे, तब तब सरणि चरणकी आवे ।
तबही सुष उपजे दुष भाज, अपने अपनें ठोर बिराजे ।।३१॥
प्रकृति पुरुष म्हतत नियंता, तुम इनके कारन भगवंता ।
तुमतैं पुरुष सक्ति जब पावै, प्रकृतिहि मिलि म्हतत उपावै॥३२॥
तातैं उपजै यह ब्रहमंडा, जल अधारि तिरै ज्यौं अंडा ।
थावर जंगम बिबधि प्रकारा, तातैं होइ सकल बिसतारा ॥३३॥
तातैं तुम या सबके करता, उपजावन प्रतिपालन हरिता ।
तुम आधार सकलके स्वांमीं, तुम फलदाता अंतरजांमीं ॥ ३४ ॥
जो कछू होइ सकल जगमांहीं, तुम करता दूजो को नांहीं ।
परि कहूं लिपत होइ नहीं देवा, कोई लषि न सकै तुम भेवा॥३५॥
सोलेहं सहंस ऐक सत आठा, जिनके हिरद प्रेम अति काठा ।
हाव भावसूं प्रीति बडावे, मदन बांन बहुभांति चलावे ॥३६॥
तुम तोहू बसि होवौ नांहीं, निहचल निजानंद पद मांहीं ।
और छोरहूं बैठै कोई, करत बासनां बंधे सोई ॥३७ ॥
ऐ द्वै नदी प्रगट तुम कींन्हीं, तिनकी म्हमां परे न चींन्हीं ।
ऐक गंग चरणनिकौ नीरा, प्रसत न्रिमल करै सरीरा ॥३८॥

दूजी तुव कीरतिकी सरिता, त्रिभंवन जहां तहां बिसतरता।
श्रवन करत अंतर मल नासै, निर्मल हिरदै ब्रह्म प्रकासै ॥३९॥
ब्रह्म प्रकास भऐं भय नांहीं, षेलै ऐक मेक मिलि मांहीं।
इन द्वै नंदी न भजे जे पंडित, तिनकौं काल करै नहीं षंडित॥४०॥
तातैं नाथ कृपा अब कीजे, साधु संग हमकूं निति दीजे ॥
जिनतैं कथा नदी हम पावैं, जातैं तुव चरननि चित लावैं ॥४१॥

श्रीसुक उवाच—

बोले सिव सकादिक संगा, अस्तुति करी बहु भांति प्रसंगा।
बहुरयूं बिधि इक बचन सुनाऐ,जाके काजि सकल मिलि आऐ॥

ब्रह्मा उवाच—

हे प्रभू हम बिनती कीन्हीं, धरती भार भरी तब चीन्हीं।
तातैं तुम लीनो अवतारा, सकल उतारयौ भुवको भारा ॥४३॥
मेटि अध्रम धरम बिसतारयो, सब रुतनको कारिज सारयौ।
अरु कीरति बहु बिधि बिसतारी, भवसागर तिरबेकूं भारी ॥४४॥
लै अवतार भूप जदुबंसा, सकल जननिको मेटयौ संसा।
बहुबिधि किन्हें क्रम अपारा, जिनसूं लगि जैहैं भव पारा ॥४५॥
अरु जदुकुल दिज श्राप बिनास्यौ, नहि रहिहैं दिन द्वै यह भास्यौ।
तातैं देव काज सब कस्यौ,करिबे कछू नांही उबस्यौ ॥ ४६ ॥
गऐ बरष सत अधिक पचीसा, तातैं हम बिनवैं जगदीसा।
अब करि कृपा चलौ निज लोका, करत पुनीत हमारो वोका॥४७॥
हम हैं दास तुम्हारे देवा, निसदिन करैं तुम्हारी सेवा॥
ऐसी सुनि ब्रह्माकी बांनीं, तब हंसि बोले सारंगपांनीं ॥४८॥

श्री भगवानुवाच—

मैं सब सुनीं तुम्हारी बांनों, तुम्हरो काज भयो यह जांनों।
परि जदुकुल यौंही परहरौं, तो नास सकल भुव मैं करौं ॥४६॥
ऐ सब जादव बहु मदमता, नये रहै सब मेरी सत्ता।
मोहि तजें सब परलै ठांनैं, ज्यूं सायर मरजादा भांनैं ॥ ५० ॥
तातैं नास हेत उपजायौ, श्राप सनि बिप्रनतै पायौ ॥
अब यन सबहिनकूं बिनसांऊं, पोछैं तुम लोकनिमैं आंऊं ॥५१॥

श्रीसुक उवाच—

ऐसे सुनि हरिजीके बैंनां, हरदे बंढ्यौ सबहिनके चैंनां।
करि प्रनांम बीनती सारे, अपनें अपनें लोक सिधारे ॥५२॥
तब नृपतिकी सभा मंझारी, बैठे जदुकुल सहत मुरारी।
द्वारावती उठे उतिपाता, तिनकौं देषि कही हरि बाता ॥५३॥

श्रीभगवांन उवाच—

ऐ उतपात उठे चहुं वोरा, अति भयदाइक दीसे घोरा।
अरु दिज श्राप भयौ कुल मांहीं, तातैं भली देखिये नांहीं ॥५४॥
तातैं अबे यहां नहीं रहीऐ, तजीऐ बेगि जीऐ जो चहीऐ ॥
अतिपुनीत छेत्र प्रभासा, तांहां बेगि चलि कीजे बासा ॥५५॥
ऐक बार दछ श्रापहि दयौ, ससिके रोग तब भयौ ॥
जब सौ ससि प्रभासहि न्हायौ, छूट्यो श्राप प्रेम सुष पायौ ॥५६
तातैं अब प्रभास चलीजे, तहां जाइ सनांनहि कीजें ॥
न्रपति देव पित्रनकौं करीऐ, बिप्र भोज बहु बिधि बिसतरीऐ ॥५७॥

जिनकौं दान बहुत बिधि दीजै, श्रधा सहित प्रणांमहि कीजै ॥
तिन प्रसाद दुष परहरीऐ, ज्यौं नावनसूं सायर तरीऐ ॥५८॥
ऐसी सूनि हरिजीकी वांनीं, सब जादवन भली करी मांनीं ॥
तब चलवेकौं सकल विचारे, अपने अपनें रथहि सवारे ॥५९॥
तब उधव हरिकौ निज दासा, देषि सकल बिधि भयौ उदासा ॥
चलि इकंत हरिजी पै आयौ, चरननि परिकै वचन सुनायौ ॥६०॥

उधव उवाच—

देव देव ईश्वर जोगेस, श्रवन कीरतन हरत कलेस ॥
जदुकुलकौं संहारहि करिहौ, अब तुम म्रत्युलोक परिहरिहौ ॥६१॥
बिप्र श्राप मेटण साम्रथा, नहीं मेटो सो कौ हैं अरथा ॥
मेरे जीवन चरण तुम्हारा, जैसे मींन उदिक आधारा ॥६२॥
प्रांणनाथ अब ऐसी कीजे, संगि आपनें मोकूं लीजे ॥
तुम्हरे सब आचरण अनूपा, सबकूं अति आनंद सरूपा ॥६३॥
जिनकौं पाय और सब त्यागै, त्रिभवनके सुष दुषसे लागै ।
आसन गवन असन असनांनां, जागत अर सोवत बिधि नांनां ॥६४॥
सदा निरंतरकौ मैं दासा, क्यौं पल तजौं तुम्हारौ पासा ॥
यह माया भय तैं नहीं कहूं, तुम बिनि अरध निमष नहीं रहौं ॥६५॥
गंध बसन माला आभरनां, तुव उतीरनकौ मैं धरनां ॥
महाप्रसाद निरंतर पोष्यौ, दरस परस बहु विधि संतोष्यौ ॥६६॥
ऐसौ मैं निज दास तुम्हारौ, माया करि हैं काहा हमारौ ।
माया भय अरु तुमरे हेता, होहि दिगंबर ऊरधरेता ॥६७॥

इंद्रिय देह प्रांण मन साधै, सावधांन तुमकूं आराधै ।
ब्रह्म विचार सदा मन लावै, सो निज रूप तुम्हारो पावै ॥ ६८ ॥
हम कछू करम अकरम न जानें, हरदें ग्यांन बेराग न आंनें ।
तुम्हरे भक्तनके मिलि संगा, भव तरिहैं सुनि तुव प्रसंगा ॥६९॥
तुम्हरे करम बचन परिहासा, आसन गवन रूप प्रकासा ।
कहत सुनत सुमरत सुष मांहीं, भवसागर हम रहिहैं नांहीं ॥७०॥
तातैं माया भय नहीं आनौं, आपहि सदा मुक्ति करि मांनौं ।
परि तुम विनां प्रांण तजि जांहीं, तातैं मोहि छोडिऐ नांहीं ॥७१॥

॥ दुहा ॥

ऐ उधव निज भक्तके, सुनें बचन गोपाल ।
तब करुणांमय करि कृपा, बोले बचन रसाल ॥ ७२ ॥

इती श्री भागवंते महापुरांणे ऐकादस सकंधे श्री भगवत उधव संबादे षष्टमोध्याय ॥ ६ ॥

श्रीभगवांनुवाच—

॥ चौपई ॥

महाभाग उद्धव यह यौंहीं, ज्यौं तुम कही बात है त्यौंहीं ।
सिव ब्रिंचि सक्रादिक सेसा, बंछे मम बेकुंठ प्रवेसा ॥ १ ॥
भूमै भार बढ्यौ जब भारी, तब भू ब्रह्म पासि पुकारी ।
ब्रह्मादिकनै बीनती करी, तातैं मनुज देह मैं धरी ॥ २ ॥
अब भूको सब भार उतारयौ, सकल सुरनको कारिज सारयौ ।
अरु कीन्हौं जसकौं बिसतारा, जातैं जीव जांहि भव पारा ॥ ३ ॥

जदुकुल श्राप लह्यौ दिज पासा, आप आपमैं ह्वै हैं नासा ।
आजिहुतें सप्त दिन मांहीं, सिंधु द्वारिका राषै नांहीं ॥ ४ ॥
जबही मैं तजिहूं यह लोका, तब पावैंगे दुष भय सोका ।
कलिजुग आंनि अधिष्ठत होई, तातैं अघ करिहैं सब कोई ॥५ ॥
तातैं सुनि उधव बडभागा, अब तू करि सब ही कौ त्यागा ।
मोमैं सदा चित थरि करौ, समदरसी ह्वै भूमैं बिचरौ ॥ ६ ॥
जो कछू कहन सुननमैं आवै, अरू मन बुधि जहांलौं जावै ।
सो यह सब मनकौ कृत जांनौं, षिंनभंगुर माया करि मांनो ॥७॥
जिन यह सकल सत्य करि जांनां, तिनकै भेद भयौ है नांनां ।
ता भेदहि भ्रम करि नहीं जानैं, बिधि नषेध ताहीतैं ठांनैं ॥ ८ ॥
बिधि निषेध जो भाषै बेदा, सो ताकै जाकै है भेदा ।
भेद मिटैं बिनि करे न त्यागा, तातैं ऐ द्वै कीऐं बिभागा ॥ ९ ॥
ज्यूं ज्यूं तजै सुषी त्यूं होई, तातैं बेद बतावे दोई ।
आगै जाइ छुडावै सारे, जे आपहिहुंतैं बिसतारे ॥ १० ॥
तातैं यह सब मिथ्या जांनौं, ऊंच नींच गुण दोष न मांनौं ।
इंद्रिय अरु मन निहचल करौ, अहंकार ममता परहरौ ॥ ११ ॥
सुष्यम थूल सकल बिसतारा, ऐकही आतमकै आधारा ।
सो आधार ब्रह्मकौ जांनौं, ऐसी बिधि भवके भय भांनौं ॥१२॥
या बिधि बेद अरथकौं जांनौं, बहुरि हिरदय निहचल करि आंनौं ।
इहु लोककी आसा छंडौ, या बिधि अंतराइ सब षंडौ ॥ १३ ॥
जितनै याकै आसा होई, तितनै बिघन करै सब कोई ।
ज्यौं ज्यौं तजते जावे आसा,त्यौं त्यौं मिटै बिघनके पासा ॥१४॥

जब यह होय आत्मारांमां, तब तहां नहीं आसाकौ धांमां ।
तब बिघननके करता देवा, तेई उलटि करे ता सेवा ॥१५॥
तातैं बिधि नषेद सब नाषौ, आसा छाडि हिरदै हरि राषौ ।
ऐक ब्रह्म करि सबकूं देषौ, दूजौ कबहू भूलि न लेषौ ॥ १६ ॥
अरू जिनि पायौ ब्रह्म गयांनां, तिनकै बिधि निषेद नहीं नांनां ।
पदि तिनकै नितिही बिधि होई, करै निषेध न परसै कोई ॥१७॥
वे सुष दुष गुण दोष न मांनैं, बालक सम आचरणनि ठांनैं ।
परि बिधि सारी सेवा करै, अरु निषेध आपहि परिहरै ॥ १८ ॥
सब परि सुहरद सदा अति सांति, ग्यांन बिग्यांन सहित निति दांति ।
सब जग ब्रह्म जांनि थरि होई, बहुसौं जनम न पावै सोई ॥१९॥
ऐसे सुनि हरिजीके बैंनां, अतिदुकर अरु अति सुष दैंनां ।
तत्व सुननकी बाढ़ी प्यासा, तब बोले उधव निज दासा ॥ २० ॥

उधव बाच—

जोग स्वरूप जोग उपजांवन, जोगदांन जोगेश्वर भांवन ।
तुम यह त्याग कह्यौ मेरे हित, सो दुकर आवे नहीं चित्त ॥२१॥
क्यूं होवै बिषयनकौ त्यागा, पुत्र कलित्रादिक अनुरागा ।
यह तन यह धन यह सुत मेरं, ऐ बिनतादिक यह ग्रह चेरे ॥२२॥
या बिधि मम अहंकार संमुद्रा, बूडि रह्यौ मैं मतिकौ छुद्रा ।
तुम्हरी माया अति भरमायौ, तातैं ग्यांन हिरदे नहीं आयौ ॥२३॥
अब तुम मो सिष्यहि उपदेसौ, मेरे उर कछू ग्यांन प्रवेसौ ।
तातैं अब बहु बिधि समझावौ, मम उर पूरण ग्यांन बढावौ ॥२४॥

जातैं सब तजि तुमकूं पांऊं, बहुलौं जगत जनम नहीं आंऊं ।
अरु दूजौ ऐसौ नहीं कोई, जातैं लाभ ग्यांनको होई ॥ २५ ॥
ब्रह्मादिक तनधारी जेते, तुम माया बसि कीन्हें तेते ।
तातैं मायाहीकौं देषे, क्रमरू भोग भले करि लेषे ॥ २६ ॥
तातैं मैं जन तुम्हरी सरनां, सो कीजै पांऊं तुव चरनां ।
तुमरो आदि न अंत न पारा, ग्यांन रूप सबही तैं न्यारा ॥ २७॥
सोई तरै गहौ कर जाकौ, माया कछू न सकै करि ताकौ ।
तुमही तैं उपज्यौ यह जीवा, जेसें अगनिहुतैं बहु दीवा ॥ २८ ॥
सदा रहै तुम्हरै आधारा, निति उठि पोषौ सिरजणहारा ।
ऐसे प्रभुकूं सेवै नांहीं, तातैं परै प्रम दुष मांहीं । २६ ॥
या भवके दुष कहे न जांहीं, परयौ निरंतर मैं तिन मांहीं ।
अब मोकूं सरनांगति जांनौं, दैकरि ग्यांन सकल भय भांनौं ॥ ३० ॥
मेरे तन मन धन तुव चरनां, मन बच क्रम आयौ मैं सरनां ।
ऐसे सुनि उधवके बैनां, हंसि करि बोले अंबुज नैंनां ॥ ३१ ॥

श्रीभगवांनुवाच—

उद्धव मैं कह देऊं ग्यांनां, सति कहत हौं नांहीं आंनां ।
या जग साध भए हैं जेते, आपही आप उधरे तेते ॥ ३२ ॥
आपुहि भलो बुरो पहिचांनैं, छोडै बुरो भलेकौं ठांनैं ।
गुरु आपनौं आपही होई, पसु पंछी भावे जो कोई ॥ ३३ ॥
परि नर तन ऐसौ है नीकौ, ब्रह्मा आदि सबनिकौ टीकौ ।
जाकरि ब्रह्म बिचारहि पावै, बहुलौं जगत जनम नहीं आवै ॥ ३४ ॥

येक पद द्वैपद त्रिय पद ऐका, चौपदादि बहु पाद अनेका ।
मैं बहु भांति सिष्टि बिसतारी, तिनमैं प्रिय नर देह हमारी ॥३५॥
मोहि पावै सो या करि पावै, और सबनि सुष दुष मेरा गावै ।
यामैं मेरौ करै बिचारा, सावधांन होइ बहुत प्रकारा ॥ ३६ ॥
भाई यह तौ जढ़ है देहा, इंद्री आदि अरु सकल सनेहा ।
अपनें अपनें अरथनि गहै, सो यह सक्ति कौंनकी लहै ॥ ३७ ॥
अरू सोवत जब सुपनां पावै, तब तो इंद्रिय तन छिटकावै ।
स्वपन मांहि सुष दुषकूं लहै, जागै बात सकलकूं कहै ॥ ३८ ॥
तातैं मैं तौ यह तन नांहीं, मैं तौ बास कीयौ या मांहीं ।
तो बनिता सुत बित परिवारा, मेरौ तो नहीं सकल पसारा ॥३९॥
ऐतो सकल देह संगि जांहीं,सो यह देह कदे मैं नांहीं ।
जातैं सुपन मांहि नहीं कोई, वांहां तौ सकल और ही होई ॥४०॥
अरु भाई मैं तो वह तन नांहीं, जो तन दीसै सुपनां मांहीं ।
जातैं वहउ थरि न रहावैं, वाकौं तजि यामैं फरि आवैं ॥४१ ॥
वातैं यह यातैं वह झूठी, यह दृढ़ ग्यांन गह्यौ मैं मूठी ।
जो यन दोहू देहकूं लहै, इंद्रिन ह्वै सब अरथनि गहै ॥ ४२ ॥
इंद्रिय बुध्यादिक अरु बांनीं, जाकौं कोई सकै न जांनीं ।
सो मैं निति निरंतर ऐका, उपजे बिनसे देह अनेका ॥४३॥
भाई सो मैं कहांतैं आयौ, किन तन ल्हौं किन उपजायौ ।
अब तो मैं ह्वै देह अधारा, पलकूं रहि न सकौं निरधारा ॥४४॥
ऐ दोऊ तजि कामैं रहूं, सो है सति ताहि दृढ़ गहूं ।
अैसैं बहुबिधि करै बिचारा, त्यागै देहादिक परिवारा ॥ ४५ ॥

सो जहां तहांतैं लेवै ग्यांनां, कबहू कछू न जांनैं आंनां।
या बिधि आप आपकूं तारै, लहै ब्रह्म भवदुष निवारै ॥ ४६ ॥
यह बिचार मांनव तन होई, दूजां भूलि न पावै कोई।
तातैं तुम मांनव तन पायौ, अरू कछू इक मै तोहि लिषायौ ॥४७
तातैं तजौ सकलकौ संगा, मन क्रम वचन होहू न्हसंगा।
सबतैं परै आपकूं जांनौं, सो आधार ब्रह्मकै मानौं ॥ ४८ ॥
जहां तहां देषौ उपदेसा, या बिधि करौ ब्रह्म प्रवेसा।
अैसैं जहां तहां ले ग्यांनां, बहुतक भऐ ब्रह्म प्रवांनां ॥४६॥
तिनमैं कहूं ऐककी वाता, जो इतिहास कथा ब्रिष्याता।
दत दिगंबर अरु जदु भूपा, तिनकौ है संवाद अनूपा ॥ ५० ॥

॥ दुहा ॥

सुनि उधव इतिहास अब, भाषौं प्रम अनूप।
बकता दतात्रेय जहां, अरु प्रछक जदुभूप ॥ ५१ ॥

॥ चौपई ॥

ऐक समैं भूपति जदुनामां, गऐ सिकार छोड़ि निज धामां।
तब ता नगर निकटि है सूता, देष्यौ ऐक प्रम अवधूता ॥ ५२॥
निरभै निहचल इछाचारी, तेजनिधांन तरन तनधारी ॥
करि प्रणांम बहुत प्रकारा, जदु भूपति तब बचन उचारा ॥५३॥

जदु उवाच—

हे प्रभू पूरण प्रम दयाला, कहौ कृपा करि होहु कृपाला।
अैसो बुधि कांहां तुम पाई, जातैं बिचरौ सहज सुभाई ॥ ५४ ॥

भऐ अकरता इछाचारी, बालक सम सब चिंता टारी ।
सब जग निसदिन ऐह बिचारै,धरमरु अरथ कांम बिलतारै ॥५५॥
सोउ नहीं उपजे दुष पावै, तिनसूं लगि सब आयु गुमावै ।
तुम संम्रथ सबही बिधि जानौं, क्रिया निपुन प्रिय बैन बषांनौं ५६.
सब बिधि सरस तरुन तन सुंदर, तुष्ट पुष्ट कहुं लिपै न दुंदर ।
नां कछु वांछौं नां कछु करौ, जढ उनमंतअ भूमैं बिचरौ ॥५७॥
त्रिषणां कांम लोभ दौं लागी, सकल लोक दाझै तिहि आगी ।
तुम आनंदमय दाझौ नांहीं, जैसैं गयंद गंगोदिक मांहीं ॥ ५८ ॥.
देह अरथ सबहीके त्यागे, रहो अनंदित सोकहि लागे ।
संग न कोई राषौ देवा,कोई लहि न सके तुव भेवा ॥ ५९ ॥
तातैं कहौ क्रपा करि नाथा, भवजल बूडत पकड़ौ हाथा ।
यूं जदुभूप बीनती करी, तब अवधूत गिरा उचरी ॥६० ॥

अवधूत उवाच—

सुनि जदुभूप प्रम बड़भागी, जाकी मति हरिसूं अनुरागी ।
बहुते हैं मेरे गुरदेवा, जिनतैं मैं सब जांन्यौं भेवा ॥ ६१॥
पदि मैं मतो आपतैं लींन्हौं, तिनमैं सो किनहू नहीं चींन्हौं ।
ते गुर सकल सुनौं तुम मोसूं, हरिजन जांनि कहतहूं तोसूं ६२.
धरनि गगनि पवन अरु पांनीं, अनल चंद्र रवि कपोतहि जांनीं ।
अजगर सिंध पतंगरु भ्रंगा, कुंजर मधु हरितार कुरंगा ॥ ६३ ॥.
मींन पिंगुला कुररबाला, कंन्यां सरकरता अरु ब्याला ।
मकरी भ्रंगी ऐ चौबीसा, इनतैं सीष्या सुनिहु महीसा ॥ ६४ ॥.

प्रथम धरनीमैं गुन देष्यौ, सो मैं प्रम तत्व करि लेष्यौ।
सबै रहै धरनीं आधारा, तापरि मुढ़ करै अपकारा ॥ ६४ ॥
ठोर ठोर अति उतिम अंगा, तिनकूं करै वहुत बिधि भंगा।
ताके परबत व्रष्य अनंता, पर उपगारि सबै बरतंता ॥ ६५ ॥
परि अपराध कछु नहीं जांनैं, उलटि आप उपगारहि ठांनैं।
अैसी सीष धराणकी लेवै, जो जन हरि चरणनिकूं सेवै ॥६६॥
प्राणबाय ज्यौं लेह अहारा, स्वाद कुस्वाद न कोई प्यारा।
यौं हरिजन अहारहि लेवै, स्वाद कुस्वाद नहीं चित देवै ॥६७॥
बिन अहार विचार न आवै, स्वाद कुस्वाद न मन ठहरावै।
तातै ये तो लेय अहारा, जेतौ होवै प्रांण अधारा ॥ ६८ ॥
अरू ज्यूं पवन फिरै जगमांहीं, सुध असुध लिपै कहूं नांहीं।
नांनां भेदनिमैं संचरै, प्रिय अप्रिय गुन दोष न धरै ॥ ६९ ॥
यौं विषयन ग्रह हुतैं जोगी, मन क्रम बचन न होवै भोगी।
भेद अनेकनिमैं अनुसरै, परि कछू भेद न हिरदै धरै ॥ ७० ॥
अरू ज्यूं पवन गंध संजोगा, लिपत भयौ जानै सब लोगा।
परि सो पवन सदा इक रूपा, कबहु लिपै न होइ अनूपा ॥ ७१ ॥
पंचभूत न्रिमत त्यौं देहा, सकल बिकारनिहींको गेहा।
तामैं जोगी लिपति न होई, और लिपति जांनैं सब कोई ॥७२॥
ज्यौं सबहिनमैं ऐक अकासा, अरू सबहिनकौ तामैं बासा।
सब उपजें बिनसै बर तांहीं, गगनि न लिपै काल तिहूं माँहीं ।७३।
त्यौं बहुबिधि सब जगत पसारा, मुनि देषै आत्म आधारा।
जो कछू दीसै जढ़ है सोई, ताके संगतैं चेतन होई ॥ ७४ ॥

ज्यूं आत्म देहनिमैं देषे, त्यौं परमांतम जहां तहां लेषे ।
ऐक अनंत न कहूं आवरनां, लिपै न छिपै जनम नहीं मरनां ७५
सो प्रमात्म आत्म ऐका, कदे न देषै भूलि अनेका ।
यौं जो गगन घटनिमैं होई, बाहिरहु पुनि जहां तहां सोई ॥७६॥
कहवेकूं द्वै नातरि ऐका, यौं आत्म अरू ब्रह्म ववेका ।
ज्यौं बहुमेघ पवन दांमनीं, बरषै वेहु बासुरि जांमनीं ॥ ७७ ॥
परि नभ लिपत कदे नहीं होई, और लिपत जांनैं सब कोई ।
यौं आत्ममैं देह अनंता, उपजे वरते पावे अंता ॥ ७८ ॥
परि आत्मा लिपत कहूं नांहीं, साधु बिचारै यौं मन मांहीं ।
यह अंबर गुन तोहि सुनायौ, अब भाषौं जो जलतैं पायौ ॥७६॥
आप न्रिमल औरनि मल हरे, ताप मेटि सीतलता करै ।
सब सुषदायक हित रसवंत, ऐ गुन जलके सीषे संत ॥ ८० ॥
तेजवंत अति दीपत जुक्ता, षोभ रहत जहां तहां निरमुक्ता ।
स्वाद रहित सब भष्यण करै, अगनि न लिपै संचि नहीं धरै ॥८१॥
त्यौंहीं ग्यांन तेज मय होई, इंद्रियादि क्रस दीपत सोई ।
जद्यपि बहुबिधि भौजन करै, स्वादरहत गुन दोष न धरै ॥८२॥
काहूहुतैं षोभि नहीं होई, काहूके गुण मिले न सोई ।
उद्र प्राण लेय अहारा, कछू न जांनैं संचैय सारा ॥ ८३ ॥
गुपत रहै नहीं भूलि जनावे, कीऐं [illegible] प्रगट ह्वै आवे ।
पर इछा आहुतिकौं लेई, तिनके पाप रहै नहीं देही ॥ ८४ ॥
त्यूं मुनि गुप्ति आपतैं रहै, षोजि लेय ताको भ्रम दहै ।
उतिम भोजनादिक हु होई, पर इछातें आवे सोई ॥ ८५ ॥

बहुरूं अग्नि एक रस एका, बहुविधि दीसै काठ अनेका।
त्यौं आतमा एक सब माहीं, भेद देह कृत साचे नाहीं ॥ ८६ ॥
दिवा मसाल प्रगट ज्यौं होई, ज्वाला जात लखै सब कोई।
पर दीखै सो ज्यौंके त्यौंहीं, प्रतिदिन देह जात है यौंहीं ॥ ८७ ॥
जैसे शसिकी बाढ़ै कला, त्यौं त्यौं दिन दिन दीखै भला।
पूरन होय करि दिन दिन नासै, सकल मिटै ते नहीं प्रकासै॥८८॥
त्यौं बालादि अवस्था आवै, होय करि तरुन क्रमहि क्रम जावै।
तब आतमा देखिये नाहीं, परि हैं सदा काल तिन्ह माहीं॥ ८९ ॥
ज्यौं रवि किरननसे जल लेवै, समय पाइ बहुरूं सब देवै।
पर कबहूं अभिमान न आनैं,लियो दियो आपहि नहिं मानैं ॥९०॥
यौं मुनि कहै सुनै अरु देखै, सकल अरथ इंद्रिय कृत लेखै।
आतम नित्य अकरता जानैं, सब तजि ब्रह्म विचारहि ठानैं ॥९१॥
ज्यौं घट जल प्रतिबिंब है सूरा, देखिय लिप्त अहै पर दूरा।
त्यौं लख आतम देह संबंधा, दृष्टि स्थूल जानै जो अंधा ॥ ९२ ॥
अब कपोतकी कथा सुनाऊं, तेरे मनको भ्रमहि मिटाऊं।
एक कपोत कपोती संगा, बनमें कीन्हौं गृह प्रसंगा ॥ ९३ ॥
आप आपमें अति आसक्ता, आठ पहरमें पल न विरक्ता।
मनसों मन अंगनिसूं अंगा, नैनन नैन बढ़यौ बहुरंगा॥ ९४ ॥
आवन गवन असन अस्थाना, सयन बयन सारी विधि नाना।
मिले सकल क्रमन क्रम करै, निभय [illegible]न कबहूं डरै॥ ९५ ॥
सो कपोत बनिता बस कियो, हावभाव तन मन हर लियो।
बनिता जो बांछे सो ल्यावै, कष्ट सहित जाही विधि पावै॥९६॥

सो स्त्री बस होय करि राजा, अपनो लखे न काज अकाजा।
तन मन भयो निरंतर रहै, प्राननहूतें ताहि प्रिय कहै ॥ ९७ ॥
ताकी त्रिया अंड उपजाए, तिनमें मिलि दोनों मन लाए।
तब हरिमाया सिसु निरमये, कोमल अंग रोमते भये ॥ ९८ ॥
तब दोनों मिलि तिनको पोषै, बहुत भांति निसदिन संतोषै।
कोमल बचन कहत सुख दरसै, अपने अंग अंगसे परसै ॥ ९९ ॥
हरि मायावस बहुत भुलाये, आप आपमें सकल बंधाये।
पुत्र सनेह रहैं अनुरागे, सिरपर काल न लखे अभागे ॥ १०० ॥
एकबार बालनके कारन, चारो लेन गये ते आरन।
ताही समय व्याध एक आयो, बालक देखि जाल बिथरायो १०१
तिन नहिं लख्यो परो जब जाला, बांध्यौ आय सकल खगबाला।
जब दोऊ चारो लै आये, तिन गृह माहिं न बालक पाये ॥ १०२ ॥
तब देखे माता निज बाला, परे जाल बिच भये बेहाला।
पुनि सो तहां पुकारन धाई, सुतन हेत निज देह बंधाई ॥१०३॥
देख कपोत जाल सब बंधे, हरिमाया कीये सब अंधे।
तब सो बहुबिधि करै बिलापा, लखे बहुत बिधि अपने पापा ॥१०॥
हाहा पाप कौन मैं कीन्हें, ऐसे दुःख दई मोहिं दीन्हें।
जाकी पतिब्रता यह नारी, पुत्रन लै सुरलोक सिधारी ॥१०५॥
छांड़ि मोहिं सूनें गृह माहीं, सब मिलि आप इंद्रपुर जाहीं।
नां मैं सुख भोगे इहलोका, नहिं साधन पायो परलोका ॥ १०६ ॥
धर्मरु अर्थ काम सब जामें, कछुवे रह्यौ नहीं गृह तामें।
अब प्राणनि राखे कछु नाहीं, जान उचित सुत दारा जाहीं ॥१०७॥

या बिधि भयो बहुत बेहाला, बंधे देख बनिता अरु बाला।
व्याकुल बुद्धि विचार न कस्रो, आपहु जाय जालमें पस्रो ॥१०८॥
सहित कुटुंब कपोतहिं पायो, व्याध भयौ तब ही मन भायो।
आसा भई कपोतकी देखी, तब अपनै हिरदै यह लेखी ॥ १०९ ॥
यो कुटुंब होवे जाहोके, तृष्णा राग बढ़ै ताहीके।
जीवत अति आरंभनि करै, सहित कुटुम्ब काल मुख परै ॥११०॥
या बिधि जो मानव तन पावै, सो तो द्वारि ब्रह्मके जावै।
ताहू पर जो गृह हित करै, सो नर ब्रह्मद्वार पर चढै ॥१११॥
तातें भोग कुटुंबरु गेहा, तिनको जीव लहै प्रतिदेहा।
ऐसो मानव तन न गंवैए, जाकर देव निरंजन पैये ॥११२॥

॥ दोहा ॥

यह भाषा गुरु आठकी, सीख्यो मैं तुम पास।
अब औरनकी कहत हौं, छूटै जिमि भवपास ॥ ११३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादस स्कंध भगवत उद्धव संवादे अवधूते इतिहासौ व्याख्याने सप्तमोऽध्याय ॥७॥

अवधूत उवाच—॥चौपाई॥

जे इंद्रिय कछु सुख कहावे, सो तो सुरग नरकहू आवे।
ज्यौं सूकर कूकर सुख माहीं, त्यौं सब जीवानन्द मनाहीं ॥१॥
शुभ करमनते सब सुख पावे, कर्म लिखा सो कौन मिटावे।
ज्यौं कोई दुःखहिं नेक न चहे, पर दुख आय आपही रहै ॥ २ ॥

त्योंहीं सुख आपहिते आवे, बिन जाने नर बहु दुख पावे।
तातें बुध सुख नांव न लेहीं, लज छल छिद्रहिं ग्रहीं ॥ ३ ॥
स्वाद कुस्वाद बहुत की थोरा, जो हरिजी पठव तेहिं औरा।
ताकों भक्ष्य रहै न उदासा, अजगर वृति गहे यह दासा ॥४॥
जो कबहूं अहार न आवे, तो थिर रहै न कछु मन ल्यावे।
कर्माधीन देहको जानै, मन क्रम बचन न उद्यम ठानै ॥५॥
अति समर्थ इंद्रिय मन देहा, पर कछु उद्यम करै न एहा।
निश्चल ब्रह्म निरंतर सेवै, यह शिक्षा अजगरतैं लेवै ॥६॥
दरस परस अरु परम गंभीरा, अधिक अगाध ज्ञान सो नीरा।
वार पार कोइ थाह न लहै, ये गुन मुनि सायरके गहै ॥७॥
ज्यौं वर्षा बहु नीर प्रवेसा, सायर कबहुं न लहत कलेसा।
ग्रीषममैं कछु हीन न होई, सदा समर्थ आपतैं सोई ॥८॥
त्यूं कोई बहुविधि अरचावै, भोजन वस्त्रादिक पहरावे।
अस्तुति मान बड़ाई देवै, बहुत भांति बहुते मिलि सेवै ॥९॥
अरु एकै लेजाय उतारी, निंदादिक गिने एक भारी।
परि नारायण मुनि मन माहीं, राग द्वेष कछु उपजे नाहीं ॥१०॥
बनिता वस्त्र कनक आभरना, बहुविधि मायाके उपकरना।
इनमें आय परे जो कोई, अगनित जन्म उद्धार न होई ॥११॥
जब लगि मुनि समझै निज देहा, रुचि अहार लेय बहु गेहा।
जातें कछु अनुराग न बढ़ै, यह शिक्षा मधुकरतैं पढ़ै ॥१२॥
छोटे बड़े अनेकन ग्रंथा, तिनमें सार गहै हरिपंथा।
ज्यों मधुकर बहु फूलन माहीं, बास गहै फूलनको नांहीं ॥१३॥

सो मधुकर हू विधिको कहिये, दुहूं पासते शिक्षा लहिये।
बहुत ग्रहनते लेय अहारा, अहै प्रमाण एकही बारा ॥१४॥
दूजेको कछु संचि न धरै, निर्भय ब्रह्म बिचारहि करै।
संग्रह भूल करै जो कबहीं, मधुमाखी ज्यौं बिनसै तबहीं ॥१५॥
माया पुतलि काठकी होई, पगहू बुध परसो मति कोई।
परस करत होवै दृढ़ बंधा, ज्यौं करीन्द्र करिनी सम्बंधा ॥१६॥
मृत्यु जानि बनिताको तजै, पंडित कबहूं भूलि न भजै।
भजत होय केहरी समाना, एकहि मिलि मारै गज नाना ॥१७॥
जो कोई धन संग्रह कर, सो कोई औरहिं परिहरै।
ज्यौं मधुमाखी मधु संग्रहै,मधुहा सो उद्यम बिनु लहै ॥१८॥
हरि बिन गीत सुने नहिं औरा, गयो चहे जे हरिकी ठौरा।
और सुनत होवै गति ऐसी, व्याध गीध हरिणांकी जैसी ॥१६॥
सुनौ हरिणगति केर प्रसंगा, शृंगीऋषि ज्यों गनिका संगा।
अबलाधीन मुक्त जो होई, तिनके शब्द सुनैं नहिं कोई ॥२०॥
मुनि जिह्वा आसक्ति न करै, स्वाद कुस्वाद सकल परिहरै।
जिह्वा रसतें होवे काला, जैसे मीन मरै ततकाला ॥२१॥
जो मुनि सब अरथन परिहरै, जाय एकांत बासको करै।
सहज होय इन्द्रिय सब क्षीना, पर रसना नहिं होय अधीना ॥२
रसना सबको फेरि जिवावै, जबही रस संजोगहिं पावे।
जो सब इन्द्रिय जीते कोई, पर रस[illegible] नहिं करमें होई ॥२३॥
तौ लगि सकल वृथा करि जानी, रसना जीत जीति कर मानी।
तातैं मुनि रसना बस करै, और सकल साधन परिहरै ॥२४॥

यो जे एक एक बस भये, ते सब यमके द्वारे गये।
पर जो एक पंच बस होई, ताके दुख जाने सब कोई ॥२५॥
बहुरि एक गनिका पिंगला, ताते मैं गुन सीखे भला।
सो तुमसूं भाषतहूं राजा, जातैं सरै तुम्हारे काजा ॥ २६ ॥
जनक बिदेह पुरीमें बासा, नाम पिंगला रूप निवासा।
एक बार शृङ्गार बनायो, धनी पूर्व मनमें ठहरायो ॥२७॥
बैठी निकस भवनके द्वारा, आगे चले लोक बाजारा।
कोई भलो आवतो दीखे, यह आवै गोयो करि लेखे ॥२८॥
जब वह आगेको चलि जावे, तब पिंगला औरको ध्यावे।
औरहु आय आय चलि जाहीं, त्यों त्यों दुख पावै मन माहीं ॥२९॥
कबहूं उठि भीतरको जावै, कबहूं व्याकुल बाहिर आवै।
अरध निसा ऐसी बिधि भई, लोक बजार चलत रह गई ॥३०
तब वह भगन मनोरथ भई, चिंता दुःखत अनल अति भई।
अपने तिरसकार कर मान्यौं, सबतें हीन आपको जान्यौं ॥३१॥
तब तीकी कोई बड़भागा, तातें उपज्यो दृढ़ बैरागा।
जौ लगि नहिं उपजै नर बेदा, तौ लगि नाहिं मिटै भव खेदा ॥३२॥
या भव नख सिख दुःख अनेका, तामें परम रतन सुख एका।
बंधन बंध्यो जीव अपारा, तिनको हरिजी रच्यौ कुठारा ॥३३॥
ताकी महिमा कही न जावै, जाके भाग बड़े सो पावै।
जाको नाम कहत बैरागा, सो तो हरको दियो सुहागा ॥ ३४ ॥
जाहि देय यह सोई पावै, भव भय छोड़ि ब्रह्ममें जावे।
ताते मानव सब छिटकावै, ज्यों त्यों करि बैराग उपावे ॥३५॥

तव पिंगला बचन उचारे, बहुत भांति आपहिं धिकारे ।
गये दिननको अति पछतावे, सबतें दृढ़ वैराग उपावे ॥३६॥

पिंगला उवाच:—

हरौ एक मेरो अज्ञाना, जाके हृदय बढ्यो भ्रम नाना ।
जल बुदबुद सम जे नर देहा, जासे सुख हित कियो सनेहा ॥३७॥
सरवर जल पूरन तजि पासा, मृग जल धाइ करी जल आसा ।
चार पदारथ दाइक देवा, सदा निकट को लह्यो न भेवा ॥३८॥
शान्ति सदा सुखदायक स्वामी,सो छोड्यो निज पतिघण नामी ।
जुत्यो सदा काल सुख माहीं, जातें दुःख शोक अधिकाहीं ॥३९॥
ऐसो पुरुष ताहि मैं भज्यो, आपहि दुख आपके सज्यो ।
देह बेचि मैं देहहि पोष्यौ, याही भांति मनहिं संतोष्यौ ॥४०॥
स्त्री लंपट तृष्णा दाह्यो, दूषित नर सों मैं सुख चाह्यो ।
हाड़ मेद मज्जा अरु अंत, मांस रुधिर तुच रोम अनंत ॥४१॥
विष्टा मूत्र स्वेद कृमि गेहा, जारै द्वार नवै असि देहा ।
तामें कहौ रमति क्यों होई, मोसी मूढ़ और नहिं कोई ॥४२॥
या पुर माहिं जनक नृप ऐसे, सुख अधिकार सुरेसुर जैसे ।
ताहू पर सब सुखको तजै, कै विदेहि हरि चरनन भजै ॥४३॥
अरु सब प्रजा भजै हरि चरणा, जातें मिटै जनम अरु मरना ।
जाको भजैं ब्रह्म शिव शेषा,पर ऐसो तिनहूं कदे न देखा ॥४४॥
ऐसे प्रभुको जे नर सेवैं, तिनको राज आपको देवैं ।
ऐसी प्रभु मैं नहीं अराध्यौ, कियो अनर्थ अर्थ नहिं साध्यौ ॥४५॥

अब मैं आप निवेदन करूं, और सकल उरत परिहरूं ।
अपने पति हरिजीके संगा, सदा रमूं ज्यों श्री अरधंगा ॥४६॥
कहा और सुर नर प्रिय करिहैं, ते बापुरे आपुहि फिरिहैं ।
अरुते सुख कोई थिर नाहीं, देखत सकल पलकमें जाहीं ॥४७॥
मेरी दृष्टि दुखी सब आवैं, कालीवान कहां सुख पावैं ।
ताते मैं यह निश्चय जानी, कृपा करी हरि सारंग पानी ॥४८॥
जिन मेरे वैराग उपायो, अपने चरन कमल चित लायो ।
यह हरि कृपा बिना नहिं होई, जो वैराग लहै न कोई ॥४९॥
जाते सब भव बन्धन नासै, हृदय रमापति आप प्रकाशै ।
मैं तो मंदभागनी ऐसी, त्रिभुवन माहिं नहीं कोऊ जैसी ॥५०॥
ताको कैसो हरिको भजनो, कैसो काल जालको तजनो ।
पर ते दीनबन्धु गोपाला, पतित उधारण दीन दयाला ॥५१॥
तिनहीं आप कृपा यह करी, जिन मेरे उर ऐसी धरी ।
अब लैं या प्रसादहिं सीसा, निस दिन चरण भजूं जगदीशा ॥५२॥
जितने या देहहिं निबाहूं, सोहू नहीं आरंभ सबाहूं ।
सहज माहिं जो हरिजी ल्यावे, ता करि या देहहि बरतावे ॥५३॥
या भव कूप पर्‍यो नित प्रानी, दृष्टि विषय आवरण छिपानी ।
तापर अजगर काल गरास्यो, यूं नर बहुत पास सूं पास्यो ॥५४॥
ताको हरि बिन कौन छुड़ावे, आपहिंसे नहिं छूटन पावे ।
अरु आपहिं आपको राखे, जब सब वस्तु हृदयतें नाखे ॥५५॥
जबहीं हरिके शरणहिं आवे, तबहीं आपहिं आप छुड़ावे ।
वे प्रभु निजानन्द मय देवा, कहा कर को तिनकी सेवा ॥५६॥

पर सब जगत काल छिटकाव, हरिकी सरण आय सुख पाव ।
तातें और सकलको तजूं, प्रेम भाव हरि चरनन भजूं ॥५७॥
या विधि आपहिं आप उधारूं, अब नहिं भवसागरमें डारूं ।
यह पिंगला प्रेम गति पाई, दुहूं लोककी आस मिटाई ॥५८॥
सीतल ह्वै सज्यामें गई, परमानन्दहिं प्रापत भई ।
यह शिक्षा मैं ताते लीन्हीं, भली जानि उर थिर कीनी ॥५९॥
जबलग आस करै नर कोई, तबलगि सुखी कदे नहिं होई ।
जबहीं सकल आस छिटकावै, तब तत्काल प्रथम यह पावै ॥६०॥

दोहा—

यह गुरु सत्तरकी कही, शिक्षा मैं समुझाय ।
अब औरनिकी कहत हौं, सुनियो कान लगाय ॥

इति श्री भागवत महापुराणे एकादस स्कन्धे अवधूते इतिहासो व्याख्याने पिंगला गीतानाम् श्री अष्टमो अध्याय ॥८॥

॥ चौपाई ॥

जो जो हितकर संग्रह करै, सोई सो अति दुःख विस्तरै ।
जबहीं हित संग्रह छिटकावै, तब अपार सुखसागर पावै ॥१॥
कुरर पक्षि कहुं आमिष पायो, सो लै उड्यो बहुत हित लायो ।
तब बहुते कुररनि दुःख दयो, आमिष तज्यो सुखी तब भयो ॥२॥
यह मैं सीख कुररतें पाई, जाते संग्रह करूं न काई ।
बहुरि सीख बालकतें लई, मेरे उर जाते मति भई ॥३॥

मैं नहिं जान मान अपमाना, चिन्ता कछु चित्त नहिं आना।
निस दिन रहूं आत्मा रामा, कबहुं कछु नहिं उपजै कामा ॥४॥
या भव माहिं ताहिको सुख है, और सकल जीवनको दुःख है।
उद्यम रहित बाल मतिहीना, अरु जे गुणातीत पद लीना ॥५॥
एक विप्रके हती कुमारी, ता विवाहकी विप्र विचारी।
ताके मात पिता इक बारा, और ग्राम कछु काम सिधारा ॥६॥
समाचार एक विप्रन पायो, ब्याह काज द्विजके गृह आयो।
कन्या बचन किसी सों भाषे, तिनते द्विज आदर करि राषे ॥७॥
तब तिनके भोजनकी धारी, चांवर कूटन लगी कुमारी।
तब ताके कर ज्यों ज्यों डोलैं, त्यों हीं त्यों कर कंकन बोलैं ॥८॥
लज्जित ह्वै तिन सकल उतारे, द्वै द्वै दुहुं हाथनमें डारे।
बहुरि लगी जब चांवर छरने, तोहू लगे शब्द ते करने ॥९॥
तब तिन एक एकही राखे, चुप करि रहे बहुरि नहिं भाषे।
मैं विचरत हौं इच्छाचारी, तातें देखि हृदयमें धारी ॥१०॥
बहुतनि संग बढ़ै बकवादा, दूजे हू ते होय अनुवादा।
तातें रहै अकेला योगी, सदा विचार ब्रह्म रसभोगी ॥११॥
आसन प्रान देह मन बांधे, दृढ़ वैराग हृदयमें साधे।
निश्चल ह्वै नित ब्रह्म विचारे, औरज तम क्रम क्रम करि जारे ॥१२॥
ज्यों २ निश्चल बढ़ै समाधी, तजिते जाते सकल उपाधी।
तब ज्यों पावक इंधन हीना, त्योंहीं निज पदमें लीना ॥१३॥
तब कबहूं कछु द्वैत न जाने, सिला समान देह गुण भाने।
ज्यों आगे ह्वै नरपति गयो, सेना सबद बहुत विधि भयो ॥१४॥

परिश्रम कस्यो सेद नहिं पायो, या विधि सरमैं चित्त लगायो ।
ऐसी सीख लई मैं ताते', निश्चल बुद्धि भई मम जाते' ॥१५॥
ज्यों लोगन तें डरै भुजंगा, बसै गुहामें रहै असंगा ।
सावधान अति थोरो बोलो, गत्यादिक अन्तर नहिं खोले ॥१६॥
गृह आरंभ दुःखको मूला, जे आरम्भैं ते नर भूला ।
सरप पराये गृहमें रहें, या विधि मुनि एहि शिक्षा गहै ॥१७॥
एकै आप निरञ्जन देवा, जाको कोई लहै न भेवा ।
आपहि ते माया विस्तारै, सत रज तम बहुभेद पसारै ॥ १८ ॥
बहुरि आपही सब संहारै, निजानन्द मम एकै रहै ।
ताते यह सब मिथ्या जानै, याको करता सो सि· मानै ॥ १९ ॥
यह शिक्षा मकरी तें लेवै, सबते परे ब्रह्मको सेवै ।
जहां तहां यह यह मनकूं धारै, निस बासर कबहूं नहिं टारै ॥२०॥
राग द्वेष भय क्यूं ही होई, होत रूप ताहीको सोई ।
भृंग कटिहूते यह लीन्हों, तो मन हरि चरनन थिर कीन्हों ॥२१॥
यह चौबीस गुरुनकी शिक्षा, तो सों मैं भाषी दृढ़ दिक्षा ।
अब तनते सीख्यो सो कहूं, तेरे सब संदेहन दहूं ॥ २२ ॥
मेरी देह मोह समझावे, हृदय ज्ञान वैराग उपजावे ।
ज्यों बालापन गयो बिलाई, त्योंही अब यह जोबन जाई ॥ २३ ॥
आवै जरा मरन ता आगे, बहुबिधि दुःख तब देहहिं लागे ।
स्वान श्रृगालनको यह भक्षा, तासों प्रीति न जोरै दक्षा ॥ २४ ॥
पुत्र कलत्र अरथ बसु गेहा, कूल कुटुम्ब बहु सेवक गेहा ।
तिन सों मिली या देहहिं सेवै, सोई अन्त महादुःख देवै ॥ २५ ॥

आगेको बहु करम उपावै, अब जमके दरबार पठावै ।
रस निमित खैंचै बहु रसना, प्राण सदा चाहै जल असना ॥२६॥
नयन रूप अरु शब्दहि श्रवना, इन्द्रिय चहै नारिको रवना ।
तुचा सयन नासा बहु गन्धा, चरन गवन कर करि है धंधा ॥२७॥
या विधि सब मिलि लूटैं ताकूं, बंध्यो देह सूं देखे जाकूं ।
ताते नेह देहको तजिये, सदा निरन्तर हरिको भजिये ॥ २८ ॥
हरि जब माया गुण विस्तारे, तब नाना विधि देह संवारे ।
तिनते मन सन्तुष्ट न भयऊ, बहुरिउ मानव तन निर्मयऊ ॥२९॥
ताकूं देखि बहुत सुख पायो, तामैं अपनो धाम बनायो ।
तब हरिजी यह बोले बानी, जोग प्रगट है वेद बखानी ॥३०॥
मोहिं लहै सो या करि लहै, या करि भव बन्धन दहै ।
जब मेरे हित करूं उपाई, तब मैं ताकी करूं सहाई ॥ ३१ ॥
तातें यह अति दुर्लभ देहा, श्रीभगवान रच्यो निज गेहा ।
अति दुर्लभ केउ जतनन पावे, जो पावे सो थिर न रहावे ॥ ३२ ॥
प्रतिदिन मृत्यु निरन्तरि ग्रासे, एक दिना तत्काल विनासै ।
जरा मरन भय शोक निधाना, जामैं पलक सुखी नहिं प्राना ॥३३॥
तातें ताहि पाइ करि राजा, कर लीजिये अपनो काजा ।
ताते यह छूटे संसारा, जाके दुःखको वार न पारा ॥ ३४ ॥
निस दिन देव निरंजन भजिये, ह्वै भयभीत विषय सब तजिये ।
विषया खान पान सुत दारा, ये सब देह निवारन वारा ॥ ३५ ॥
तातें त्याग सकलको कीजे, हरिके चरण कमल चित दीजे ।
या विधि इनसे शिक्षा पाई, तब मैं और सकल छिटकाई ॥ ३६ ॥

निर्भय बिचरूं ह्वै निःसंका, या तनहू को छोड्यो संगा।
सदा करूं हरि चरणन वासा, बहु विधि देखूं सकल तमाशा ३७।
वहुत गुरुनतें पूरन ज्ञाना, जहं तहं लेवै साधु सुजाना।
छूटै अहंकार अरु ममता, हिरदै आन बिराजै समता ॥ ३८ ॥
निरगुन सगुन भेद पहिचानै, सार असार अथिर थिर जानै।
जहां तहां लेके दृष्टंता, संसय द्वैत मिटावै संता ॥ ३९ ॥
परि ये परमारथ गुरु नाहीं, ये सब गुरु हैं सतगुरु माहीं।
सतगुरुतें जब ज्ञानहिं पावै, तब सारो जग ज्ञान सिखावै ॥४० ॥
ताते मेरे सदा अनंदा, हृदय बिराजै परमानंदा।
या विधि जो कोइ हरिकूं सेवै, तिनको हरि निज चरनन देवै ॥४१
ऐसे जाकों वचन सुनाये, मनके भ्रम सन्देह मिटाये।
राजा बहुबिधि पूजा कीन्हीं, करी प्रणाम प्रदक्षिणा दीन्ही ॥४२॥
तब राजाको करि सनमाना, दत्तात्रय मुनि कियो पयाना।
राजा बचन धारि उर माहीं, सबको संग तज्यो क्षिण ताहीं ।४३।
ब्रह्म दृष्टि सबहीमें आनी, ऐसो भयो प्रेम बिज्ञानी ॥
सो राजा यदु बड़ो हमारो, जिन अपनो भव संकट टारो ॥४४ ॥
ताते उद्धव और न कोई, गुरु आपनो आपही होई ॥
आपहि बूड़ आपहि तरै, आपहि जीवै आपहि मरै ॥ ४५ ॥

दोहा—

यह भाख्यो विज्ञान मैं, [illegible] अद्वैत उपाय।
अब ताको साधन कहूं, बहुत भांति समुझाय ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकदस स्कन्धे श्री भागवत उद्धव सम्वादे चतुर्विंशत गुरु व्याख्याने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीभगवान उवाच—

सुन उद्धव अब साधन कहूं, तेरे सब सन्देहन दहूं ।
जाते उपजै ब्रह्मगियाना, छूटैं और सकल भ्रम नाना ॥ १ ॥
मम भक्तन जे मारग भाखे, ते सब हृदय बीच गुनि राखैं ।
तिनको कहिये आतम धरमा, और सबै वन्धनके करमा ॥ २ ॥
तिनको सावधान होई जानै, वर्णाश्रम कुल मिथ्या मानै ।
जे जे बहु आरम्भनि करै, सुख चाहै निशिदिन दुःख भरै ॥ ३ ॥
आगेको बन्धन उपजावे, जिन संग जमद्वारे जावे ।
यह बिचार आरम्भनि तजै, होय निष्काम चरण मम भजै ॥ ४ ॥
जह लगि है यह नाना बुद्धी, सो सब उद्धव जान कुबुद्धी ।
द्वैत भावसों भ्रम करि जानो, सुपन मनोरथ करि सम मानौ ॥५॥
ताते और करम सब तजै, नित चित दै हरि चरणन भजै ।
तेऊ कछु सति नाहीं जानै, करै तो करै नहीं तो भानै ॥ ६ ॥
भक्ति माहिं जो अन्तर परै, मन बच कर्म बहुरि फिरि करै ।
जो जा समैं अन्तर जानै, तो ता समय सहजमें ठानै ॥ ७ ॥
जमनि मांहिं निहचल चित धरै, नियमनकूं भावे त्यूं करै ।
ब्रह्म बाणि गुरु सरनहिं आवै, जाते भेद सकलको पावै ॥८ ॥
जम अरु नियम कछू नहिं सेवै, सतगुरु कहै सीख सो लेवै ।
मान रहत मछर नहिं जानै, तन मन अरपि प्रीतिको ठानै ॥ ९ ॥
जहं तहं ते ममता परिहरै, सावधान आलस नहिं करै ।
तजै असु या बृथा न बोलै, तन मन निश्चल कदे न डोलै ॥१०॥

श्रद्धा आसक्ति होई, गुरु चरनन सेवै सिख सोई ।
दारा सुत वित गेह कुटुम्बा, सकल भूत आतम प्रति अंशा ॥११॥
तिनहिं सबनको सम करि देखै, मैं मेरो करि कदे न लेखै ।
रहै उदास आस परिहर, निसदिन ब्रह्म माहिं मन धरै ॥ १२ ॥
सुक्षम थूल देह ह्वै जैहै, भरम रूप माया मिटि जैहै ।
इन दोनुन ते आतमा दूरी, स्वयं प्रकास चेतन भरपूरी ॥ १३ ॥
थूल शरीर प्रगट जड़ एहा, चेतन करै ताहि वह देहा ।
सो वह उत्तम जड़ है अङ्गा, चेतन होय आत्मा संगा ॥ १४ ॥
सो आत्मा दुहूं ते न्यारा, दुहूं प्रकाशक दुहूं अधारा ।
ज्यों एक कांच अगनि पर जरै, सो दूजेहिं प्रकाशित करै ॥१५॥
पर सो अनल दुहूं ते न्यारा, स्वयं प्रकाश आतम आधारा ।
बहुधा सो बहु काठन संगा, पावै उतपति स्थिति अरु भङ्गा ॥१६॥
त्यों द्वै तन हरि माया किये, ते आत्मा आप करि लिये ।
तिन संग जनम मरन दुःख पावे, लहै अनन्द जबहिं छिटकावे॥१७॥
तातें बहु विधि करै विचारा, आतम जानै सबतें न्यारा ।
एक अजनमा अरु अविनासी, चेतन घन पूरन सुखरासी ॥ १८ ॥
तन उपजे विनसै वर ताई, प्रेम असुध तेहिं सुध नहिं काई ।
सकल विकारनको संघाता, प्रगट ही दीसै आवत जाता ॥१९॥
मोसूं यासों कैसो संगा मैं चेतन यह जड़ बहुरंगा ।
यूं विचारि त्यागै तन ममता, आतम दृष्टि सकलमें समता॥२०॥
या विधि हृदय होय थिर ज्ञाना, मिलै ब्रह्म छूटै भ्रम नाना ।
प्रथम अरणि स्थिर गुरु देवा, दूजी शिष्य करै नित सेवा ॥२१॥

गुरुके वचन श्रवन मय थाना, या विधि उपजे पावक ज्ञाना ।
उपजि काव तनके गुण दहै, करम बीज कोई नहिं रहै ॥ २२ ॥
तब ज्यों पावक तेज समावे, ईंधन विना न पलक रहावे ।
त्यों आतमा ब्रह्म मय होई, ईंधन करम भसम करि सोई ॥२३॥
अरु जो मूढ़ न यह विधि जाने,ते बहु विधि करमन कूं ठाने ।
ते करमनके फल भोगावै, जनम मरणको अंत न आवै ॥ २४ ॥
जहं जहं जाइ तहाँ तहं काला, निस दिन रहैं सदा बेहाला ।
यह जग दीसे ज्यों को त्योंहीं, पर एकौ पल रहै न योंहीं ॥२५॥
औरहिं और होइ आकारा, तिनसे गति मन बहू पुकारा ।
कबहूं ज्ञान हृदय नहिं आवै,जनम जनम मरि मरि दुःख पावै ॥२६॥
करम रु जो करमनि आचरे, सुख अरु ते सुख भोग हित करे ।
ये चासूं दीखे परतंत्रा, तातें सब तजिये यहु मंत्रा ॥ २७ ॥
जे पण्डित स्मृति श्रुति जानै, तत्व लहे बिनि क्रमननि ठानै ।
ते मूरख देहा अभिमानी, आपुहि आप कहावै ज्ञानी ॥ २८ ॥
हरि जन संग न कबहूं करै, तत्वनि सुने क्रमनि विस्तरै ।
तिनते भले ते कछु नहिं जानै, तत्व बचन सुनि हिरदे आनै॥२९॥
यद्पि अंत सुखनको जानै, अरु क्षिण भंगुर देहनि मानै ।
पर सो तत्व न समझै तेऊ, जानै लहै भक्तिको भेऊ ॥३०॥
काल मृत्यु जाकूं नित ग्रासै, ताकूं कर्म्म कहा सुख भासै ।
आयु छीन यूं करैं अभागे, ज्ञान [illegible] विषयन संग लागे ॥३१॥
क्रम क्रम जन्म लेय रु मरै, फिर फिर काल पास भव परै ।
ज्यों कोई मारनको लीजै, सूली निकट खड़ो लै कीजे ॥ ३२ ॥

अरु ताको जो भोग भुगावै, सोधौं कहो किसो सुख पावै।
अरु त्योंहीं न सुर पालाका, मद मत्सर निन्दा भव शोका ॥३३॥
तिनके हित जतन बहु करै, सिद्ध न होय विघन अति परै।
ज्यों खेतीमें विघन अनेका, त्यों सुरगादि फलहि कोई एका ॥३४॥
अरु जो लह्यो तो यह थिर नाहीं, देखत बिनसि जाय पल माहीं।
जहाँ जग्य कर जो कोई, अरु दूजो अन्तर नहिं होई ॥ ३५ ॥
तब सो स्वर्ग लोकको जावै, है करि देव देव सुख पावै।
अपने पुन्यनको उपजावै, उत्तम जाय विमाणहि पावै ॥ ३६ ॥
बहु गन्धर्व गानको करैं, बहु सुन्दरि नारि मन हरैं।
इच्छा होई तहां चलि जाई, सहित विमान विलम्ब न लाई ॥३७॥
अमृत पान तहां नित करै, वस्त्राभरण देह बहु धरै।
यों नित मगन बहुत सुख पावै, पहिलेको कछु चित न आवै ॥३८॥
जेतो पुन्य यहांको होई, ते ता रहै सुरग में सोई।
पुन्य क्षीण होवे पुन जबहीं, काल तहां ते ढाहै तबहीं ॥ ३९ ॥
सो सुख कहो तह्या क्यों जावै, ता दुख की कछु कहत न आवै।
रह्यो चहै पर क्यों कर रहै, काल अधीन महादुख लहै ॥ ४० ॥
कोई सुख पावै कहुं जेतो, छीन लिये होवै दुःख तेतो।
सो तजि सुरग भूमि पै आवै, पाछे जोनि अनन्तन पावै ॥ ४१ ॥
यह भाषी विधिको गति तोसूं, अब निषेधको सुनियो मोसूं।
जो कुसंगमें प्रानी परै, तो बहु भांति अधरमनि करै ॥४२॥
बांछे काम इन्द्रिय आधीन, स्त्री लम्पट लोभी दीन।
बहु जीवन की हत्या करै, प्रेत भूत गुनको अनुसरै ॥ ४३ ॥

मैं ही एक बसौं सब माहीं, तिनके द्रोह नरक में जाहीं ।
बहुरि आनि थावर तन लहै, जनम जनम बहु संकट सहै ॥४४॥
तातैं विधि निषेद जे करैं, ते सब जनम मरन में परै ।
करम करैं तिनतें तन धरैं, तन धरि धरि बहु दुःखसूं मरै ॥४५॥
तातें प्रवृत्तिमें सुख नाहीं, भावै ब्रह्म लोक किन जाहीं ।
लोकपाल सब लोक समेता, इतनो रहै ब्रह्मदिन जेता ॥४६॥
सो ब्रह्माको अन्त न रहै, तीतर बाज काल त्यूं गहै ।
अगनि रहै मेरे भय माहीं, पवन बहै निहचल पल माहीं ॥४७॥
सूरज चन्द एक रस चलै, मर्यादा तें सिन्धु न टलै ।
मृत्यु निरन्तर सबकूं ग्रासै, मेरे काल रूप तें त्रासै ॥ ४८ ॥
तातें कहूं न सुख प्रवृत्ति, सुख चाहै सो गहै न वृत्ति ।
अरु इन्द्रिय सब करम उपावै, तिनसों सत रज तम बरतावै ॥४९॥
सो आतमा इन्द्रिय बस होई, तातें सुख दुख व्यापै सोई ।
यदि आतमा अकरता जानौ, भोग रहित ताहीं तैं मानो ॥५०॥
करमरु भोगादिक हैं जेते, इन्द्रिय अरु गुन कृत सब तेते ।
जो लग यह इंद्रिय गुन बंधा, तौ लगि मिटै न तन मन बंधा॥५१॥
तन मन बंध मिटै नहिं जोलूं । नाना भांति बहुत बिधि तोलूं ।
नाना भाव रहै जब लग, पराधीन आत्म सो तबलग ॥५२॥
पराधीन जब लग यह रहै, तो लग काल निरंतर गहै ।
ताते जे प्रवृति रति होवै, जनम जनमते रोवै ॥५३॥
प्रथमहु तो मैं एक निरंजन, ताहीते उपज्यो यह अंजन ।
काल आतमा लोक अरु बेदा, करम स्वभाव बहुत बिधि भेदा ॥५४॥

ए सब माया सति न कोई, ताते कुछ अनुरक्त न होई।
एक निरंजन आतमा जानै, तब सब संकट मनको मानै ॥५५॥
लोक रु वेद वासना तजै, इन्द्रिय देह विषै नहिं भजै।
मन पहुंचे सो मिथ्या लेखे, मन कृतांत सो जहां तहां देखै॥५६॥
ब्रह्मरु आतमा एक विचारै, या विधि सकल उपाधिहिं जारै।
तबही एक ब्रह्म कूं पावे, छूटे द्वैत बहुरि नहिं आवे ॥५७॥
यह आतम अरु देह विवेका, याकूं जान ऐक कूं ऐका।
ऐसे वचन कहे जब कृष्ण, उद्धव दास करी तब प्रश्न ॥५८॥

उधवउवाच—

यह प्रभुजा यह सारो भरमा, इंद्रिय देह विषै गुण करमा।
अरु आतमा अलीह अबंधा, ताकों भयो कौन विधि बंधा ॥५९॥
अरु जो बहुरि ग्यान कूं लहै, छोड़ि उपाधि देहमें रहै।
सो बहुरयूं कहुं लिपति न होई, अरु क्यूं करि जानौ जै सोई ॥६०॥
कैसे विचरै कैसे रहै, कैसे जीवै कैस कहै।
कैसे पहिरै कैसे सोवै, कैसे सुनै कौन विधि जोवै ॥६१॥
अरु आतमा एक द्वै नाहीं, एक मुक्ति क्यूं एक बधाही।
एकै बंध एक क्यों मुक्ता, एतौ बहुत एक क्यों उकता ॥६२॥
गुण अनादि आतमा अनादि, ताते यह तो बंधन आदि।
निति मुक्ति क्यों कहिये देवा, याको मोहिं बताओ भेवा ॥६३॥

॥ दोहा ॥

ऐ उद्धव निज भक्तके, सुनि कर निर्मल वैन।
ताकों प्रतिउत्तर कहै, [illegible]की करुणां ऐन ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादस स्कंधे श्रीभगवत उद्धव संवादे दसमोऽध्याय ॥१०॥

श्रीभगवानउवाच—

चौपाई—

सुनि उधव अब प्रेम गियाना, जाते भेद मिटै विधि नाना।
बंधरु मुक्त तोहि लख पाऊं, तेरो सब अज्ञान मिटाऊं ॥१॥
बंध मुक्त जो कहिए कोई, तो सो सकल गुननि ते होई।
ते सब गुण मायाके जानो, इनते परे आतमा मानो ॥२॥
सो कह मोह जनम अरु सुख, भय अरु मरनादिक बहु दुख।
ऐ सारे मायाकृत केवल, सदा एक आतमनहि केवल ॥३॥
ज्यूं सुपनै सुख दुख अनेका, तिनमें आतमको नहीं एका।
ते सब बुद्धि अरु नकूं होवे, इन्द्रि देह प्रगटते सोवै ॥४॥
पुनि बुद्धयादि कछू नहीं रहै, जाग्यू प्रगट सुषोपनि कहै।
तब आतमा निरंतर होई, परि ताकूं सुख दुख नहिं कोई ॥५॥
जो सुखदिन मैं आतम रहै, तो व्यवहार पीछले गहै।
पर ताक्यूं कोई नहीं बिकारा, ये सब मायाके व्यवहारा ॥६॥
पारि आतमा अपनें माने, ताते सुख दुख बहु विधि मैं गानै।
पारि आतमा ऐक बसि नित्य, बंधमोषिद सकल अनित्य ॥७॥
ऊधव जानो एक अविद्या, अरु दूजी जो कहिये विद्या।
ऐ दोऊ हैं मेरी शक्ति, इनमें सब दिनकी आसक्ति ॥८॥
बंधन कह्यो चहुं मैं जाकौ, प्रेरि अविद्या पठऊं ताकौं।
अरु जाके बंध निं मिटाऊं, ताकौं विद्या शक्ति पठाऊं ॥९॥
ऐ जो दोइ मुक्त अरु बंधा, ते मम लख तिनिक संबंधा।
आतम है सो मेरो रूप, सब तैं परम न्यारो परम अनूप ॥१०॥

ज्यूं सविके प्रति स्यंद अनेका, परिके बहुत नहीं सब एका।
अरु जा जाको घट बिन सांई, सोई सो घरि मोहि समाई ॥११॥
त्यूं सब आतम मेरो अंशा, परि घट संगि लहै दुख संसा।
विद्या शक्ति जाहि यौं जबहीं, घटको नास करत सो नहीं ॥१२॥
सोई सो तब मोकूं लहै, और सकल मनहीमें रहै।
अरु प्रतिबिम्ब घटनिहूं मांहीं, सदा अलिप्तिलिप्ति कहुं नांहीं॥१३॥
परिघट संगलि पन भो होवैं, अरु त्यौं (-म औरऊ जोवै।
त्यूं आतमा सकल तैं न्यारा, सदा अलिप्त लिपै विकारा ॥१४॥
परियातन मैं आप बंधाना, ताके संग लहै दुख नाना।
अब मैं बंध मुक्तको कहूं, तेरे सब संदेह दहूं ॥१५॥
एक देह मैं द्वैको बासा, परमातम आतमको पासा।
ज्यूं द्वै पंषि रहै तरु मांही, तरु तें भिन्न लिप्त कहूं नांहीं ॥१६॥
दोऊ चेतन ऐक समाना, सषा रूप एक हो अपथाना।
आप हुतें तिन बासा कीयो, तिन मेगेक तरुहि विच्छ दोयो ॥१७॥
देह व्रषके सुष फल पावे, तातें दुष आपदी आवे।
तब ताकाजि करमम बहु करै, तिन तै जुग जुग जनमै मरै ॥१८॥
देह मरे मरनो करि जाने, देह जन्म जनमही माने।
असै सदा बहुत दुष पावे, द्वै मै सो आतमा कहावे ॥१९॥
परमात्मा देह तरु मांही, सुष फल कबहु पावे नाहीं।
तातै कछु करम नहीं गहै, निजानन्दमय निश्चल रहै ॥२०॥
यौं प्रमात्म आत्म जाने, देह अतीत दहूं कूं माने।
सुष फल अरु आरंभहि तजे, मुक्त होइ प्रमात्मा भजे ॥ २१ ॥

ज्यौं तन मांहि मुक्त प्रमात्म, विद्या पाइ बसैं त्यूं आत्म।
तनमैंहै परितन मैं नांहीं, आप ही जानि भयौ थिर मांहीं ॥२२॥
सुपन देषि ज्यूं जागै कोई, सौं म्यो सुपन विना रै सोई।
परिसौ सुपन देह अरु सुपना, मिथ्या जानै भ्रम तै उपना ॥२३॥
अरु जो रहत अविद्या होई, सो तन मै नहीं परिहैं सोई।
ज्यूं सोवत सुपना तन पावै, ताकूं आप जानि मन लावै ॥२४॥
तन में बंध मुक्त जो जीवा, बंध जीव मुक्ता सो जीवा।
बहुरियूं कहूं मुक्तके लिष्यण, जिनको जानैं होइ विचष्यण ॥२५॥
देषै सुनै कहै कछू करै, सो कछू कदेन हिरदै धरै।
सकल अरथ इन्द्रिय करत जानै, आपही ऐक अकरता मानै ॥२६॥
पूरब करमां धीन शरीरा, करम करैं इन्द्रिय मन सीरा।
तिन मैं बास कीयौ नहीं जानै, मूरिष आपहि करता मानै ॥२७॥
बहुरि मुक्त ऐसी विधि रहै, अहंकार यातनकौ दहै।
आसन असन अटन अरु सयनां, दरस परस आघ्रानरु बयना २८॥
इनमें इन्द्रिनकूं बरतावै, आपन कबहुं प्रीति लगावै।
रहै मांहि परिलिपन होई, ज्यूं आकास पवन रवितोई ॥२९॥
विद्या नाम सहै थी पाई, दृढ़ बैराग सान धरवाई।
तासूं काटे संसय सारे, जागि सकल भ्रम भेद निवारे ॥३०॥
इन्द्रिय प्राण बुधि मन मांहीं, कबहुं कछु बासना नांहीं।
सो जदि पतनहूंमै दरसै, परसो मुक्त तनहिं नहीं परसै ॥३१॥
ऐक दुष्ट तन पीड़ा करै, ऐक बहुत पूजा बिसतरै।
परिबुध्य रोष तोष नहीं आनै, सकल देह कृत मिथ्या जानै ॥३२॥

विधि निषेध जो कोई करै, किंवा कहै अन्ध विस्तरै।
सुनि कछु भलो बुरो नहीं देषै, गुण अरु दोष रहत समलेषै ॥३३॥
विधि निषेध नाहीं कछु करै, नाकछु कहै न हिरदे धरै।
निश दिन रहै ब्रह्म रसमंत, इच्छामैं ज्यों जड़ उन्मत्त ॥ ३४ ॥
ऐसे चहि न मुक्तके मानौ, अरु मुमोक्षको साधन जानौ।
मुक्त भयो चहे जो कोई, ए सब साधन साधै सोई ॥३५॥
जिन सब सबई ब्रह्महिं जान्यो, पर निज तत्व नहीं पहचान्यो।
इन साधननि माहिं रति नाहीं, ताके श्रम सब मिथ्या जाहीं ॥३६॥
सबद ब्रह्म ब्रह्मके काजा, हरि जे अरु हरि भक्तन साधा।
ताते ब्रह्म बिना श्रम ऐसे, बञ्झा गाई सेइये जेसे ॥३७॥
बंझा गऊ दूध बिनु होई, पराधीन तनु राखै कोई।
असती नारि पुत्र अन्याई, धरम बही नोधन अधिकाई ॥३८॥
ज्यू इनतें दिन दिन दुःखहोई। कबहूं सुख न पावै कोई।
मोविहीन ज्यूं बहु विधि बानी, केवल बन्धनहीको जानी ॥३९॥
मोतें जग उतपति संहारा, सब प्रतिपालन विविध प्रकारा।
किंबा जनम करब बहुतेरे, जा बा नर मैं नाहीं मेरे ॥४०॥
मेरे नाना विधि संबंधा, जाबानी मैं नाहीं बन्धा।
बंका वानी ताहि विचारै, निफल जानि न पण्डित धारै ॥४१॥
या विधि जानि बहुत प्रकारा, बहुत भांति कर बहुत विचारा।
जहां तहां ते मनहिं निबारै, पूरण एक ब्रह्म मैं धारै ॥४२॥
जो दूजे नाना अरथ, मन धारन कूं नहीं समरथ।
सो मम हेत करम सब करै, प्रेम मगन फल जल परिहर ॥४३॥

औरै क्रम अक्रम विक्रमा, बन्धन जानि तजे सब भ्रमा।
जाही तें उपजे मम भक्ति, ताही मैं राखे अनुरक्ति ॥४४॥
श्रधा सहित सुने गुन मेरे, जिनते करम न आवे नेरे।
गावे सुमरे अस्तुति करै, प्रेम सहित निसदिन विस्तरै ॥४५॥
जो कछु धरम करम अरु अरथ, करै सकलते मेरे अरथ।
मम आधीन निरन्तर रहै, मन क्रम बचन आनि नहिं गहै ॥४६॥
या विधि होवै निश्चल भक्ति, और सकलतैं सहज विरक्ति।
तब मेरे निज रूपहि जाने, ताते नाना भेद मिटाने ॥४७॥
तब ताही पद माहिं समावे, जातें जनम फेर नहिं पावे।
परिये सत संगति तैं होई, सत संगति बिन लहै न कोई ॥४८॥
भक्तन बिना भक्ति नहिं पावै, भक्ति बिना नहिं मोमें आवै।
ताते सत संगति कूं करै, दूजो जतन सकल परिहरै ॥४९॥

दोहा—

ऐसे सुनि हरिके बचन, मनमें बाढ़ी ख्याल।
तब भक्तन अरु भक्तके, लच्छण पूछे दास ॥५०॥

उधवउवाच—

हे प्रभु पूरन प्रेम अनन्त, या जग बहुत भांतिके सन्त।
जाकूं संत कहो तुम देवा, ताको मोहिं बताओ भेवा ॥५१॥
अरु सो भक्ति कवन विधि ठाने, जातें तुव निज रूपहिं जाने।
तब उधव कूं दे बहुमान, कृपासिन्धु बोले भगवान ॥५२॥

श्रीभगवान उवाच—

परम कृपाल द्रोह नहिं जानै, क्षमावन्त अरु सत्य बखानै ।
निन्दा रहित द्वंद्व सब सहना, पर उपकारी हिरदै समता ॥५३॥
औरौ काम बुद्धि थिर रहै, इन्द्रिय जित कोमलता गहै ।
सदाचार संग्रह नहिं जानै, लघु अहार अरु ईहर आनै ॥५४॥
सीतल हिरदय विचार ही करै, धरम आपने दृढ़ता धरै ।
सावधान अरु रहत विकारा, धीरजवंत अरु दया अधिकारा ॥५५॥
सोक मोह अरु क्षुधा पियासा, जरा मृत्यु जीते षट पासा ।
आप मान अपमान न जानै, औरनकों बहु मानहिं ठानै ॥५६॥
जो कोई सरणागत आवै, ताके ज्यूं त्यूं ग्यान उपावै ।
सबकों मित्र सुभग सुध जानै, दृढ़ विस्वास सकल अप मानै ॥५७॥
मम आधीन दीन ह्वै रहै, साधनकों बल कद न गहै ।
मोहीं कूं करना करि जानै, कबहूं भूलि न आपा आनै ॥५८॥
जादिप वेद रूप मैं गाए, वरणाश्रम कुल धर्म बनाए ।
तोहूं विधि निषेद सब तजै, दृढ़ निश्चय मम चरनन भजै ॥५९॥
असौ भक्त निज भक्त कहावै । ताके संग भक्ति कूं पावै ।
देस रु काल रहत अबानम, चिदानन्दमय प्रभु परमात्म ॥६०॥
ऐसो जानि मोहिं नित भजै, और सकल संकलपनि तजै ।
सो मेरो कहिए निज भक्ता, तासों [illegible] जहू जे अनुरक्ता ॥६१॥
अरु जे ऐसो मोहिं न जानै, परि अत्यन्त प्रीति कूं ठानै ।
लै करि मोहि सकल परिहरै, ते जन मोहिं आप बसि करै ॥६२॥

ये भक्तनके लच्छण कहिये, मेरी कृपा हू तें ते लहिये ।
तिनकूं पाइ भक्तिको पावै, भक्ति पार मम चरननि आवै ॥ ६३ ॥
तातैं मोंहि चहै जो कोई, मम संतन क्यूं सेवै सोई ।
अब मैं कहूं भक्तिके अंगा, जातै पावै मेरो संगा ॥६४॥
मम प्रतिमामें मोकों भजै, मन बच कम फलादिक तजै ॥
हितसूं दरस परस परिचरजा, अस्तुति अरु डंडवत सपरजा॥६५॥
मेरी कथा विषै अति श्रधा, मो बिन कछु न करै पल अरधा ।
मेरे जन्म करमन गुन गावै, सदा निरन्तर मोकूं ध्यावै ॥६६॥
तन अरु तनके पीछे जेते, मोकूं सकल समरपै तेते ।
जन्माष्टमी आदि जे पर्वा, बहुत उछाह करै ते सर्वा ॥६७॥
नृत गीत अरु बहु विधि बाजा, मन्दिर रूप बहुत विधि साजा ।
कथा कीरतन बहुविधि चरचा,जागरणादि बहुत विधि अरचा ॥६८॥
ऐसै बहुत भांति उछाहा, सब प्रवीण सब विधि निरवाहा ।
मथुरादिक हरि धामनि जावै, बहुत भांति करि प्रेम बढ़ावै ॥६९॥
औरनि कुं अरचाहि सिषावै, ठोर ठोर प्रतिमा पधरावै ।
बहु विधि करे बाग फुलवाई, क्रीडा स्थान संहति चतुराई ॥७०॥
पुर मन्दिर बहु भांति करावै, ज्यूं हरि अरु हरि भक्त निभावै ।
आप मांहि जो सक्ति न होई, तोहु उदिम ठाने सोई ॥७१॥
बहु विधि रहमां कहै कहावै, औरन सूं मिलिके करवावै ।
मन्दिरादि बहु भांति बुहारै, बहु विधि सींचें धूलि निवारै ॥७२॥
चित्र विचित्र चोक बिसतरै, ह्वै करि दास आप ही करै ।
मान रहत कछु दम्भ न जानै, जो कछु करै सुनहो बषानै ॥७३॥

मोकौं करे आरती जासौं, और काहु न देवै तासौं ।
मम प्रसाद प्रीतिसूं लेवै, प्रीतिहीन जीवनि नहीं देवै ॥७४॥
योंही ज्यूं ज्यूं उपजे प्रेम, त्यूं त्यूं अधिक बढ़ावे नेम ।
मम भक्तनके रहे आंधीन, तन मन धन सौं नित लैलीन ॥७५॥
अरु ऐकादस ठोरहि निभई, मम पूजा करि हरि हैं अभई ।
सूरज अग्नि विप्र अरु गाई, भक्त भेष आकास रुवाई ॥७६॥
जल अरु धरनि आपु मैं त्योंही, सवनि मांहि मम पूजा योंही ।
विद्या त्रिय सूरकी पूजा, मोकूं छोड़ि न जाने दूजा ॥७७॥
वरिषा राजसि करि उपजावे, सांतिक सीत सबनि बरतावे ।
तामस ग्रीषम सकरु विनासे, सकल जगतको आप प्रकासे ॥७८॥
तातैं मेरी परम विभूति, ऐसे जानि करे अस्तूति ।
पावक मांहि होम करि जजे, विप्रनि अतिथ भाव सूभजे ॥७९॥
त्रण जलादि गाइकी पूजा, भक्त भेषमें और न दूजा ।
भक्त भेष निज बान्धव जाने, अति प्रसन्न ह्वै पूजा ठाने ॥८०॥
ज्यूं आपने बन्धु संबन्धा, तिन सूं प्रीति सबनि है बन्धा ।
तिनको बहुत भांति करि सेवै, तन मन धन निश्चय करि देवै ८१
त्योंही भक्त आपने भाई, ऐसे जानि करे अधिकाई ।
तन मन-धन सूं प्रीति बढ़ावे, जिनते मेरे भेदहि पावे ॥८२॥
हृदे अकास ध्यान सूं सेवै, [illegible]धार पवन चित देवै ।
जलकौं जल अरु फूल फुलादि, भूधरनी पूजे मन्त्रादि ॥८३॥
भोगनिसूं निज देहहि भजे, मो बिचि अन्तराइ सो तजे ।
सब भूतनिमें मोकुं जाने, समदरसन यह पूजा ठाने ॥८४॥

एन सब ठौरनि पूजा करै, मेरो रूप हृदैमें धरै।
रूप चतुरभुज आयुधधारी, श्याम शरीर पितम्बर धारी ॥८५॥
सीस मुकुट सुभ कुंडल करनां, कौस्तमादिबहु विधि आभरनां
ऐसो रूप मनहि मैं ल्यावे, सावधान ह्वै प्रीति बढ़ावै ॥ ८६॥
या विधि बाईपूजा पर बागा, जप तप दान दया व्रत जागा।
मेरे हेत करै जो करै, मो बिनि और हृदै नहीं धरै॥८७॥
यन साधननि करै नर जोई, प्रेम भक्ति मम पावै सोई।
ऐसा धन करले बहु भांति, साध मिलाप होइ दिन राति ॥८८॥
तिन तें ऐसो जुक्ति हि पावै, जातैं ज्ञान भक्ति उरि आवै।
तातैं ग्यान भक्ति को कारण, ऐक भक्ति भव सागर तारण ॥८९॥
तातैं भक्तनसूं हित लावै, जिनतै मेरी भक्ति हि पावै।
जिनकै घनिज भक्ति की निते, कबहु और न आवै चित्त ॥९०॥
मैं उनको मेरे हैं तेई, ऐसो भेद न जाने कोई।
जो कछु कहै करूं मैं सोई, जद्यपि मेरे मन नहीं होई ॥९१॥
मोहि मिलनको ऐक उपाया, बहु विधि खोजत और न पाया॥
साध संगति मिलि भक्तिहि करई, सोई ऐक जक्त जल तिरई॥९२॥
भक्त न बिना भक्ति नहीं पावे भक्ति बिना नहीं मो मैं आवे।
मोमैं आये बिनि जहां जाई, तहां तिहिं काल निरन्तर खाई ॥९३॥
यह अति गोपि मतो है मेरो, अरु मेरे अधीन चित है तेरो।
तातैं यह मैं तोसूं कह्यो, आगे कछु कहबे नहीं रह्यो ॥९४॥

दोहा

बहुरि गोप्य अपनो मतो, कहूं तोहि समझाइ।
तातैं छूटै जगत भय, मोमैं रहै समाइ ॥९५॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्री भागवत उद्धव सम्वादे भाषायां एकादसोऽध्यायः ॥११॥

श्रीभगवानुवाच—

चौपाई—

उद्धवमतो गोप सुनि मेरो, पावै मोहि मिटै भय तेरो।
आकलनको पन्थ दिखाऊं, और सकल कुपन्थ लिखाऊं ॥१॥
जोग कहीजे अष्ट प्रकारा, सांख्य प्रकृति अरु पुरुष विचारा।
बहु विधि वरणांश्रमके धरमां, सफल त्याग हूं त्रो निह करमां॥२॥
वेदादिक बहु विद्या पाठा, जांहां लगहै तप अति काठा ।
होम जग्य सब वापी कूपा, इष्टादानुं समय अनूपा ॥३॥
एेकादसी आदि व्रत जेते, गुप्त मन्त्र मेरे हैं केते।
मम प्रतमा पूजा आचरणां, तीरथ अटन नयम जप करणां ॥४॥
और समाधि आदिक जेते, साधन सकल मुक्तिके तेते ।
इन सबहिन तें मोहि न पावे, साधू जन पल मांहि मिटावे ॥५॥
उन तें मनको संगन छूटै, मम चरननि मैं चित नहीं चहुंटे ।
ताते मोहि न पावे उनते, पावे बचन साधके सुनते ॥६॥
साधू ऐसे वचन सुनावे, सत्रु मन्त्र सुष दुष जनावे ।
सार असार कालनिह काला, साध दिषावें सब ततकाला ॥७॥
सब ते मनको संग मिटावें, मेरे चरण कवल लिपटावें ।
ऐसी विधि भवसागर तारे, मेरे जन ततकाल उधारे ॥८॥
केते तिरे तिरेंग जेते, अरु अबहुं तिरत हैं केते ।
ते सब साधू संग तें जानो, दूजो और उपाहन मानो ॥९॥
खग मृग जातुधान असुरादिक, चारण सिध नाग गुह्यादिक।
अपसर विद्याधर गंधरवा, जिन जिन पायौ तेते सरबा ॥१०॥

वैस्य सुद्र अंतिज अरु नारी, बहु राज संताम सअधिकारी।
जुग जुग जे सत सङ्गति आए, तिन ही तिन मेरे पद पाए ॥११॥
ब्रतासुर ब्रषभा सुरब ानां, बलि प्रह्लाद बिभीषण जांनां।
मय सुग्रीव रीछ हनुवन्ता, गज अरु गीध ब्याध अघवंता ॥१२॥
तुलाधार कुब्जा ब्रज गोपी, धूमनिकी सीमा जिन लोपी।
जग्यवंत विप्रनकी बनिता, पुरुषनिकी कीन्हीं अब मनिता ॥१३॥
और अनेक कहां लौ कहीऐ, कहत कहत कहु अंत न लहीऐ।
तिन कछु विद्या वेद न जानै, सांख्य जोग नहीं पहिचानै ॥१४॥
जप तप जग्य ब्रतादिक नहीं कीन्हें, औरैं धरमन कोई चीन्हें।
परि जो साधु संग जिन पाये, ते सब मेरे चरननि आये ॥१५॥
अरु तुव उद्धव यों मति जानौ, तिनकूं सङ्गति मेरी मानौ।
उद्धव सन्तनमें हूं नाहीं, मैं ही हूं सन्तन उर माहीं ॥१६॥
किनहूं मिलूं धारिके तनको, मिलि करि सोधौं तिनके मनको।
ऐसी विधि ऐकनि कूं तारूं, ऐकनि साध रूप उधारू ॥१७॥
साधन ह्वै मनके मल हरूं, सो मन आगे चरननि धरूं।
ऐसी विधि तिनकूं उधारूं, जहं तारूं तहं मैंही तारूं ॥१८॥
साध संग सो मेरो सङ्ग, साध सकल है मेरो अंग।
ताते दोउ साधु सङ्ग जानो, कै तो दोऊ मेरे ही मानौ ॥१९॥
गोपी गाय ब्रक्ष नग नागा, औरौ मूढ़ बुद्धि बड़भागा।
मम सतसङ्ग प्रेम तिन बांध्यो, भाव भक्ति मोकों आराध्यो॥२०॥
और कछू साधन नहिं जान्यो, अरु नहिं ब्रह्मरूप कर मान्यो।
पर तिनको हित मोसों भयो, तातें मनको मल सब गयो ॥२१॥

अमही बिन तिन मोकूं पायो, अति अपार भव दुःख मिटायो।
जाको जोग सांषि ब्रत दाना, जग्य वेद विद्या विधि नाना ॥२२॥
करि सन्यास बहुत दुःख सहै, तेऊ मोकूं कदे न लहै।
ताको तिन सुखहीमें पायो, जो केवल मन मोसूं लायो ॥२३॥
राम सहित मोहिं पायो जबहीं, चले अक्रूर मधुपुरी तबहीं।
तब ते गोपी मेरे हेत। खाइ मूरछा भई अचेत ॥२४॥
बहुसू समझ बहुत दुःख पावै, निस बासर मम चरननि ध्यावै।
मोहिं छोड़ि सब दुख भये दूखै, लोक वेद कुल कछू न लेखै ॥२५॥
जे निस मो संग पलसी वातैं, तेई तिनकूं कलप बदीतै।
मेरे गुणनि सुनै अरु गावै, लीला रूप हृदयमें ध्यावै ॥२६॥
कबहूं बिरह महा दुख रोवै; कबहूं तपे दसौ दिस जोवै।
कबहूं प्राण तजनको भाषै, मम दरसन आसा ते राषै ॥२७॥
नींद भूख तिस सकल गुवाई, और देह गुण रह्यो न काई।
तिनके दुख तेई पै जानै, कै मैं तीजौ कहा बषानै ॥२८॥
बिरह प्रचण्ड अनल अधिकारा, सकल विचारन भए जलिछारा।
प्रेम प्रवाह सकल मल छाले, यौं मो बचिके अन्तर टाले ॥२९॥
तब यह उपजी प्रेम अनूपा, भूली आप भई मम रूपा।
ज्यों जोगेसुर ब्रह्महिं ध्यावैं, ह्वै करि ब्रह्म आप विसरावैं ॥३०॥
अरु ज्यों सरिता सिन्धु समावै, नाव रूप गुण भेद गुँवावै।
त्यौं वे भई रूप से मेरा, द्वैतभाव कहुं रह्यौ न नेरौ ॥३१॥
पाप जौनि अबला ते सारी, अरु श्रुति की म्रजादा टारी।
निज पतिछांड़ि कियो बिभचारा, अरु तिन मोकूं जान्यौ जारा ॥३२॥

ब्रह्म भाव कबहूं नहिं जान्यो, नित प्रपुरुष माहि तिनि मान्यो।
पर तोहू भव सिन्धु मिटायो, सतनिस ईश्वनि मम पद पायो॥३३॥
ताते सुन उधव बड़ भागा, लहैं सबई सबको करि त्यागा।
जो है सुन्यो सुननको जोई, प्रवीति निव्रति जो कछू होई॥३४॥
सब तजि सरन एक मम आओ, द्वैतभाव मनके बिसराओ।
जाहां ताहां मम रूपहि देषो, माया पर कछु और न लेषो॥३५॥
ऐसे है करि मोकूं पैहै। जाते जगत जन्म नहिं पैहै।
योंहारजी बानी उच्चरी, तब उधव आसका करी॥३६॥

उधवउवाचः—

प्रभु तुम त्याग वेदका कह्यो, सो तेरे उर संसो रह्यो।
तुम्हरी आज्ञा वेद कहावें, ताहि छोड़ कैसे सुखपावें॥३७॥
तुमही श्रुतिमे करणो भाषै, तुमही यहा दूरि करि नाषै।
तातें मन भ्रमता है मेरा, थिर कीजे अपने जनकेरा॥३८।
किधौं वे सात किधौं ए देवा, याको माहिं बताओ भेवा।
तब गोपाल बचन उचारें, ज्यों रवि उदय मांझ अंधियारें॥३९॥

श्रीभगवानउवाच;—

उधव सुनि अब उतम ग्याना, जातें तब्छूटे भ्रम नाना।
प्रथमहीं आप निरञ्जन ऐसा, और कछू नहीं हुतो अनेका॥४०॥
बहुरि कियो माया विस्तारा, [illegible] बहु प्रकारा।
तामे आप प्रवेसहिं किया, प्राणरु शब्द संग करि लिया॥४१॥
सोता स्वछ्द चक्र आधारा, परा नाम कीन्हो आकारा।
मन स्फुरक पसन्ती नामा, चक्र विसुत्र मध्य माधामा॥४२॥

बाहर प्रगट वैषरी बानो, जौ यह लोकरु वेद वषानी।
स्वर लघु मातुर अक्षर जेते, नाना भांति विलतरे तेते ॥४३॥
लोक मांहि थोरे विस्तारे, वेद मांहि त्रिसठि है सारे।
परि तिनको बहु विधि विस्तारा, जाको कोई लहै न पारा ॥४४॥
जैसे अनल काठ मथि काढ़्यो, ईंधन पवन संग बहु बाढ़्यो।
यों मम बानीका विसतारा, तातें प्रगट्यो सकल पसारा ॥४५॥
यह विस्तार सब्दकौ सारौ, जामैं चेतन रूप हमारौ।
इन्द्रिय उपजे दस प्रकारा, सुत्र रु मन बुद्धि चित्त अहङ्कारा॥४६॥
सत रज तम माया गुन जानों, सब विस्तार तिन्हींको मानो।
ज्यों अद्वैत एक निरधारा, तिन कीन्हौं माया विस्तारा ॥४७॥
तिनमें बहुद भाँति आभास्यो, उत्तम मध्यम नीच प्रकास्यो।
विधि निषेध ताते कर लिये, सुष दुष द्वै ताके फल भए ॥४८॥
यह संसार एक तैं ऐसे, एक बीज से ब्रहु बन जैसे।
तातें यह सब एक अधारा, अरु एकहि को सकल पसारा ॥४९॥
जैसे वस्त्र तन्तु मय होई, ओत पोत दूजो नहिं कोई।
ऐसें यह भव तरु है एका, द्वै फल फूल अरु साख अनेका ॥५०॥
यह सब मम चेतन आधारा, परि तौ हू चेतन ते न्यारा।
सो चेतन है मेरो अंसा, यामें भूलि न आनौ संसा ॥ ५१ ॥
यह संसार वृक्ष है जैसो, मैं भाषत हौं सुनि यौ तैसो।
पाप रु पुन्य पीज द्वै जाके, मूल अपार बासना ताके ॥ ५२ ॥
आदिहिके त्रिये गुणत्रियसाषा, तिनतें पंच भूत परिसाषा।
उपसाखा मन औ इन्द्रिय दस, सबदादिक सरवै पंचौरस ॥५३॥

कफ अरु बात पित त्रिय बल्कल,सुख अरु दुःख प्रगट ये द्वै फल।
तामें द्वै पक्षिनको बासा, परमात्मा अरु आत्मा पासा ॥ ५४ ॥
जे मूरख यह भेद न जानै, ते बहु भांति वेद बिधि ठानै ।
तिनते होवै बहु बिधि बन्धा, जुग जुग दुख पावै ते अंधा ॥ ५५ ॥
जो यह देह वृक्ष करि जानै, आपहि पक्षी न्यारो जानै ।
वेद स्मृति सब माया देखैं, सकल अतीत आप कूं लेखै ॥ ५६ ॥
तब यह विधि निषेध छिटकावै, सुखअरु दुखके निकट नआवै ।
सकल माहिं आपहिं कूं मानै, भेद देह कृत माया जानै ॥ ५७ ॥
चेतन सक्ति ब्रह्म करि देषै, और सकल माया में लेषै ।
फिर यह सकल भेद तब पावै,जब सतगुरुकी सरणहि आवै॥५८॥
सत गुरु बिना न पावै कोई, ब्रह्मादिक भावै सो होई।
ताते गुरुकी सरणहिं आवै, दृढ़ उपासना भक्ति बढ़ावै ॥ ५९ ॥
गुरु सेवाको असौ प्रभाव, जातें उपजै मेरो भाव ।
गुरु सेवातें पावै भक्ति, गुरु सेवातें सकल विरक्ति ॥ ६० ॥
गुरु सेवातें ग्यानहिं लहै, गुरु सेवातें कर्महिं दहै ।
गुरु सेवातें प्रेम प्रकासा, गुरु सेवा मम चरन निवासा ॥ ६१ ॥
मोहि मिलनको यही उपाई, गुरु सेवा बिन और न काई ।
तातें गुरुकी सरणहिं आवै, तन मन धन सूं हेत लगावै ॥ ६२ ॥
तातें उपजै ग्यान कुठारा, सब पास्यनको काटन हारा ।
त्रिगुण लिंग सरीर उपाधि, जा आत्माको लागी व्याधि ॥ ६३ ॥
ग्यान कुठार सकल संहरै, या विधि आत्मा निरमल करै ।
पाछे ग्यान ध्यान सब त्यागै, जिस दिन एक ब्रह्म अनुरागै ॥६४॥

तब सो ब्रह्महिं माहिं समावै, बहु सूं जक्त जन्म नहीं आवै।
ताते तुम सब साधन त्यागौ, निसदिन एक ब्रह्म अनुरागौ ॥६५॥

दोहा—

यह उद्धव तोसौं कह्यो, भव मोचन मम ग्यान।
अब बहुरयूं साधन सहित, भाषौं प्रेम निधान ॥ ६६ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्री भगवान उद्धव सम्वादे भाषायां द्वादसौ अध्याय ॥१२॥

श्रीभगवान उवाच।

चौपाई—

सुनि उद्धव अब प्रेम गियांनां,जात पावे प्रेम निधाना।
जाते ज्ञान होइ ते कहौं, या विधि तुव अज्ञानहिं दहौं ॥ १ ॥
सात्विक राजस तामस जे हैं; उद्धव ते गुण मायाके हैं।
सुख दुख सब तिनहीं के जानौ, इनते परे आत्मा मानौ ॥ २ ॥
तातें नर सात्विक कूं गहै; सात्विक फारि रज तम को दहै।
पीछे ब्रह्म माहिं थिर होई, सातिकउ तब त्यागे सोई ॥ ३ ॥
अस विधि तीनों गुन कूं दहै, तब ह्वै ब्रह्म ब्रह्म में रहै।
ज्यों ज्यों होइ सात्विक अधिकारा, त्यौं त्यों प्रेम भक्ति विस्तारा॥
सकल वस्तु सात्त्विक जब भजे, तबहीं सात्त्विक गुन ऊपजै।
ज्यूं ज्यूं सात्त्विक त्यूं त्यूं भक्ति, त्यूं ही त्यूं अन्यत्र विरक्ति ॥५

तब रज तम दोऊ मिटि जावे, तातें तिनके गुन नहीं आवे ।
हरष रु सोक मान अपमाना, निद्रा आलस गरब गुमाना ॥ ६ ॥
राग द्वेष आदिक हैं जेते, सकल रज तम के ते ते ।
ताते जब यह रज तम जाहीं, तब तिनके गुन उपजे नाहीं ॥ ७ ॥
तात सात्वक संगति करै, रज तम की संगत पर हरै ।
मूल सकल को संगति कारण, संगति बोरे संगति तारण ॥ ८ ॥
देस रु काल पुत्र जल पान, ग्रन्थ रु कम जन्म अरु ध्यान ।
गरभाधान आदि संस्कार, मंत्र जाप ये दस प्रकार ॥ ९॥
ये दस जाकों होवैं जैसे, गुण विस्तारै ताकूं तैसे ।
सातिक तो सातिक उपजावे, राजस तो राजस अधिकावै ॥ १०
तामस तो तामस विस्तरै । जैसे ए दस तैसो करै ।
जाही जामैं जो गुण होई । सो सो उतिम जानै सोई ॥ ११ ॥
परि जो उत्तम साध बखाने, सो वह सातिक उत्तम जानै ।
जो अति निन्द्य तमो गुण सोई,सो राजस कछु मध्यम जो है ॥१२
तातें ये दस सातिक सेवै, राजस तामस नाम न लेवै ।
राज तामस जो हित होई, तोहू सब छिटकावै सोई ॥ १३ ॥
सातिक के संग उपजै सत्व, त्यूं त्यूं लहै भक्ति को तत्व ।
जो लग दृढ़ उपजै विग्याना, देखै एक सकल भगवाना ॥ १४ ॥
अरु दोऊ देहनि भ्रम जानै, सब विस्तार स्वप्न सम मानै ।
तब वह ब्रह्म माहिं थिर होवै, सात्वक हू की आर नु जूवै ॥ १५
ज्यों बांसन ते उपजै अनल, अरु होवै मारुत तें प्रबल ।
सब बांसन कूं दाहै सोई, आपुहि बहुरि उपंसमि होई ॥ १६ ॥

ज्यूं साधन या तन तैं होवै । त्यूं प्रवृत्त या तन कूं खोवै ।
बहुरयूं आपद पतित होई, साधन हेत रहै नहीं कोई ॥ १७ ॥
गुणातीत जो कहिये योगी, तीनों काल ब्रह्म रस भोगी ।
सो बहुरयों स्वर्ग नहिं आवै । मोहिं मिल्यो मो मांहि समावै १८
तातैं सब साधन छिटकावै, एक निरञ्जन मो कूं ध्यावै ।
तब हरि की सुनि अद्भुत बानी, जन उद्धव यह प्रश्न बखानी १९

उद्धव उवाच—

हे प्रभुजी इहां ऐसो कहिये, ध्यानादिक कों तज सुख लहिये ।
पर जे विषय सुखन को चाहैं । तातें बहु आरम्भ संदा हैं ॥ २०
ते बापुरे सदा दुख सहैं, कबहूं भूलि न सुख कूं लहै ।
पर ते तो विषयन दुख जानै, जानि बूझि क्यों उद्दिम ठानै ॥२१॥
ज्यूं बकरा मारन को लीयो, ले छेरिन में डाढ़ो कियो ।
बहु निरलज कछू नहिं जानै, तिन सूं मिलि विषयादिक ठानै २२॥
अरु जैसें गधव अरु कुत्ता, तिरस्कार ते सहैं बहूता ।
सुख के हेतु बहुत आधीना, सदा हृदय दुरबल अति दीना ॥ २३
वह तो मूढ़ कछू नहिं जाणै, तातों विषयन उद्यम ठानै ।
एती नर जावै सब बाता, देख्यो जगत चल्यो सब जाता ॥ २४ ॥
प्रथम तो सुख आवै नाहीं, जो आवैं तो थिर न रहाहीं ।
अरु जो दिना चारि नहिं जावै, कालहु ते तो षान पावै । २५ ॥
काल निरंतर ग्रसतो जावै, एक दिना जम द्वार पठावै ।
तहां नरक हैं बहुत प्रकारा, जिनके दुःख को वार न पारा २६ ॥
आगे चौरासी भय भारे, विषयन कूं बहु दुख विस्तारे ।
या भव जल के दुख अपारा, कहूं कहां लौ वार न पारा ॥ २७ ॥

ऐसी सब विधि मानव जाने, तोहू क्यों आरम्भहि ठाने।
आप आप कूं दुख उपजावै, आप आप जम द्वार पठावै॥ २८।

सो यह सकल कृपा करि कहौ,मेरे उरको संसय दहौ।
यों कहि कै उधव जब रहे, तब हरिजी प्रति उत्तर कहे॥ २९॥

श्रीभगवान उवाच—

उधव यह आतम अविनासी, ग्यान सरूप प्रेम सुख रासी।
सो जब हीं या तनमें आवै, तब स्वाधीन विषै सुख पावै॥ ३०॥
बहुरयूं तिन हितु उदिम गहै, नहिं पावै तो दुष कूं लहै।
या विधि सुख दुख जब हीं जाने, तबहीं देह आपकरि माने ३१॥
ऐसे बढ़ै देह अहंकारा, तब हीं राजस को अधिकारा।
राजस हत जब हीं मन होई, तब अह हैं सुख जाने सोई॥ ३२॥
तब संकल्प विकल्पनि करै, निस दिन हृदे विषै सुख धरै।
तब जा सुख सुने अरु देखै, तब वलि ह्वै निज सुखकरि लेखै ३३
तब हृदयमें बाढ़ै काम, ग्यान विचार न राखै नाम।
तातें बहु राजस अधिकारा, राजसमें मन गहै विकारा॥ ३४॥
तब राजसको वेग प्रचंडा, ग्यानहिं मारि करै सत षंडा।
तातें ग्यान सुनै अरु जानै, अरु औरन सूं आप बखानै॥ ३५॥
पदि सो काम नहीं ठहरावै, ले करि पकरि करम कर वावै।
पर यद्पि या नरकी बुद्धि, [illegible]तें नहिं पावै सुधि॥ ३६॥
ताहू निसदिन दोष विचारै, उरतें सकल कामना टारै।
सावधान आलस नाहिं करै, क्रम क्रम मम चरननि चितधरै।३७।

आसन जीति करै दृढ़ि ज्ञान, निशिदिन उर राखै मम ध्यान ।
अरु मम शिष्य चार सनकादि, सकल तत्व ज्ञाननिकी आदि॥३८॥
तिन विचार करि जोगहि भाष्यौ, सोतौ यहै और सब नाष्यो ।
ज्योंही ज्यों मन दूजौ तजै, और ज्यूं ज्यूं मम चरननि भजै॥३९॥
याही तैं सब मिटै विकारा, याही तैं छूटै संसारा ।
याही तैं मम चरननि पावै, बहुरयूं जगत जनम नहीं पावै ॥४०॥
तातैं प्रेम योग यह राख्यौ, जातैं मेरे शिष्यन भाष्यौ ।
जब यह बानी बोले कृष्ण, तब उधव जन कीन्हो प्रश्न ॥ ४१ ॥

उधव उवाच—

हे प्रभु कौन समय जो रूप, तुम भाष्यो यह ध्यान अनूप ।
सनकादिकन कौन विधि लह्यौ, क्यों पूछ्यों कसें तुम कह्यौ॥४२॥
ज्ञान सहित सब मोहूं कहौ, मेरे उरको संशय दहौ ।
जब यह उधव कीन्हीं प्रश्न, तब करुणा मय बोले कृष्ण ॥४३॥

श्रीभगवानउवाच—

ब्रह्मपुत्र सनकादिक चारी, मनसातें उपजे ब्रह्मचारी ।
मही तें जिन गही निव्रति, मन वच क्रमसों तजी प्रव्रति ॥४४॥
प्रश्न करी तिन ब्रह्मा आगे, असौ भेद ज्यों सोवत जागे ।
अति सूक्षम जानी नहीं परे, उत्तर कहौं कनि उचरे ॥४५॥

सनकादिक उवाच—

हे प्रभु ब्रह्म ब्रह्म मय देवा, याकौ हमें बताओ भेवा ।
विषै-वासना चितही गह्यौ, चितु प्रीति करिकैं मिलि रह्यौ॥४६॥

दोऊ मिले आय मैं ऐसे, नीर रु क्षीर परस्पर जैसे।
भिन्न भये बिनु मुक्ति न होई, क्यों करि भिन्न होइये दोई ॥४७॥
यह बाणी ब्रह्माउर धारी, उत्तर देन कों बहुत बिचारी।
पवि तौहू उत्तर नहिं आयो, जातें करमन सूं मन लायो ॥४८॥
तब ब्रह्मा यह बुद्धि बिचारी, जाहि न कोई ताहि मुरारी।
तातें कियो चिन्तवन मेरो, हंस रूपमें प्रगट्यो नेरो ॥४९॥
हंस रूप तातें दिखरायो, जातैं यह आसय समुझायो।
कै जो हंस बृति कूं गहै, सोई याके भेदहिं लहै ॥५०॥
तब तिन मोहिं देखि सुख पायौ, ब्रम्हा मिलि उठि माथौ नायौ।
करि बिनती तब बचन बखानै, हे प्रभु तुमको हम नहिं जानै॥५१॥
तब तिन सूं मैं जो कछु कह्यौ, तिनके उरको संसय दह्यौ।
तेई बचन कहूं अब तोसूं, सावधान होय सुनियौ मोसूं ॥५२॥
तुमको हौ यो पूछों जबहीं, ग्यान कह्यौ उत्तर मैं तबहीं।
मनको संसौ तबहिं मिटायौ, विद्यमान प्रब्रह्म बतायौ ॥५३॥

हँस उवाच—

विप्र हौ प्रश्नकरी तुम ऐसी, करनी नहीं संभवै तैसी।
वस्तु विचार द्वैत नहीं कोई, तो याको उत्तर क्यौं होई ॥५४॥
अरु जो देह रूपऊ कहीये, तोहू कछु द्वैत नहीं लहिये।
पंचभूत निरमत तन सारे, हे न्यू लहां लगे बिस्तारे ॥५५॥
ताते सकल एक द्वै नाहीं, दूजौ कौन विचारौ माहीं।
पुरुष दृष्टि देखे तैं एका, प्रकृति दृष्टि हू नहीं अनेका ॥५६॥

तातें प्रश्नकारी तुम ऐसी, बहुतनि माहिं करीजै जैसी ।
अरु जो होहि तत्व विचारा तो नाहिं प्रकृति पुरुष विस्तारा ॥५७॥
जो कछु दीसै सुनिये कहिये, मन रु बुद्धि जहां लौ लहिये ।
सो सब मैं ही दूजो नाहीं, ऐसो ग्यान धरो उर माहीं ॥५८॥
नाम रूपतें सकल विकारा, आदि अन्त मधि नाहीं सारा ।
त्योंही आदि अन्त मधि माहीं, मैंही एक द्वैत कछु नाहीं ॥५९॥
द्वैत दृष्टिसों दुखको कारन, ब्रह्म दृष्टि निज सुख विस्तारण ।
लगे तरंगनसों दुख लहै, तब सुख जब जे तजि जल गहै ॥६०॥
ज्योंहीं द्वैत दृष्टिसों दुख, एक दृष्टि सोई निज सुख ।
अरु तुम प्रश्न किन्हुहिं करी, सो मैं अपने हृदय धरी ॥६१॥
विषयन माहिं चित्त मिलि रह्यो, अरु विषयन चितही दृढ़ गह्यो ।
पुत्र हुये है योंही सति, परिते आतम माहि आसति ॥६२॥
विषय चित यह दोऊ माया, आप ब्रह्म निरंजन राया ।
विषयन सूं जब चित्त लगावे, तबही चितहित तें सुख पावे॥६३॥
तब विषयनके ध्यानही धरै, तिनके हेत करम विस्तरैं ।
तातें एक मेक मिलि रहै, ऐसे जनम जनम दुख लहै ॥६४॥
तातें आतम मेरो अंसा, मेरी सरनि गहै तजि संसा ।
बाहिर हूतें विषय परिहरै, अरु चितसों चितवन नहिं करै॥६५॥
विषय रु चित मिथ्या करि जानै, तिनतें परैं आपकूं मानै ।
ब्रह्म सरुप एक अविनासी, ग्यान[illegible] चेतन सुख रासी ॥ ६६ ॥
मन अरु बुद्धिचित अहंकारा, इन्द्रिय विषय देह विस्तारा ।
ए भ्रम रुप सकल है माया, भूलिआत्मा आप बन्धाया ॥६७॥

ऐसे जानि सकल छिटकावै, आपहिं मोहिं एक करि ध्यावै।
जाग्रत सुपन सुखपति बखानें, ते आचरन बुद्धिके जानें ॥६८॥
तिनतें परे आतमा रूप, सदा एक रस प्रेम अनूप।
सांति कहूंते जाग्रनौ होई, राज स्वप्न लहै सब कोई ॥६९॥
सुषप्ति तामस गुणतें आवै, मन रु बुद्धि तिहूं कूं पावै।
एक रूप आत्मा तिहुं माहीं, साखीभूत लिये कछु नाहीं ॥ ७०॥
तातें तिहूं गुणनि तें न्यारौ, निजानन्दमय रूप हमारौ।
तातें थिर ह्वै करै विचारा, सहजही छूटै त्रिगुण पसारा ॥७१॥
देह विषै बांध्यौ अभिमाना, तातें देह बढ़यो यह नाना।
तातें निजानन्द बिसरायौ, काल असंख्य महा दुख पायौ ॥७२॥
ऐसे जानि तजै अभिमाना, कदे न करै सुखनको ध्याना।
तिहूं गुणनि ते करै विरक्ति, चौथे पद होवे आसक्ति ॥७३॥
तब सहजहि मो माहिं समावै, बहुरयूं देह कदे न पावै।
अरु जो सकल ग्रन्थ बिस्तरै, वेद धरम नाना विधि करै ॥७४॥
प्रव्रति माहिं बहुत विधि जागै, परि जो जानिद्वैत नहिं त्यागै।
सो नित सोवत जागत जानौ, ताको मैं दृष्टांत बखानौ ॥७५॥
बहुतक भांति करै बिवहारा, लेनदेन जलपान अहारा।
जैस सुपन करै नर कोई, सोवत सुपन लहै पुनि सोई ॥७६॥
बहुरयूं रैण भये तें सोवे, दिवस भये त्योंही उठि जोवै।
ऐसी विधि करि कैं दिन बीते, अगित सोवत सकल बदीते ॥७७॥
बहुरयूं वह ऐसी मन आनै, रातिहू दिनकी निद्रा भानै।
कदे न सोवै जागत रहै, सावधान आलस नहिं गहै ॥७८॥

ऐसें काज आपनौ करै, चौरादिक धन कूं नहि हरै ।
पुनि जब इहां जागि कर देषै, तब वह सकल ब्रिथा करि लेषै ७९॥
सोवत जागत सब व्यवहारा, जाके हित जानै संसारा ।
आपहि सब मिथ्या करि जानै, कबहूं भूलि सति नहिं मानै ॥८०॥
त्यूं ही वेद धरम आचरना, अरु ते सुख जिनके हित करना ।
ते सब स्वपनरूप विवहारा, पण्डित छांड़े सकल पसारा ॥८१॥
भ्रमतें धर्यो देह अभिमाना, तातैं वर्णाश्रम विधि नाना ।
तातें करैं बहुत विधि करमा, सुष निमित विस्तारै भरमा ॥८२॥
पुनि ते सकल ब्रिथा करि मानौ, स्वपन जागरन करि सब जानौ
जो देहादिक सकल पसारा, चेतन करि बरतावन हारा ॥८३॥
सुष दुःख भोग करै अरु जानै, आपहि सुखो दुखी करि मानै ।
बहुरयूं जबहीं स्वप्न कूं पावैं, बहु व्यवहारन सों मन लावै ॥८४॥
तबहूँ जानै सकल पसारा, आपा पर सुख दुख व्यवहारा ।
बहुरि सुषुप्ति माहिं सब जाई, मन वुद्धि चित अहङ्कार न काई८५॥
तब आत्मा निरन्तर रहै, जागें, बात सकल जो कहै ।
लियो दियो अरु आयो गयो, जहाँ लगें पीछें अनुभयो ॥८६॥
सो आत्मा एक रसि रहै, तिहूं कालकी वात न कहै ।
यों अविनासी आतम एका, दूजे माया भेद अनेका ॥ ८७॥
तीन अवस्था जे हैं मनके, मनमें आ भासे हैं तनके ।
तिनतिनके तीनूं गुण जें है, तीनूं [illegible] मायाके ते हैं ॥८८॥
ऐसी विधिनिश्चलसो जानै, निसद्विन हृदय विचारहिननै ।
सकल उपाधिनको आगारा, ग्यान षड़्ग काटै अहंकारा ॥८९॥

हृदय माहिं मैं ताको भजै, सावधान व्है कदे न तजै ।
यह सारो जग भ्रम करिजाने, मनको कृत मिथ्या करि मानै ॥९०॥
ज्यूं एकन कूं उपजत देखै, अरु विनसत एकन कूं पेखै ।
सोई रीति सकलकी जानै, स्वपन समान हृदै मैं मानै ॥९१॥
अगनि समेत जो लकरी होई, बालक लै करि फेरै सोई ।
और भांति है दीसै और, थिरपर चंचल लहै न ठौर ॥९२॥
त्यों यह जगत रहै थिरनिति, परि अति चंचल सकल अनिति ।
एक ब्रह्म मैं सब आभास्यौ, त्रिगुण पाइ बहुभेद प्रकास्यौ ॥९३॥
स्वप्न रूपगुण मैं ज्योंभोगी, यूं बहुभांति विचारैं जोगी ।
ताते जगतै इष्टिउतारै, सांच जानि हिरदै नहीं धारै ॥९४॥
त्रष्णा छांड़ै निश्चल रहै, मन वच क्रम कछु क्रम न गहै ।
ईहा रहत ब्रह्म रसभोगी, निज्ञानन्द मय होवै जोगी ॥९५॥
अैसो व्रथा जांणि सब त्यागै; निश्चल हृदै ब्रह्म अनुरागै ।
सो जौ रहै देह हू माहीं, तोहू फिरि भ्रम उपजै नाहीं ॥९६॥
जौ यह देह जाई कहं आवैं, वैठे उठे पोवै अरूखावै ।
औरैं कछू करै बिवहारा, परिसोसिधिन जानैं सारा ॥९७॥
निश्चल रहै निरञ्जन मांहीं, देहादिक कछु जानैं नाहीं ।
ज्यौं कोई तन बसत्रनि धरै, बहुसूं सुरा पान कहुं करै ॥९८॥
सोतन वस्त्रनि जानैं नांही, प्रथम बन्धेताते नहिं जांही ।
करम रहै या तनके जोलौं, सोहतइन्द्रियनि त्रषै तोलौं ॥९९॥
क्रमहि ताके तन कूं पोषै, खान पान सूं निति सन्तोषै ।
जोगी ब्रह्म माहिं थिर रहै, देहादिककी सुधि न लहै ॥१००॥

जैसे कुप न देखि परि जावै, ता कुपका कूं नहिं अनुरागै ।
तैसें मोह मिटातैं जाग्यौ, कछू न लिये ब्रह्म अनुरागे ॥१०१॥
देहथका ब्रह्महिं मिलि रह्यौ, भवको बीज सकल तिनहह्यौ ।
सो बहुरू ं भवमें नहिं आवै, ब्रह्ममिल्यों सो ब्रह्म समावै ॥१०२॥
तातें देह आदि विस्तारा, भ्रम करित ज्यों त्रगुणमय सारा ।
त्रिगुण तीत ब्रह्म कूं सेवैं, विषयनको कछु नांव न लेवैं ॥१०३॥
विषय चित दोनौ भ्रम जानो, ब्रह्म माहि यह दोनों भानौं ।
सकल अतीत आपकुं, देखौ-सबघट एक द्वैत नहिं लेखौ ॥१०४
ब्रह्मरु आप एक करिमानौ, द्वैत भाव कबहूं मतआनौ ।
निसदिन ब्रह्म विचारहि करै, एरि बलमेरो उरमेंधरैं ॥१०५॥
मन आधीन निरन्तर रहौ । या विधि जगत बीजलय दहौ ।
जातें बहुरि न भवमें आओ, ब्रह्मरूप ह्वै ब्रह्म समाओ ॥१०६ ॥
यह मैं तुमसों कह्यो विचारा, सांख्यत जोग सकलको सारा ।
मेरो मतो गुह्य अतिजानौ, बहुत भांति हिरदेमें आनौ ॥१०७॥
तुम्हरो हित मन माहिं विचार्यो, मैं हूं विष्णु हंस तनु धार्यो ।
मैंही हूं सकलको ईस, मोबिन औरै सकल अनीस ॥१०८॥
सांख्य रु सत्य तेज तपजोग, प्रिय संम दम श्री कीरति भोग ।
औरौं बसत जहां लौं सार, ते सम सत मेरे आधार ॥१०९॥
तातें जो मम शरणहिं आवै, उत्तम वस्तु सकल सो पावै ।
मो बिन बहु साधन हू गहै, तोहू कदे न सुख कुं लहै ॥११०॥
मैं निरगुण परि सब गुण सेवै, मैं निरपेखि सकल चित देवै ।
कछू न चहूं करूं उपकारा, सबको हित सबको आधारा ॥१११॥

सब उपजाऊं सब प्रति पालौं, सब पोखौं सब संकट टालौं।
ताते मोहि तजे दुख पावै, तबहीं सुखी सरण जब आवै ॥११२॥
सरणागत कूं वेगिउधारूं, आय मिलाऊं भव भय टारूं।
तातें सब तज मोकूं भजो, पावो मोहिं जगत भय तजो ॥११३॥
उधव मैं यहु ग्यान सुनायो, सनकादिकन प्रेम सुख पायो।
हृदय रह्यो सन्देह न काई, मोहि मिलनको सबविधि पाई ॥११४॥
बहुत भांति मम पूजा करी, बहुत भांति अस्तुति विस्तरी।
मेरो भजन हिरदे मैं धारयो, और सकल तत्काल निवारयो ११५॥
आप कृतारथ करि तिनि मान्यौ, द्वैतभाव तजि ब्रह्म पिछान्यौ।
तब तिनके अस्तुति कर तेही, ब्रह्मा के देखत आगे ही ॥११६॥
सबहिनके आनन्द बढ़ायौ, तब मैं अपणे धाम सिधायौ।
तातें उधव यह तुम जानो, अपनो भ्रम भागकरि मानो ॥११७॥
सनकादिकन समा तुम किये, तेई बचन तुम्हैं मैं दिये।
तातें यह ज्ञान उरधारो, ब्रह्म जानि सब द्वैत निवारो ॥११८॥
मम आधीन सदाही रहो, दूजी सकल वासना दहो।
ऐसे है निज पदको पैहो, जातें जगत कबहु नहिं ऐहो ॥११९॥
यह जब सुनि हरिजीकी बानी, उधव तत निश्चलकरि जानी ।

दोहा—

यह उधव तोसूं कह्यो, प्रेम ग्यान निज सार।
याकूं गहि निजपद लहै, छूटै सब संसार ॥१२०॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्रीभगवान
उद्धव सम्वाद हंसगीतायाः त्रियोदसो अध्याय॥१३॥

ऐसो सुनि हरिजी सों ग्यान, भक्त उधारन भूप सब आन ।
यह उद्धव दृढ़ करि उरधरी, पुनि कछु प्रश्न कृपणसों करी ।१।

उधव उवाच—

प्रभु दयाल दया निधि देवा, मोकूं बड़ौ बतायौ सेवा ।
भक्तिहि तें पाइय तुव चरणा, छूटै जगत जन्म अरु मरणा ॥२॥
पर अब एक प्रश्न कूं कहूं, मेरे या सन्देहहिं दहौ ।
जे बहुविधि श्रुति जगति जानै, ते तौ बहु साधननि बखानै॥३॥
मुक्त हेत बहु पन्थनि कहै, अरु तेऊ बहुते मिलि गहै ।
तातें तेऊ पन्थ असेष, भक्ति समाके कछू विशेष ॥४॥
जा जा पंथ तुम्हें प्रभु पैये, बहुरयूं भव सागर नहिं अइये ।
सो सो पंथ कृपा करि कहौ । मेरी सकल मूढ़ता दहौ॥५॥
तुम बिन यह दूजो नहिं कहै, ग्यान लहै सो तुमतें लहै ।
उधव ऐसी पूछी वाणी, तब उत्तरको कृष्ण बखानी ।।६॥

श्रीभगवान उवाच

उधव कलप समय जब भयो, तब यह तत्व लीन ह्वै गयो ।
पुनि मैं श्रष्ठि समय यह ग्याना, ब्रह्मा सों श्रुति तत्व बखाना ॥७॥
सोई श्रुति पुनि ब्रह्मा पढ़ायो, भृग्वादिक स्वायंभू मुनि पायौ ।
सात महा रिष भृगुजिन आई, अरु स्वायंभू मनु मन्वादि ॥८॥
तिन अष्टनि ते यह बिस्तारा, नानाविधिके भेद अपारा ।
सुरनर असुर सिध गंध्रवना, विद्याधर जक्षादिक सर्वा ।६॥
सप्त दीप नर बहुत प्रकारा, किन्नर किं पुरुषार्थ अपारा ।
सत रज तम तिनको उतपति, तातें बहुविधि भई प्रवृत्ति ॥१०॥

तिनते भये बहुतविधि भेद, तिनतें खेई जानै भेद।
वेद तत्व सो कितहू रह्यो, आप स्वभाव सम्मत न कह्यो ॥११॥
ज्यों २ तिनके भये स्वभाव, त्यों त्यों जान्यों श्रुतिको भाव।
त्यों ही त्यों आचरननि करै, त्यों त्यों आप सुमति विस्तरै ॥१२॥
परं पराजे तिनतें होवै, ते तिनके कृत सुमति जोवै।
तिनते आप करै बहुग्रन्थ, नाना भांति चलावै पन्थ ॥१३॥
ऐसी विधि उपजै पाखंडा, ग्यान अधरमहोय सतषंडा।
मम माया करि मोहित होवै, ताते तत्व पन्थ नहिं जोवै ॥१४॥
अपनी अपनी रुचि उनमाना, करै करम अरु भाषै ग्याना।
नानाविधि साधननि सुनावै, तिनतिनते कल्याण बतावै ॥१५॥
एकै बहुविधि धरम निभावै, तिनते भक्ति मुक्तिकों आवै।
एक कहै जलहिं विसतरिये, जाते सकल दुखनिते तरिये ॥१६॥
जाको जस या जगमें जोलूं, सो नर रहै सुरगमें तोलूं।
एकइ हाही काम बखानै, आगे सुरग नरक नहिं जानै ॥१७॥
जातन यहां करै भोगनेको, इहा ही छोड़ जाय ता तनको।
आगे सुख दुःख लहै न कोई, तातें भोग करौ सब कोई ॥१८॥
ऐसे ग्रन्थन कहि भरमावै, भरन रायकी खबर न पावै।
एक कहैं सम दम अरु सति; दूजे साधन सकल असति ॥१९॥
जोग ग्रन्थ बहु साखि बखानै, तिनतें मूढ़ मुक्त कूं मानै।
साम रु दाम दण्ड अरु भेद, इनको गहि एक पढ़ि वेद ॥२०॥
न्याय सहित सब उद्दिम करै, उत्तिमधर्म जानि उरधरै।
दान भोग उत्तम करि भाषै यह मुक्ति साधन करि राखै ॥२१॥

दकै जग्य दान तप गहै, ऐकै जम नियमनं सग्रहै ।
एकै तीरथ व्रत मन धरै कहूं कहां लौ बहुविधि करै ॥२२॥
तिनते स्वर्गादिक सुख पावौ, क्षीण भये इहाँ फिरि आवौ ।
बहुरयूं नीच योनि बहु लहै, नरकनमें कैई जुग रहै ॥२३॥
अरु जब रहै स्वरगहूं माहीं, तबहुं कबहुं सुख पावौ नाहीं ।
काम क्रोध निन्दा अपमाना, राग दोष अच्छा अभिमाना ॥२४॥
इत्यादिकन ग्रहौ निति रहै, तातें कौन भांति सुख लहै ।
भक्ति बिना विधिलोकहि जावौ, काल तहां हूतैं पुनि ढाहै ॥२५॥
तातें उधव भ्रम है सारा, सुख मम चरणनिके आधारा ।
जिन मेरे चरणनि चित धरयौ, साधन साधि सकल परिहर्यौ ॥२६॥
तिनको उधव जो सुख होई, सो सुख कहूं न पावै कोई ।
सो सुख कह्यौ सुन्यौ नहिं आवै, सो पै जानै जो पावै ॥२७॥
सो पावै सो मोकूं मागै, और सकल आसव कूं त्यागै ।
मम आधीन निरंतर रहै, दूजो सकल कामना दहै ॥२८॥
सकल वस्तुको कीन्हों त्याग, अंतह करण धरो वैराग ।
समदरसी नित सीतल चित, मम चिनवनि हृदय दृढ़ वित ॥२९॥
ताकूं दसों दसा सुख रूप, सो सुख जो अतिप्रेम अनूप ।
जो जन मेरे सुखकूं जानै, ताको मन कितहू नहिं मानै ॥३०॥
ताके सब आधीनहिं रहै, परि सो सो किन कछु न गहै ।
ब्रह्म लोककूं कहे न लेवै, इन्द्रलोक पलचित्त न देवै ॥३१॥
सकल भूराज नैन नहिं देखै, सप्त पताल सुखन त्रण लेखै ।
जोग सिद्ध अणमादिक अष्ट, जोगी जिनहित साधे कष्ट ॥३२॥

तिनहूं कूं कबहूं नहिं लेई, आपहु ते नित सेवे तेई।
मुक्ति निकट हो रहै सदाई, परि मेरी जन छुवै काई ॥३३॥
मैंही एक सदाप्रिय ताको, मम चरणनि चित रातो जाको।
ताहीतें मेरो प्रिय सोई, ता बिन और नहीं प्रिय कोई ॥३४॥
त्यों मेरे सुत विधि नहिं प्यारो, नहिं संकर जो रूप हमारो।
नहिं प्रिय त्यूं संकरषिण भाई, श्रीअरधंगी त्यों नहिं साई ॥३५॥
यों नहिं प्रिय मेरे मम देह, जैसो तुमसे प्रेम सनेह।
तुम सो भक्त महा प्रिय मेरे, ताके रहूं न अंतर तेरे ॥३६॥
इच्छा रह तरु सीतल हृदय, सबनिर बैर सबनि परि सरदै।
ब्रह्म दृष्टि देखे सब माहीं, ब्रह्म विचार तजै पल नाहीं ॥३७॥
मैं ताकूं प्रथमहिं यूं कह्यो, त्रिगुण परस बन्धन विस्तस्यो।
पै ताको ऐसो बल भारो, काटी माया सक्ति हमारी ॥३८॥
एते परि सब औगुण तज्यो, उलटि आय मम चरणन भज्यौ।
अरु सब सुख ताके बसि रहै, सो तजि मोहिं कछू नहिं गहै ॥३९॥
बहु तनके भवबन्धन दहै, नाव प्रगटि कर मेरो कहै।
तिन तिनकूं मम चरणनि ल्यावै, सदा सबनि ते आप छिपावै॥४०॥
अहंकार ममता नहिं आणै, मोहिं छोड़ दूजौ नहिं जाणै।
गुणातीत ताजणके पाछे, यह तन धरो फिरूं मैं आछे ॥४१॥
सातिक गुणधारी यह देह, करूं सुद्धता चरणन पेह।
नहिं किंचन तनहू नहिं रक्त, मोहीं सों नितही अनुरक्त ॥४२॥
सीतल हृदय विगत अभिमाना, कृपावंत सब एक समाना।
देहू काम चले नहिं बुद्धि, मोहिं लेइ पाई अति सुद्धि ॥४३॥

मुनिहूं तें लिखि निग्रह रहै, ते नर मेरे सुख कूं लहै ।
ता सुख कूं सुख जाने सोई, और सकल सरसै नहिं कोई ॥४४॥
निसप्रह जन निस्प्रह सुख पावै, सप्रहावंत के निकट न आवै ।
विषियनके बस मानव होई, इन्द्रिय जीत सकै नहिं सोई ॥४५॥
पर आधीन होय मम जबहीं, विषया कछू न सकै करि तबहीं ।
विषय सत्रु मैं सकल निवारूं, आप मिलाऊं सबमय टारूं ॥४६॥
पावक प्रगट कर्‌यौ ले अस्म, होय प्रचण्ड करै सब भस्म ।
ज्यो मम भक्ति प्रगट जो होई, जारैपर परहै नहिं कोई ॥४७॥
बहुरि पापके निकट न आवै, भक्ति प्रताप मोहिं सो पावै ।
साधै सिद्धयोग अष्टांग, बहुविधि जग्य होय जो सांग ॥४८॥
ज्ञानविचार सकल जो जानै, वेद पढ़ै देवै सब दानै ।
तपहिं करै इन्द्रिय मन बांधै, और सकल धरमनिकूं साधै ॥४९॥
तोहू मोहिं कहूं नहिं पावै, भक्ति मोहिं तत्काल मिटावै ।
इक भक्ति मोकूं बस करै, दूजे ते अति अंतर परै ॥५०॥
श्रद्धा सहित करै मम भक्ति, तासों मेरी अति आसक्ति ।
मैं ब्रह्मादि सकलको ईस, मो बिन और सकल अनीस ॥५१॥
सो मैं भक्तन के आधीन, ते मोसूं ज्यों जलसे मीन ।
जो चंडाल भक्तिमें आवै, ताही तन निरमलता पावै ॥५२॥
वर्णाश्रम सब वंदन करै, तापदरैणि सीसपर धरै ।
तीनो भवन सदा बसि ताके, मेरी भक्ति विराजे जाके ॥५३॥
विद्या पढ़ै धरम बहु करै, जीव दया बहुविधि विस्तरै ।
सतीवंत अरु दृढ़ संतोष, कबहूं कहूं धरै नहिं रोष ॥५४॥

कष्ट सहत पूरण तप साधै, मन इन्द्रिय देहादिक बांधै ।
तारत व्रतनि आदि दै जेते, सब आचरण करै ज़ो तेते ॥५५॥
परि जो मेरी भक्ति न होई, तो निरमल नहिं होवै कोई ।
बिन रोमांच द्रवै बिन चित्त, आनंदासुकला बिन नित ॥५६॥
जौलों साधुभक्ति नहिं कहै, भक्तिबिना उर सुद्ध न लहै ।
द्रवै प्रेम सों जाको चित, कवहूं रोवै मेरे हित ॥५७॥
कबहूं गदगद बानी होई, कबहूं ऊंचे गावै सोई ।
कबहूं मधुर मधुर स्वर गावै, कबहूं प्रेम मगन रहि जावै ॥५८॥
कबहूं निरति प्रेम वस करै, कबहूं हंसै गुणविस्तरै ।
लोक वेदकी लाज न जानै, त्युं उन्मत्त सकल, यूं ठानै ॥ ५६ ॥
जो ऐसो मेरो जन होई, त्रिभुवन सुध करत है सोई ।
सकल भुवनके पाप निवारै, सकल भुवनको सो जन तारै ॥६०॥
जैसे हेम मिलनता होई, बहु जल माहिं धोइये सोई ।
औरु जतन बहुत विधि कीजै, हेमहिं बहुत कसौटी दीजै ॥६१॥
परिवेहू विधि सुध न होई, कोटिक जतन करै जो कोई ।
सोई देह अगनि में दीजे, देकूंक तपत अति कीजे ॥६२॥
ताते कोई मल नहिं रहै, अपने सुध रूपकूं लहै ।
त्योंही जनत करै बहु कोई, परि आत्मा न निर्मल होई ॥६३॥
मेरी भक्ति माहिं जब भावे, तब सब क्रम मलिन छुटि जावै ।
निरमल होय लहै मम रूप, पावै मोहिं तजै भव कुप ॥ ६४ ॥
ज्यूं ज्यूं मेरी भक्तिहि करै, मेरे गुणनि हृदयमें धरै ।
श्रवण कीर्तन सुमिरण ठानै, ज्यूं ज्यूं और वासना भानै ॥६५॥

त्यों त्यों हृदय प्रकासै ग्यानै; देखै ब्रह्म लिटै सब आम।
द्वैत भाव कहूं नहिं रहै, निर्भय निजानन्द पद लहै ॥ ६६ ॥

नैननि माहिं रोग ज्यों होई, तातै कछू न देखै सोई।
पुनि ज्यों ज्यों औषधिहि लगावै,त्यों त्यों दृष्टि होत नित आवै॥

त्यूं त्यूं सकल वस्तुकूं देषै, आपहि प्रेम सुखी करि लेषै।
तातैं रूप दृढ़ अंजन, जाते देषै देव निरंजन ॥ ६८ ॥

जो संसार सुषनिको ध्यावै, सो संसार माहिं बहि जावै।
अरु जो ध्यावै मेरे चरणा, पावै मोहिं मिटै भव मरणा ॥ ६९ ॥

तातें सब लक्षन भुव जानौ, सुपन समान द्वैत सब मानौ।
मन क्रम वचन सकलकूं त्यागो,निसदिन मम चरणनि अनुरागो॥

जे या भवहिं चहै छिटकायो, अरु चाहै मम चरणनि आयो।
ते तिनकी संगति परिहरै, जे नर जुवति संगति करै ॥७१॥

जुवति सुषनि सुनै नहिं श्रवना, नैनन देषे करै न गवना।
कबहूं भूलि हृदय नहिं आनै, मनक्रम बचन निरंतर भानै ॥७२॥

ऐसो बंधन कहूं नहिं होई, जुवतिन संग करै जो कोई।
ज्यूं जोषित अरु जोषित संगी, बंधन करै हीत प्रसंगी ॥ ७३ ॥

तातें तिनकी संगति तजै, सावधान मम चरणनि भजै।
निर्भय ठौर करै अस्थान, मो बिन संग तजै सब आन ॥७४॥

मेरो ध्यान निरंतर करै, प्रेम सहित हिरदै मैं धरै।
कृष्ण बचन सुनि हिरदै राषै, उधव और प्रश्नको भाषै ॥ ७५ ॥

उधव उवाच—

हे प्रभु तुमहिं कौन विधि ध्यावे, कौन रूपमें चित्त लगावे ।
मैं तो मुक्त सेई तुव चरणा, परि जे चहे मिटायो मरणा ॥७६॥
कृपासिन्धु तुम करुणा करौ, ध्यान जोग वाणी विस्तरौ ।
सुनि उधव निज जनकी वाणी, तब श्रीहरिजी आप बखाणी॥७७॥

भगवानुवाच

मेरो रूप जोग तू मान, जोगबिना नहिं पावे ग्यान ।
बल साधनके साधन रूप, जीव ब्रह्मको होय स्वरूप ॥७८॥
उधव तोकूं ध्यान सुनाऊं, जोग सहित सब अंग बताऊं ।
जोग सहित जो ध्यानहिं करै, तो मन वेगि रजहिं परिहरै ॥७९॥
सब आसन महँ स्थित होई, जंघन परि राखै कर दोई ।
देह समान चले नहिं डोले, नासा दृष्टि कछू नहिं बोले ॥८०॥
इडापूरि कुंभक थिरधारे, पुनि रेचक पिंगुला निसारै ।
बहुरू पूरि पिंगला द्वारा, इडा निसारे बारम्बारा ॥८२॥
इन्द्रिय अरथ सकल परिहरै, मेरो हेत हृदयमें धरै ।
उधव इ विधि जोग कहावे,ता भेदहिं सतगुरुतें पावे ॥८२॥
मंत्र सहित सो नाम सग्रम, मंत्रबिना सो कहिये अग्रम ।
ताते जोग सग्रमसे नाम, सो उत्तम है प्राणायाम ॥८३॥
पूरे राखै रेचक करे, ॐकार मंत्रहिं उर धरे ।
घंटा नाद तूलि उर ध्यावे, तासों मिलि करि प्राण चलावै॥८४॥

यों त्रिकाल अभ्यासै कोई, प्राण मास हो में थिर होई।
बहुरयूं हृदय कँवलहूं ध्यावै, अष्ट पांखुरीको बिगसावै ॥८५॥
ऊंधे मुखसों ऊंधे करै, ताके मध्य सूरजहूं धरै।
सूरजमें पूरण ससि आनै, ससिमें अनल तेज सब मानै ॥८६॥
अनल मध्य मम रूपहिं ध्यावे, प्रेम प्रीतसूं मनहि लगावै।
अंग समान चतुरभुज रूप, अति सीतल सुखदान अनूप ॥८७॥
नूतन सजल मेघ तन स्याम, तड़ित तूलि अंबर सुचिधाम।
मंद हास सोभा निधि आनन, मकराकृत कुंडल सुभ कानन ८८
कंठ कौस्तभ मणि बनमाला, उर भृगुलता लक्षमी बिसाला।
शंष चक्र गदा अरु पद्म, हस्त चारिहू सोभा सद्म ॥८९॥
हेम मुकट हीरा मणि जरयौ, अति सोभायमान सिर धरयौ।
भाल तिलक अंबुज बर नैना, भक्त प्रसाद सुधाको ऐना ॥९०॥
कर कंकण अंगद मुद्रिका, पग नूपुर कटिमें क्षुद्रिका।
अंकुश बज्र ध्वजा अरु बिन्द, चिह्नित चरण हरण दुख द्वन्द ॥९१॥
नख मणि गण अति प्रभा प्रकासै, उर अज्ञान अंध तम नासै।
और सकल अंगनि बहु भूषण, जिनके ध्यान मिटै सब दूषण॥९२॥
बयसि किसोर प्रेम सुकुमार, नष सब ध्यावै बारंबार।
चरणनि तैं प्रति अङ्गहि ध्यावै, ऐक गहै ऐकहिं छिटकावै ॥९३॥
यूं ले नषतै सपों प्रजंत, निस दिन हिरदैय ध्यावै संत।
और बासना सब परिहरे, मेरो रूप अडिग मन धरै ॥९४॥
या बिधि जब मन निहचल होई, तब फिर अंगन ध्यावै कोई।
अति सुन्दर मुष मैं मन धार, और सकल चितवन्ध निवारै ॥९५॥

या विधि मन अपने बसि होई, तब विराट में धारे सोई ।
सकल विराट रूप मम जानै, मोतैं भिनि कछू नहीं मानै ॥९६॥
यों विराट मम रूपहिं जानै, निश्चल भयौ भेदकूं भानै ।
तब ताहू तैं मनहिं निवारै, सुध निरंजन ब्रह्म विचारै ॥९७॥
ब्रह्म विचार निरंतर करै, सब आकार दूरि परहरै ।
आत्म ब्रह्म एक करि देषै, चेतन रूप अषंडित लेषै ॥९८॥
निजानन्द निश्चल निरधार, सत्ति सरूप वार नहिं पार ।
ऐक घ'ज्ञानमां आपहि आप, सुष दुष रहत पुनि नहीं पाप ॥९९॥
काल न कम जीव नहीं माया, आप ही आप निरंजन राया ।
जैसे अगनि अषंडित होई, तातैं उठै पतंगा सोई ॥१००॥
बहुरि अगनिही माहिं समावै, तबहीं पतंगा नाम गमावै ।
ऐसे आत्म ब्रह्म विचारै, ऐक जाणिकर द्वैत निवारै ॥१०१॥
ऐसी भांति विचारहि करतै, निसदिन ब्रह्म मांहि मन धरतै ।
त्रिगुणाकार सकल भ्रम भागै, होइ ब्रह्म सोवतसो जागै ॥१०२॥
है करि ब्रह्म ब्रह्म मिलि जावै, जहां हूं तैं बहुसौं नहीं आवै ।
ऐसी विधि भव दुषहि दहै, मेरो निजानंद पद लहै ॥१०३॥

दोहा

यह पैंडो तोसूं कह्यौ, जाकरि हरि पुरि जाइ ।
परियामैं बहु विघन हैं, ते [illegible] समझाइ ॥१०४॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कंधे श्रीभागवतउधव संवादे भाषायां चतुरदसोऽध्यायः ॥१४॥

श्री भगवानुवाच—

चौपाई—

उधव जोग पंथ समझाऊं, तामैं बहुते विघन बताऊं ।
जो इंद्रिय मन प्राणहि बांधै, सावधान ह्वै जोगहि साधै ॥१॥
मो मैं धरै आपणौं चित, ताकूं सिंधि विघन है नित ।
जो तिन सिधिन कूं परिहरै, सो मम चरणनि कूं अनुसरै ॥२॥
तिनहूं कबहूं रहै लुभाई, तो श्रम सकल अथाई जाई ।
ऐसै कृष्ण बचन उर धारि, उधव कीन्हौं प्रश्न विचारि ॥३॥

उधव उवाच—

दै प्रकरण धारणादेव, अरु सिधिनकौ कै विधि भेव ।
तिनके नाम कृपा करि कहौ, जोगिनके विघनकूं दहौ ॥४॥
तुव आधीन सिधि है सकल, तुम्हरी कृपा होइ जब अकल ।
उधव प्रश्न हिरदैमैं धारी, तब बोलै गोपाल मुरारी ॥५॥

श्री भगवानुवाच—

उधव सिधि अठारहि कहीऐ, मम धारणां करै जे लहीऐ ।
तिनमैं अष्ट सिद्धि प्रधान, दस मध्यम तें करूं बषान ॥६॥
जातैं देह रूप अणु होई, कितहूं नहीं आवरण सोई ।
अणिमा नाम सिद्धि यह जानौ, महा मोहनी माया मानौ ॥७॥
जो तन करै महा बिसतारा, जहां तहां कछू वार न पारा ।
महिमा नाम सिद्धिसो कहीऐ, कबहूं भूलि न ताकूं गहीऐं ॥८॥

जो या देहहि अति लघु करै, मुष्टि न आवै दृष्टि न परै।
सो यह लघुमा सिद्धि कहावै, मम जन थाकै निकट न आवै ॥९॥
जे जे इंद्रिय भोगनि करै, जहां तहां विषयन बिसतरै।
तिन सब भोगन जाकरि लहीऐ, प्रापति नाम सिधिसो कहीऐ१०
ऐक ठौर हूं बैठो रहै, देषै सुणै सकलकी कहै।
ताहि अगोचर रहै न काई, सो प्रकाशक सिधि कहाई ॥११॥
इंद्रिय देह बुधि मन प्रान, तिहूं लोक तिनकौ असथान।
तिनकूं ज्यूं प्रेरै त्यूं जानै, ताहि ईसता सिद्धि बषानै ॥१२॥
विषय सुषनकूं कदे न गहै, जातै अति आनंदित रहै।
नाम अवसि ता सिधि कहावै,मेरो भक्त निकटि नहीं जावै ॥१३॥
जो जो इछा मनमें ल्यावै, सो सो सकल पलकमैं आवै।
बसिता नाम सिधि है सोई, मेरो जन आदरै न कोई ॥१४॥
अष्ट सिद्ध यह अति प्रधान, इन तै मध्यम भाषौ आन।
तिनके गुण व्यापै नहीं कोई, नाम अनुरमि कहीऐ सोई ॥१५॥
दूरि श्रवण सुनै सब बैना, दूरि दरस देखै सब नैना।
मनके वेग मनौ जब ध्यावै, काम रूप बहु रूप बनावै ॥१६॥
परके तन मैं करै प्रवेसा, सिधि छठी प्रकार प्रवेसा।
निज इछा तैं तजै शरीर, सो स्वछन्द मृत्यु है बीर ॥१७॥
मिले अप्सरनि विचरै देवा, देषै तिनहि लहै सब भेवा।
सो सुरक्रीड़ा दरसण कहीऐ, मिथ्या फल है कदे न गहीऐ ॥१८॥
जो सकल पकरै सो होई, जथा संकल्प कहीए सोई।
जहां गयो चाहै तहां जावै, अप्रनिह ता गति सिद्धि कहावै ॥१९॥

ऐ दस मिलि अष्टादस कहीये, औरौ पवतु छिनहीं गहीऐ ।
वर्तमान अरु भूत भविष्य, सब कछु जानै लक्ष अलक्ष ॥२०॥
यह है सिद्धि त्रिकाल हि ज्ञान, आगे सिद्धि बषानूं आन ।
सीत उसन आदिके जे द्वन्द, तिन्हहि निवारै सो अद्वंद ॥२१॥
विष अरु अग्नि सूरजल थंभा, जाते होवै दूसौ अचंभा ।
प्रतिष्ट भयौ सो सिद्धि कहावे, ताके हरिजन निकट न आवे॥२२॥
है अष्टादस अरु यह पंच, मिलि तेईस सकल प्रपंच ।
ऐ मैं मूल रूप उचारी, साषा बहुत नहीं बिसतारी ॥२३॥
मम धारणा करे ते आवे; जोगिनि कू बहु विधि दिखलावै ।
जो तिनतैं विचलै नहीं कबहीं, तो मम चरणनि पाव तबहीं ॥२४॥
जा धारणा हुतैं जो आवे, जैसे जोगी कूं दिखलावै ।
सो सब लक्षन तोकूं कहूं, जोग पंथके बिघ नहिं दहूं ॥२५॥
सत गुण रूप जो कछु बिसतारा, सो नाना बिधि रूप हमारा ।
जाही ताहि मांहि मन लावे, तैसी २ सिधि ही पावै ॥२६॥
सब्द सपरस रूप रस गंध, पंच भूत रा सुष्यम बंध ।
तिनमैं जा जामैं मन लावे, ता ताके रूपहि मिलि जावै ॥२७॥
महतत्व मैं मन हीं लगावे, पंच भूत साषा करि ध्यावै ।
जा जा साषा मैं मन धारै, ताही तासम देह वंधारै ॥२८॥
पञ्चभूतके जे प्रमान, तिनमैं जोगी धारै ध्यान ।
ताता समल सुदेहहि करै, काहू सूं कहूं गह्यौ न परै ॥२९॥
सांतिक अहंकार मन धारै, ताकूं मेरौ रूप बिचारै ।
तब जे इंद्रिय भोग न करै, बहुति भांति विषयन बिसतरै ॥३०॥

है ते सुख जे जोगी पावै, सो वह प्राप्ति सिधि कहावै।
लेरो सुभ रूप मन आने, ताते त्रिभुवनकी गति जाने ॥३१॥
ज्यूं कर दीवा लै घर देषे, यों त्रिभवन आचरण निपेषै।
मेरे काल रूप मन धारै, सब व्यापक सब ईस बिचारै ॥३२॥
तातैं सिधिह सत्ता पावै, त्रिभवन जाणै त्यूं वरतावै।
जाहीं सुं जो ही करवावै, ताकै अंतरि त्यूं उपजावै ॥३३॥
आदि पुरुष जो मेरो रूप, तामैं धारै चित्त अनूप।
तातैं सिधि अवसिता पावै, विषयन बिनि आनंद वढ़ावै ॥३४॥
निर्गुण ब्रह्म मांहि मन धारै, सब करता सब ईस विचारै।
तातैं वसिता सिधिहि लहै, सोई सो पावै सो चहै ॥३५॥
शुध सत्वमय मोहि विचारै, तामैं जोगी मनकू धारै।
तातैं सुख आपहु होई, पर उर मीनहीं व्यापे कोई ॥३६॥
गगनाधार प्राण मन धारै, सब्द रूप उर माहि बिचारै।
तब जहां लग पवन आकास, सुनै जहांलौं बचन निवास ॥३७॥
नैननिमैं सूरजकूं धारै, अरु सूरज मैं नैन विचारै।
अपरिछिन मोहीं कूं लेषै, तब सो तिहुं लोक कू देषै ॥३८॥
पवन सहित मो मैं मन धारै, जहां तहां मम रूप विचारै।
ऐसै मनकूं जहां चलावै, मनके बेगि तहाई जावै ॥३९॥
सारे मेरे रूप विचारै, तिन ही तिनमैं मनकूं धारै।
चाहै अंयो रूप तब जोई, वार न लागै होवै सोई ॥४०॥
कस्यौ प्रवेसहि चाहै जामै, ध्यांन आपनो आनै तामै।
तब तातन मैं जावै ऐसे, भ्रंगु फूल तैं फूलहि जैसे ॥४१॥

मूलद्वार पवबंध लगाव, प्राण चलाइ सीस मैं ल्यावै।
ब्रह्मरंध्र व्है गौनहि करै, जो मन होइ तहां अनुसरै ॥४२॥
सुरग लोक सुर बिनता ध्यावै, मेरौ रूप जानि मन ल्यावै।
तपसे सहित बिमानहि आवै, ता जोगी कूं सुप उपजावै ॥४३॥
जो जो वसत हिरदै मैं धारे, ताताकौ प्रभु मोहिं बिचारै।
सोई सो पावै ततकाल, जबही चाहै काल अकाल ॥४४॥
सकल नयंता सबकौ ईस, निति स्वाधीन सकलके सीस।
जोगी ऐसो मोकूं ध्यावै, ताकी आन न कोई मिटावै ॥४५॥
ग्यान रुप सब अंतरजामी, ध्यावै मोहि सकलकौ स्वामी।
अपनी जानै जनम मरणकी, ग्यान त्रिकाल रु सबके मनकी ॥४६॥
प्रकृति गुणन तैं न्यारौ जानै, अरु तिनकौ स्वामी करि मानै।
ध्यावै मोहि सदा अद्वन्द, तब कोई नहीं व्यापै द्वंद ॥४७॥
सब मैं व्यापक सकल अतीत, लिपै न सूर अग्नि अलसीत।
ऐसौ मोकूं ध्यावै सोई, ऐसे लष्यण पावै सोई ॥४८॥
जो मेरे औतारनि ध्यावै, आयुध छत्र चवर मन ल्यावै।
ताकूं कहूं न पराजय होई, सबहिन मोंहि विराजै सोई ॥४९॥
यौं धारणा करै मम जोई, सिधिन पावै जोगी सोई।
परि यह अंतरा इहै सारे, मेरे भक्तन दूरि निवारे ॥५०॥
मोतें यह न तैं मैं नाहीं, तातैं ममजन निकटि न जाहीं।
मोहि न लहै इन्हही जो लैवे, [illegible] तिनकूं यह सेवे ॥५१॥
मोही तैं उतपति सबहिनकी, मैं प्रतिपाल करूं तिन तिनकी।
मम आधीन सिधि अरु जोग, सांष्यग्यान धरम धन भोग ॥५२॥

सबको जनक सकलको स्वामी, मैं सबहिनको अंतरजामी ।
सब मैं बाहिर भीतरि ऐक, मोमैं बरत सकल अनेक ॥५३॥
पंच भूत सब भूतनि माहीं, बाहिर भीतरि दूजा नाहीं ।
त्यूं सब मैं ही नाहीं आन, आन दृष्टि सोही अग्यान ॥५४॥
तातै द्वैत भाव नहीं आनै, मेरौ रूप सकल करि जानै ।
साधन विधि सकल भ्रम तजै, मेरे चरण निरंतर भजै ॥५५॥
मम प्रसाद मम चरणनि आवै, अति अपार भव दुष मिटावै ।
यह मैं तोसूं भाष्यौ ग्यान, यातै और सकल अग्यान ॥५६॥

दोहा—

ऐक ब्रह्म करि देषनौ, यह सुनिहु कर ग्यान ।
पूछी बिष्णु विभूति तब, उधव प्रेम सुजान ॥५७॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादश स्कंधे श्री भगवत उधव संवादे भाषायां ॥ पंचदसोध्यायं ॥१५॥

उधव उवाच—

चौपाई—

तुम हो पार ब्रह्म अविनाशी, चितानंद बिग्यान प्रकासी ।
आदि न अंति मधि नहीं जाको, कोई भेद लहै नहीं ताको ॥१॥
तुमही सकल जगत उपजावौ, तुम प्रतिपालौ तुम बिनसावै ।
तुम सब बाहिर अरु सब मांही, अलिप्त लिपैकहुं नाहीं ।२।
जहां तहां तुमही हो ऐक, यह सब भ्रम जो दृष्टि अनेक ।
हे प्रभु यह जग अति बिसतारा, ऊंच नीच विविधि पुकारा ॥३॥

अरु या जीव सक्तिकरि मान्यो, विषय न सूं बहु भांति बंधान्यो
याके ऐक दृष्टि क्यूं आवै, कैसे सकल ब्रह्म करि ध्यावै ॥४॥
ग्यानवंत तुम जान है जेते, ब्रह्म दृष्टि देषत है तेते।
तातैं तुम अब करुणा करो, निज विभूति मोसूं बिसतरौ ॥५॥
तिन मैं देषि सबनि मैं देषूं, तब अद्वैत ब्रह्म करि लेषूं।
सुनि उधवके उत्तम बैन, बोले हरिजी करुणा अैन ॥६॥

श्रीभगवानुवाच—

उधव प्रश्न भली तुम कीन्हीं, जातैं परै प्रम गति चीन्हीं।
यह प्रश्न अरजुन तब करी, तासूं मैं जा बिधि उचरी ॥७॥
ताही विधि अब तोहि सुनाऊं, अैसे ब्रह्म दृष्टि उपजाऊं।
कौरव अरु पांडव कुरषेत, जबही जुरे भारत कै हेत ॥८॥
तब अरजुन कौरव सब देषे, सबबंधव अपनै करि लेषे।
इन सबहिन कूं जो मैं मारूं, आपुही आपन रकते डारूं ॥९॥
अैसी विधि आपयो अहंकारा, आपहिं मान्यो मारनहारा।
तब मैं ताहि ग्यान समझायो, ताको सब अग्यान मिटायो ॥१०॥
प्रश्न करी अरजुन तब अैसी, तुम मोसूं कीन्हीं है जैसी।
ताते उत्तर कूं उचरू, या बिधि ब्रह्म दृष्टि कूं करूं ॥११॥
उधव मैं सबहिनकौ स्वामी, अरु सबहिनको अंतरजामी।
आपहि तै सबको उपजाऊं, [illegible]षूं सब कूं बरताऊं ॥१२॥
सकल रहै मेरे आधीन, मोही मैं सब होवै लीन।
तातैं सब मैं दूजा नाहीं, यूं बिभूति जानौ मन मांही ॥१३॥

प्रतितोसूं बसेष सौ कहूं, तेरी द्वैत दृष्टि कूं दहूं।
सब रक्षकन मांहि मैं रक्षक, तिन मैं काल सकल जे भक्षक ॥१४॥
सो मैं प्रकति त्रिगुणकी आदि, पंच भूत मैं मै भूतादि।
सूत्र सकल बंधन मैं जानौ, बड़ेनु मांहि महत लहि मानौ ॥१५॥
सब सुष्य मनि मांहि जिय देषौ, सब दुर जयनि मांहि मन लेषौ।
वेद जग्यनिमो ब्रह्मा जानौ, ऊंकार मंत्रनि मैं मानौ ॥१६॥
छंदन मैं गाइत्री छंद, मैं अकार अक्षरके ब्रन्द।
सब देवनिके मध्य पुरंदर, सकल बसुनि मैं मैं बसंदर ॥१७॥
नील कंठ ऐकादस हर मैं, त्रिष्णु नाम द्वादस दिन करमैं।
तिन मैं भ्रगु जे सप्त महारिष, तिन मैं मनुजे सब राजरिष ॥१८॥
देवरिषनिमैं नारद जानौ, कामधेनु धेननि मैं मानौ।
सिधनि मैं मैं कपिल सरूप, पक्षन माहि गरुण मम रूप ॥१९॥
प्रजापतिन मैं मैं हूं दछ, तिनमैं मगर जहां लौ मछ।
बादन मैं अध्यातम बाद, सब असुरनि मैं हूं प्रह्लाद ॥२०॥
तप्ति प्रकासिक माहिं दनेस, जष्य अष्यगण मांहि धनेस।
तिन मैं सोम सकल जे उड़गन, सब धातन मैं मैं हूं कंचन ॥२१॥
गजन मांहि मैं गज अैरावत, मैं अनंग जेश्रष्टि उपावत।
जहां बरुण जे सब जल जंत, नागनि मैं मम रूप अनत ॥२२॥
नरन मांहि मम रूप नरेस, सरपन मैं बासिक सरपेस।
उच्चैश्रवा हयनि मैं मानौ, दंड [illegible] तिन मैं जम जानौ ॥२३॥
सकल भ्रगनि मैं मैं म्रगराज, सरितनि मैं गंगा सिरताज।
सब आश्रमनि मांहि सन्यास, ब्रणनि मांहि विप्र मम बास ॥२४॥

सकल सरनि मैं रूप समुद्र, सकल धनुषधारिनमें रुद्र ।
मैं हूं धनुष आयुधनिमांही, परम निवास मेरुतैं नाहीं ॥२५॥
जे अति गहन हिमालय तिनमैं, मैं पीपल सब बनसपतिनमैं ।
मैं पुरोहितन मांहि वसिष्ट,तहां ब्रह्मसपति जे स्रिष्ट ॥२६॥
सेनापतिन मांहि सेनानी, धरम ब्रतका सौ ब्रह्म जानी ।
सकल ओषध न मैं जब जानौ, पितरन मांहि अरजुन मानौ ॥२७॥
ब्रह्म जग्य सब जग्यन मांहीं, ब्रत अद्रोह समांको नांही ।
वायु अग्नि जल सूरज बानी, अरु मन यह षट सोधक जानी ॥२८॥
चतुर देह आतमा बिचार, ब्रह्म बिचारिन मैं सनत कुमार ।
स्त्रीनि मैं सतरूपा रानी, पुरुषनि मैं स्वायंभू जानी ॥२९॥
सावधान तिनमैं संवतसर, अभय ठौर तिन मैं डर अंतर ।
मैं हूं धरम अभयको दान, गुह्य नहिं प्रिय मौन समान ॥३०॥
त्रिया पुरुष संजोगी जेते, ब्रह्मा हूं तैं उरै सब तेते ।
सकल बानरनमैं मैं हनुमत, रुतन मांहि ममरूप बसन्त ॥३१॥
मांगिसर मासनि मैं जानौ, नषत्रनि मैं अभिजत मानौ ।
देवल अस्थित रहित जे दर, कमल कोस सबहिंन मैं सुंदर ॥३२॥
युगन माहिं सतयुगसे नामा, वेदन माहिं वेद मैं शामा ।
वेसन माहिं व्यास द्वैपायन, तिनमैं तुमजे विष्णु परायण॥३३॥
कविन माहिं कवि सुक्रहिं जानो, शक्तिवतं मम यह तन मानो ।
विद्याधर तिन माहिं सुदरसन, [illegible]ग तिन मैं जे मनिगन ॥३४॥
सब त्रिण जातिनमैं कुस मानौ, होम वस्तुमैं गोघृत जानौ ।
तिनमैं धन जो सब व्यवसाय, जय मारिग सब तिनमैं न्याय ॥३५॥

अंग समाधि जोग अंगनिमें, मैं हूं क्षमा क्षमावंतनमें।
धीरजमें जे धीरजवंत, मैं बल तिनमें जे बलवंत ॥३६॥
छलिन माहिं मैं छलि हौं जूपा, मेरे हेत करम मम रूपा।
वासुदेव संकर्षन वीर, प्रद्युम्न और अनुरुद्ध सधीर ॥३७॥
नारायण हयग्रीव महीधर, नर हरि अरु जमदग्निपुत्रवर।
व्याह रचन नव पूजा जानौ, वासुदेव तहं मोकूं मानौ ॥३८॥
तिनमें थिरता जे सब भूधर, पूरवि चिन्तन नाममें अपसर।
मैं हूं विस्वा वसु गन्धर्वा, धरणी माहिं गंधमय सरबा ॥३९॥
रस जल माहिं शब्द आकाशा, रवि ससि तारन माहिं प्रकाशा।
तेजस्विन महं पावक जानौ। विप्रभक्त तिनमें बलि मानौ ॥४०॥
बीरनमें अरजुन बहुसार। मैं सब उत्पतिस्थित संहार।
इन्द्रिय मनु बुध्यादिक जेते। मेरी शक्ति प्रबरतैं तेते ॥ ४१ ॥
सबहिन ह्वै सब अरथनिगहूं, ते जड़ तिनमें चेतन रहूं।
सब्द स्परस रूप रस गन्ध, तिनमें पंचभूत सम्बन्ध ॥४२॥
इन्द्रिय मन महँ तत अहंकार, त्रिगुण सहित ये प्रकृति विकार।
प्रकृति पुरुष जहां कछु जेतौ, मेरो रूप सकल है तेतौ ॥४३॥
मो बिन कहू कछू है नाहीं, मैंही प्रगटि रह्यो सब माहीं।
जे परिणाम गिणू मैं सबहीं। तो तेहिं पारन पाऊं तबहीं ॥४४॥
परि मम निरमित जे ब्रह्मण्ड, तिनको गिनतं परे नहिं खंड।
ताते कहूं विभूति कहांलौ, कछु मेरो रूप जहां लौ ॥४५॥
अरु अब युक्ति विभूतिहि कहूं, द्वैत दृष्टि ऐसी विधि दहूं।
लाज तेज क्षमा अरु दान, सुन्दरता ऐश्वर्य ग्यान ॥४६॥

जहं सौगन्धक ओरज जहां, तब विभूति जानौ तहं तहां ।
यह विभूति तातें कछु नाहीं, अति अपार कहिवेकूं नाहीं ।४७।
मन थिर करण काज यह जानौ, यह बखान कहे मति मानौ ।
इन्द्रिय बुद्धि देह मन प्रान, निश्चल करि देखौ भगवान ॥४८॥
जगत रूप आकार उतारौ, चेतन मेरो रूप विचारौ ।
एक अखंडित जहँ तहँ सोई, आया परहू जानहि कोई । ४९
ऐसो जानि ब्रह्मको पावै, ब्रह्महि पाय जगत नहिं आवै ।
अरु तन मन इन्द्रिय बुधि प्राण, थिर करि जिन न धर्यौ मम ध्यान५०
ताके बहुत भांति आचरना, जप तप दान व्रतादिक करना ।
ज्यौं काचौ कलस भर्यो जल जैसै, पल पल श्रवै जावे सब तैसै॥५१॥
तातें वचन काय मन प्रान, सबकौ बधि करै मम ध्यान ।
सोहि ब्रह्म मो मांहि समावै, तब संसार मांहि नहीं आवै॥५२॥

दोहा—

ज्यों उधव तोसूं कह्यौ, यह बिभूति कौ ग्यान ।
त्योंही सुक्ष्मथल सब, देषौ श्री भगवान ॥५३॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्री भगवत उद्धव सम्बाद भाषायां बिभूति बरणननाम षोडसोध्यायः ॥१६॥

श्रीशुकोवाच—

चौपाई—

दासनमें उधव निज दास, जाके हिरदे ज्ञान प्रकास।
तिन जीवनको हित मन धरी, ताते प्रश्न कृष्ण सूं करी ॥१॥

उधव उवाच—

प्रभु तुम कल्प आदि उचारयौ, भक्ति निमत धरम बिसतार्‌यौ।
बरणाश्रम आदिक नर जेते, तिन धरमनि सूं लागे तेते ॥२॥
तिनमें कोई भक्तिहिं पावे, कोई करम सिंधु बह जावे।
ताते तुम करुणामय देवा, भाषौ नर धरमनिको भेवा ॥३॥
धरम करत ज्यों उपजै भक्ति, तुम्हरे चरन बढ़ै अनुरक्ति।
छूटे काल जाल भवरूप, लहे तुम्हारो ब्रह्म सरूप ॥४॥
यद्यपि पुनि विधि सो बिसतारौ, जब प्रभु हंसरूप तुम धार्‌यौ।
परि बहु काल कहें ते भयौ, ताते धरम लीन ह्वै गयो ॥५॥
है कछु और करै कछु और, ताते जीवन पावे ठौर।
ताते तुम करुणां करि भाषौ, बहे जात जीवनकौ राषौ ॥६॥
अरु यह तुमही जानौ देवा, तुम बिनिहू जो लहे न भेवा।
तुम ही कहो सुनो उर धरौ, तुमही राषौ तुमही करौ ॥७॥
ब्रह्माहुकी सभा मंझारी, वेद जहां [illegible]रतिधारी।
तहां ऊं यह कोई नहीं जा[illegible] त्यूं सबे वषानै ॥८॥
अरु यह कैसे करि मन आवे, करम करेते भक्तिहि पावे।
अरु तुम याही को तन धारौ, जाते निज धरमहि बिसतारौ ॥९॥

जो बैकुण्ठ पधारा करिहौ, यह निज धरम नहीं उचारिहौ ।
ता पीछे कोई नहीं कहि है, यह निज धरम गुपतहि रहिहै ॥१०॥
ताते अब तुम करुणा करौ, यह निज धरम वेगि विस्तरौ ।
ऐसी सुनि उधवकी बाणी, आपन बोले सारंग पाणी ॥११॥

श्रीभगवानुवाच—
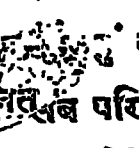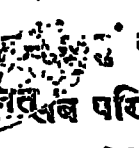
धनि धनि उधव जन मेरे, दूजौ नहीं बराबरि तेरे ।
मेरो निज जन चाहीए सोई, हे तपराता वरते जोई ॥१२॥
ताते तुम पर कारिज कर्‍यौ, मोते परम धरम विस्तर्‍यौ ।
उधव परम धरम मम भक्ति, और सकल तैं करै विरक्ति ॥१३॥
भक्ति बिना जो कोई धरम, सौ सब जानौ परम अधरम ।
जब मैं प्रथम कियो संसार, तब नहिं हुतो करम बिसतार ॥१४॥
जेई जे मानव तन धरै, मोहि सेइतेई तउ धरै ।
है कृत कृत्य लहे ममधाम, ताते सो कृतजुगके नाम ॥१५॥
ऊंकार रूप तब वेद, औसे कछु हुते नहीं भेद ।
सब इंद्रियमन निश्चल करै, मेरो ध्यान निरन्तर धरै ॥१६॥
औसे सब पापन परिहरै, सब मेरे चरनन अनुसरै ।
त्रेता विषै भए मतिमंद, विषयनिते मान्यौ आनन्द ॥१७॥
तिन निमति बहु उदिम [illegible] राजसतै पापनि बिसतरे ।
तब तिन हेत वेद बिसतारे, बहुत भांतिके करम निवारे ॥१८॥
वरण आश्रम भेद उपजाए, न्यारे न्यारे करम ग्रहाए ।
अपनो धरम त्याग जे करै, सो नर जाइ नरकमें पर ॥१९॥

ऐसे बहु विधि मथहि दिषायौ, थोरे करमनिमें ठहिरायौ ।
तामें भाष्यौ आत्म भजन, मो बिनि सकल करमकौं तजन ॥२०॥
बहुरयूं बहु आरम्भनि चहै, राजसते नहि निहचल रहै ।
तिनके हेति जग्य उपजाये, विष्णु रूप कहि सबनि सुनाये ॥२१॥
विषम भजनकीजे ता मांही, द्वैत दृष्टिं आनीजे नाहीं ।
मैं मुषहुतै विप्र उपजाये, क्षत्रिय बाहुनि हुंतै बनायें ॥२२॥
जंघन वैस्य पदनते सुद्रा, पद नीचे ओरै सब छुद्रा ।
पुनि गृहस्थ जघन्यतै कीयौ, ब्रह्मचरज उर सभवलीयौ ॥२३॥
वक्षस्थल तै उपज्यौ बनवास, मस्तकहु तै रच्यौ संन्यास ।
तातै सकल पिता मैं ऐक, मोतै उपजे सकल अनेक ॥२४॥
तातै मोहि मेहि जो करै, सो सौ सब बंधन बिसतरै ।
जाजा अंगहु तै जो उपज्यौ, त्यूं २ ताकौ लक्षण निपज्यौ ॥२५॥
ऊंचे अंगहु तै सो ऊंचौ, नीचे अंगहु तै सो नीचौ ।
तिनके बहु विधि भए स्वभाव, तातै उपजे नाना भाव ॥२६॥
सम दम सत्यरुक्षमा संतोष, सदा दयालु न उपजै रोष ।
तप अरु सोचन गरब मम भक्त, इन लछिननि विप्र अनुरक्त ॥२७॥
क्षमा तेज बल उदिधधीर, सूर उदार अचल गंभीर ।
विप्र भक्त मेरो दृढ़ भाव, ऐ छत्रीके भए स्वभाव ॥२८॥
बुधि आस्तिक दान अदंभ, विप्र [illegible] उद्यम आरंभ ।
वेस्य भए लीन्हें यह लछण, मंदबुधि परि महाबिलक्षण ॥२९॥
गाइरु तिहुं बरण कौ सेवै, तिनतैं कछू लहै सो लेवै ।
सत संतोप कपटता नाहीं, ऐसे लक्षण सुद्रनि माहीं॥३०॥

मिथ्यावाद अलोकक चोरी, बुधि नास्तिक हिरदै दगोरी ।
काम क्रोध अरु लोभ विकारा, दरप नीचकेरे प्रकारा ॥३१॥
काम क्रोध मद तृष्णा रहित, सुचि क्षमा परमारथ सहित ।
जीव दया अरु तजौं अधरम, यह सबको साधारण धरम ॥३२॥
ब्रह्मचर्यके धरमहि कहूं, जातौं भक्ति उपाई चहूं ।
विप्र क्षत्रिय अरु वैश्य त्रिवरण, इनकौ सकल वेद विधि करण।३३
गर्भाधानादिक संस्कार, तिहुं वरणको यह आचार ।
जब तौं बहुरि जनेउ पावौ, तबतैं गुरुके निकट रहावौ ॥३४॥
बहुविधि गुरुकी सेवा करै, वेद पढ़ै अरथहि उर धरै ।
जनौमेषलाकर जप माला, दंडकमंडल अरु मग छाला ॥३५॥
दंत वस्त्र तनमलन निवारै, सीस जटा हस्तन कुसधारै ।
आसण चंचल कदै न करै, लोकवार ता हदै न धरै ॥ ३६ ॥
सूरगुरीप त्याग असनान, होम रु जप भोजन जलपान ।
इनमैं वचन नहीं उचरै, नषकेसादिकहू छिन करै ॥३७॥
सदा निरंतर दृढ़ व्रत धारै, कबहुं भूलि विंदु नहिं डारै ।
जो आपही तौ जावै कबही, बहुत भांति पछितावै तबही ॥३८॥
करि असनानरु प्राणायाम, जाप करै त्रिपदीसे नाम ।
अग्नि अरक गुरु विप्र गाय, सुर मुनि त्रिधिनिनवनिकराय ॥३९॥
सन्ध्यौ उपासना करै काल, बचन न बोलै हाल न चाल ।
गुरुको मेरो रूपहिं जानै, नरको बुधि कदे नहीं आनै ॥४०॥
सर्व देव मय गुरुको लेषै, तनके कछू आचरण न देषै ।
भिक्षा आदि और कछू जोई, गुरुकूं आनि समरपै सोई ॥४१॥

जब गुरु ताकूं अज्ञा देवै, तब परसाद आपहुं लेवै।
बैठे ठाड़े आवत जात, भोजन सयन राति प्रभात ॥४२॥
नीकी विधि गुरु सेवा करै, अंजुली सो पीछै अनुसरै।
ऐसौ ब्रत अषंडत धारै, मनहुंमें नहीं भोग विचारै ॥४३॥
ऐसे गुरु कुल बरतै सोई, जोग लग वेद समापत होई।
पुनि ब्रह्माके लोकहि चाहै, तो ग्रहस्त थता नहीं सबहै ॥४४॥
गुरु कूं देह समरपण करै, वेद विचार हरदेमें धरै।
गुरु अरु अग्नि आयु सब माहीं, सेवै मोंहि अवर कछु नाहीं ॥४५॥
जुवती अरु जुवतिनके संगी, इनको कहे न होइ प्रसंगी।
दरस परस वाणी परिहास, त्यागेहू विमानी अतित्रास ॥४६॥
सौच आचमन अरु सनाना, संध्या उपासन गति अभिमाना।
तीरथ सेवा जपतप भिक्षा, तजे दरस संभाषण रक्षा ॥४७॥
मन अरु बचन देह बसि करै, मेरौ भजन हदेमें धरै।
अरु मम भजन सबनको धरम, भजन बिना सब धरम अधरम ।४८।
ऐसो ब्रह्मचरज ब्रतधारी, दृढ़ तप निस दिन वेद विचारी।
विगत पाप ऐसी विधि होई, मेरी भक्ति लहै तब सोई ॥४९॥
ऐसी विधि भव सागर तजे, मेरे परमरूपको भजे।
अरु जो कबहुं होइ सकाम, तो सो करै [illegible] अह धाम ॥५०॥
कै निहकाम गहै बनबास, कै अ विक्[illegible] सन्यास।
अरु जो उपजे मेरी भक्ति, तो नहीं करै कहुं आसक्ति ॥५१॥
यह है ब्रह्मचरजको धरम, यातै दूजो सकल अधरम।
अब ग्रहस्थ को धरम सुनाऊं, सकल ग्रहस्थनिको समझाऊं ॥५२

ब्रह्मचरज जो नहीं ठहरावै, तो ग्रहस्थ आश्रमहि जावै ।
गुरु ते वेद पढ़े नर जबही, गुरु दक्षण देइ पुनि तबही ॥५३॥
गुरुते आज्ञा ले घरघरे, तब विधिसूं आश्रमहिं करै ।
तब देखे उत्तम कुल लक्षण, करै विवाहहि त्रिया विलक्षण ॥५४॥
ज्यूं ज्यूं देखे अपनो अधिकार, त्योंही करै विवाह विचार ।
विप्र विवाहै चारो वरणा, विप्र छोड़ि क्षत्री कूं करणा ॥५५॥
वैश्य विवाहै वैश्यक सूद्र, सूद्र एकई कंचन छुद्र ।
उत्तिम सो लोप कै करै, बहुतन त्रिसना नहिं विसतरै ॥५६॥
श्रुति अध्ययन जग्य अरु दान, तिहुं वरणको एक समान ।
दान ग्रहन जग्य करवावन, अध्यक विप्रको वेद पढ़ावन ॥५७॥
परि ये तीन व्रति है ऐसी, अगनि मधि जल त्रिषा जैसी ।
इन तै ब्रह्म तेज न रहै, तातै इनकूं विप्र न गहै ॥५८॥
करिकैं सिला देह निर वाहै, तातै अधिको नहीं संबा है ।
विप्र देह पूरण तन पईए, सो विषयन लगि नहीं गुमइए ॥५९॥
बहुत भांति तप कष्ट करीऐ, हरि भजि हरि ही कूं अनुसरिऐ ।
सिला व्रति करि राषै देह, नहीं ममता जुवती सुतगेह ॥६०॥
अतिथ पाल बौरज तम नाहीं, मोही कूं देषै सब माहीं ।
जीवन मुक्त होइ [illegible], मेरे चरणनि पावै छिप्र ॥६१॥
जो कोई मम भक्तिहि [illegible] ताकूं कछू आपदा परै ।
सो आपदा मिटावे कोई, सो मेरा हितकारी होई ॥६२॥
ताकूं मैं उधारूं ऐसे, नाव निसौ अभौ निधि जैसे ।
परि क्षत्री निज धर्म विचारे, सकल पालना हिरदे धारै ॥६३॥

क्षत्री सब दुषनि परिहरै, सकल जीव प्रतिपालहि करै।
सो क्षत्री सुरलोकहि जावै, बासव सहित महा सुख पावै ॥६४॥
जो आपदा विप्रकूं परै, तो वह बनिजा ब्रतिकों करै।
यदपि षड्ग ब्रति है ऊंची, परि सो अति हिंसतैं नीची॥६५॥
जो क्षत्रीकूं परै विपत्ति, तासो गहै बणिजकी ब्रत्ति।
किंबा विप्र ब्रति कों गहै, अथवा म्रगया करि निरबहै ॥६६॥
वैस्यहिं परै आपदा कबहीं, सूद्र ब्रत्तिसों टारै तबहीं।
अरु जो बिपति सूद्र कूं परै, प्रतिलोम ब्रतिहि लहै ॥६७॥
या विधि जबहीं मिटै विपत्ति, तबहीं गहै आपनी ब्रत्ति।
पंच जग्य ये प्रति दिन करैण, ग्रहस्थ कूं नाहीं परिहरैण ॥६८॥
करिकै पाठ रिषिन कूं जजै, करि कछु होम देवतनि भजै।
भूतनि बलि श्रद्धा सों पितर, जल अनादिसक्तिसों धर ॥६९॥
तिन सबहिनमें मोकूं जानै, और सबनिपर करुणा आनै।
जो कबहूं सहजहि धन पावै, किंबा न्यायहुते उपजावै ॥७०॥
तासूं लोग आपनो पोषै, और जग्य करि मोहिं संतोषै।
जेती लागत घरमें होई, तेतो ईंधन राखै सोई ॥७१॥
और सकल ममहेत लगावै, भूलि न दूजे मारग जावै।
यदपि रहै कुटुम्बहिं माहीं, तोलों लिये [illegible]ूं नाहीं ॥७२॥
निसदिन हिरदे करै विचारा, मिथ्या [illegible]ब परिवारा।
स्त्री पुत्र बन्धु सब ऐसे, जलके निकट बटाऊं जैसे ॥७३॥
ये सब यों प्रति देहहिं आवै, ज्यों निद्रा प्रतिस्वप्ना पावै।
ज्यों ज्यों जागै बारम्बारा, त्यों त्यों मिटै स्वपन ब्योहारा ॥७४॥

यों ही ये प्रति देहहिं आवै, देह तजे सब जिततित जावै ।
अरु यो हीं स्वर्गादिक लोक, पाये हरष गये अति सोक ॥७५॥

ताते सकल वासना दहै, अतिथि समान भवनमें रहै ।
अहंकार ममता नहिं आनै, सब माया बंधन करि मानै ॥७६॥

सब करमन मेरे हित करै, मोबिच अंतराइ परैहौ ।
प्रेम भाव दृढ़ उरमें राषै, और सकल हिरदेतें नाखै ॥७७॥

एक पुत्र भये वन जावै । किंवा घरही माहिं रहावै ।
ऐसो ग्रही मुक्ति करि मानै, और कछू हिरदे नहिं आनै ॥७८॥

अरु जो होई भवन आसक्त, युवती सुतादिन सूं अनुरक्त ।
विषया लमट त्रिष्णा आतुर,ग्यान रहत करमनिमें चातुर ॥७९॥

आपहिं परवस ताहि न जानै, औरनिकी चिन्ता उर आनै ।
भाई बन्द पिता रहै मेरे, मोबिन दुख लहै बहुतेरे ॥८०॥

यह अबला लघु संतति जाकी, मोबिन होय कहा गति जाकी ।
ए अनाथ मो बिन सब बाला,क्यों करि जीवै अति वेहाला ॥८१॥

मो बिन इनहिं कौन प्रतिपद लै, कौन विविध दुखनको टालै ।
ऐसे निस दिन [illegible]चिन्ता, कबहूं नहिं होवै निःचिन्ता ॥ ८२॥

कहे न सुष पावै यो [illegible] असो रहै चिन्ताभय सोक ।
या विधि चिन्ता करत अपार, [illegible]कहिं जावै बारम्बार ॥८३॥

ऐसो ग्रही अधोगति जावै, आपन करता चिन्ता ल्यावै ।
चिन्ता निसदिन दहै सरीरा, छीजै देह बढ़ै अति पीरा ॥८४॥

दोहा

ब्रह्मचरज अह चरजको, मैं भाष्यौ यह धर्म ।
यातें उधव और कछु, सो सब जानि अधर्म ॥ ८५ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्रीभगवान उद्धव सम्वादे भाषायां आश्रम धर्म निरूपण नाम सप्तदसो अध्यायः ॥

श्री भगवानुवाच—

अब मैं कहूं धरम बनवास, अरु अधिकार सहित सन्यास ।
जाते मेरो भक्तिहि पावै, भक्ति पाई मम चरणनि आवै ॥१॥
वर्ष पचास हूतें उपरंत, तब बन जाय रहै एकन्त ।
नारि सुतनमें रहन न देई । जो विधि बणै संगतो लेई ॥२॥
कंद मूल फल ब्रतहिं करै, बल कल म्रगछाला तनधरै ।
त्रण पातनकी सेज संवारै, इन्द्रिनके सब अरथनि वारै ॥३॥
केसरोम नख दूर न करै, देद्दंत मल नहिं परिहरै ।
भूमि सयन त्रिकाल सनान, मल न उतारै मुसल समान ॥४॥
ग्रीसम ऋतु पंचागनि साधै, बरखामें छाया नहिं बाधै ।
सीस सकल जल धारा सहै, सीत काल जल सायर रहै ॥५॥
ऐसी भक्ति करै तपदुःकर, द्वन्द न व्यापै ज्यों जल पुष्कर ।
अग्निपक्कस्रतु पक्वफलादि, भोजन लघु [illegible] रनादि ॥६॥
मूसल ऊषल कै पाषान, कै दंत[illegible]खोरै धान ।
देह जीवका आपुहि आनै, औधेकन ग्रहै न संचय जानै ॥७॥
तिनहीं तिन करि मोकूं जजै, और जाय बन बासी तजै ।
अगिनहोत्र अरु पूरण मास, त्योंही दरस अरु चातुर मास ॥८॥

इन सबहिनको ममहित करै, मोबिन और हिरदै नहिं धरै ।
यों तप करि मोकूं आराधै, प्राण देह इन्द्रिय मन बांधै ॥९॥
यों ह्वै सुध लहै ममभक्ति, और त्रिगुण विस्तार विरक्ति ।
यों तबही मम चरणनि पावै, कै करि क्रम ब्रह्मलोक ह्वै आवै ॥१०॥
अरु जो ऐसे कष्टहिं करै, पर कबहुं काम न हिरदै धरै ।
तासम मूरख दूजो नाहीं, ताके वृथा सकल श्रमजाहीं ॥११॥
यों पचहत्तर बरषनि पाछे, गहै सुद्ध सन्यासहिं आछे ।
सकल क्रियाके त्यागहि करै, मनसों मनसेवा अनुसरै ॥१२॥
करम रचित सब लोकन जानै, तातै क्षणभंगुर करि मानै ।
ताही हुतै करै सब त्याग, मन बच करम सौं दृढ़ वैराग ॥१३॥
वेद विहत विधि मोकूं जजै, स्तुजको सरबस देत जे ।
तब कोई सन्यासहि करै, तबही सुर विघनन विस्तरै ॥१४॥
पनि यह विघन गिने कछू नाहीं, मेरे चरण धरै उरमाहीं ।
जो कबही कछू वस्त्रहि राखे, तो कोपीन और सब नाखे ॥१५॥
दंड कमंडल कर मैं धारे, ज्यों मिले त्यूं नहीं और विचारे ।
देखि देखि धरणी पग धरै, वस्त्र छांड़ि जलपानहि करै ॥१६॥
सत्यवंत वाणी कूं बोले, हिरदै विचार कहै नहीं डोले ।
मौनि धारि बानीकूं दंडै, अरु कायाके करम निखंडै ॥१७॥
प्राणायाम मनहि [illegible] तै, सब इन्द्रिय अरथनि परिहरै ।
अरु ए चिन्ह नहीं जा [illegible] धुरै जती सो नाहीं ॥१८॥
भिक्षा करै ससवरि विप्र, और कछू कहूं गहै न क्षिप्र ।
सोऊ विप्र चतुर विधि जेते, जानि रहै भिक्षाकूं तेते ॥१९॥

विप्र कही जे दस प्रकार, तिनकौ तुमसौं कहूं विचार।
देव विप्ररिष विप्रहि जानो, विप्र विप्र अरु क्षत्री मानौ, ॥२०॥
वैश्य सूद्र अरु ऐक विडाल, पसुर मलेछ बिप्र चांडाल।
भिक्षा नीति रु पढ़े पढावे, सकल अर्थ अरु तत्व बतावे ॥२१॥
इन्द्रियजित सीतल संतोष, देव विप्र सो निरगर रोष।
तप अरु सत्य अहिंसा करे, दिन दिन षट कर्मनि अनुसरे ॥२२॥
काल लोप कबहूं नहीं होई, रिक्ष ब्राह्मण कहियतु है सोई।
बिन हिंसा फल फूल न ल्यावै, तिनहूं सू देहहि बरतावे ॥२३॥
बर्षा सीत उष्ण सब सहै, विप्र विप्र निति श्रधा गहे।
अस्वादिक निकरे आरोह, रणमें सूरत जे तन मोह ॥२४॥
नीति सहित डाणे आरंभ, क्षत्री विप्र हिरदे नहीं दंभ।
अरु जो उतिम बनिजहि करे, पसु राषे खेती बिसतरे ॥२५॥
सो वह वैश्य ब्राह्मण कहीए, ताते ये भिक्षा नहीं गहीए।
तेल लौन घृत धरु लक्षा, तिल अरु नीलपही मधुमक्षा ॥२६॥
इनको बनिज करत है जोई, सूद्र विप्र कहियतु है सोई।
सब भूतनिके द्रोहहि करे, सबके छिद्रन देखत फिरे ॥२७॥
प्रति दिन हिंसा सो अधिकार, बिप्र कहावे सो मंजार।
भक्ष अभक्ष अकारज कारज, गमिअगमिन लखै अनारज ॥२८॥
कृतघ्न सकल पशुनके लक्षण, सो पशुवां [illegible] विचक्षण।
वापी कूप तलाब बुरावे, बन [illegible] नास करावे ॥२९॥
सन्ध्या अरु स्नान न जाने, असो विप्र मलछ बखाने।
निन्दक लोभी परधन हरै, निर्दय क्रूर पिसुनता करै ॥३०॥

सो मधुकाल जिम लागि जावै, ऐसे वृत्ति विरति जावै ।
ताहि उत्तम भिक्षा करे, और सकल दूरे परिहरे ॥३१॥
सप्त घरनते भिक्षा पावे, ताही करि संतोषइ पावे ।
जो है जावे नदी तड़ागा, ताके कछु इक करे विभागा ॥३२॥
कोई मांगे ताको देई, के जल मांहि प्रवाह करेई ।
फिर रै धरनी है निःसंग, कहे कछू न संचारे अंग ॥३३॥
तन मन इन्द्रिय निग्रहि करे, मेरो रूप हृदयमें धरे ।
निश दिन रहे आतमाराम, विषय सुखनिको सुने न नाम ॥३४॥
समदर्शी अरु शीलवंत, सदा रहे निर्भय एकन्त ।
मेरे भाव भयो अति सुद्ध, परम विवेकी ज्यों जल दुग्ध ॥३५॥
आपहि सोहि विचारे एक, कहे न देखे भूल अनेक ।
आतम अंश ब्रह्मको जाने, बंध मुक्ति दोऊ भ्रम माने ॥३६॥
बंधन जब इन्द्रिन वश होई, मुक्ति इन्द्रियन बंधै सोई ।
ऐसे जानि इन्द्रियन जीतै, तुहिं सुमिरत तिह काल वितीतै ॥३७॥
दुहुं लोकसे होइ विरक्त, तनहुमें नांहं होइ आसक्त ।
पुरु ग्रामादि प्रायजो परै, भिक्षा अरथ प्रवेसहि करै ॥३८॥
देश पवित्र शैल वन सरिता, बानप्रस्थ तहां आचरिता ।
तहां तहां नित ही [illegible] जावै, तिन आश्रमनि भिक्षा पावै ॥३९॥
तिनके लहे सिला[illegible] ताते होवे चित्त प्रसन्ना ।
ताही ते निर्मलता लहै, उपजं [illegible]कल मल दहै ॥ ४०॥
इन्द्रिय अरथ सत्य नहिं देषै, क्षण भङ्गुर सब नस्वर लेषै ।
ताते सबते गहै विरक्ति, नहिं उद्यम न विषय आसक्ति ॥४१॥

यह सब अहंकार कृत जानो,आतम विषय सुपन सम मानो ।
कहे न हृदय चितवन करे, मन क्रम बचन दूरि परिहरे ॥४२॥
ऐसी विधि जो उपजे ज्ञान, होइ विरक्ति तजे सब आन ।
मेरी भक्ति हिरदेमें आवे, तब सब वरणाश्रम छिटकावे ॥४३॥
विधि निषेध दोऊ भ्रम जाने, वेद स्मृतिकी संक न माने ।
अति बुधि परि बालक सम रहै,विधि निषेध कछु कहै न गहै॥४४
सब जाने परि ज्यों उन्मन्त, चेतनमय दीखें जड़वन्त ।
पुषता बानि रतन सम होई, कबहुं बाद न ठाने सोई ॥४५॥
बाहिर मध्य एक सम रहै, कबहूं कोइ पक्ष नहिं गहै ।
ज्यों ज्यों कहै सुनै त्यों त्योंही; तत्व मतो नहिं त्यागो क्योंही४६
काहू ते उद्वेग न आने, अरु काहूको आप न ठाने ।
निन्दा आदि सहै दुखै न, अन्तर धरै निरन्तर चैन ॥४७॥
काहूको अपमान न करै, मन क्रम बचन मान विस्तरै ।
पशु समान वैरादिन ठाने, सकल विकार देहके माने ॥४८॥
ज्यों आत्म अपने तनमाहीं, सो सब मैं दूजो कोउ नाहीं ।
ज्यों बहु घटनि मांहि ससि एक,घटनि संगि जानीए अनेक ॥४९॥
तातै इष्ट अनिष्टहिं करै, सो सब आपहिकूं विस्तरै ।
तातै आतम बुधिहिं राषै, भेद देह कृत [illegible]राषै ॥५०॥
समय पाइ भोजन नहिं आवे, तोहू [illegible]नमें ल्यावै । [illegible]
करम रचित सब देहनि जा[illegible], [illegible]हां ते सब दुख सुख माने ५१
ते सब दुख सुख करम सरीर, यो आतममें ज्यों मृगनीर ।
केवल आहारहि नहिं नाषै, उद्यम हू करि प्राणहि राषै ॥५२॥

त्योंहीं सुख आपहिते आवे, विन जाने नर वहु दुख पावे।
तातें बुध सुख नांव न लेहीं, तज छल छिद्रहिं अहीं ॥ ३ ॥
स्वाद कुस्वाद वहुत की थोरा, जो हरिजी पठव तेहिं औरा।
ताकों भक्ष्य रहै न उदासा, अजगर वृति गहै यह दासा ॥४॥
जो कवहूं अहार न आवै, तो थिर रहै न कछु मन ल्यावै।
कर्माधीन देहको जानै, मन क्रम वचन न उद्यम ठानै ॥५॥
अति समर्थ इंद्रिय मन देहा, पर कछु उद्यम करै न एहा।
निश्चल ब्रह्म निरंतर सेवै, यह शिक्षा अजगरतैं लेवै ॥६॥
दरस परस अरु परम गंभीरा, अधिक अगाध ज्ञान सो नीरा।
वार पार कोइ थाह न लहै, ये गुन मुनि सायरके गहै ॥७॥
ज्यौं वर्षा वहु नीर प्रवेसा, सायर कवहुं न लहत कलेसा।
ग्रीषममैं कछु हीन न होई, सदा समर्थ आपतैं सोई ॥८॥
त्यूं कोई वहुबिधि अरचावै, भोजन वस्त्रादिक पहरावै।
अस्तुति मान वड़ाई देवै, वहुत भांति वहुते मिलि सेवै ॥९॥
अरु एकै लेजाय उतारी, निंदादिक गिने एक भारी।
परि नारायण मुनि मन माहीं, राग द्वेष कछु उपजै नाहीं ॥१०॥
वनिता वस्त्र कनक आभरना, वहुविधि मायाके उपकरना।
इनमें आय परे जो कोई, अगनित जन्म उद्धार न होई ॥११॥
जब लगि मुनि समझै निज देहा, रुचि अहार लेय वहु गेहा।
जातें कछु अनुराग न वढ़ै, यह शिक्षा मधुकरतैं पढ़ै ॥१२॥
छोटे वड़े अनेकन ग्रंथा, तिनमें सार गहै हरिपंथा।
ज्यों मधुकर वहु फूलन माहीं, वास गहै फूलनको नांहीं ॥१३॥

चंचल बुधि न ग्यान वैराग,ताको सकल वृथा है त्याग ।
भेष दिषाइ जीवका करै, ताको दोष कह्यो नहीं परै ॥६४॥
देवपितर रिष भूतनि ना बै, तिन को रिण अपणे सिर राषै ।
अंतर गति मैं ताहि छिपाव, आपहि बंचै बन्धु डपावै ॥६५॥
सो सुष कहूं लहै या लोक, अरु त्यूं भ्रष्ट होइ प्रलोक ।
ये है बर्णाश्रमके धृम, इनतें भक्ति लहै दहै क्रम ॥६६॥
अब चासौके धृम प्रधान, न्यारे २ करूं बषान ।
समरू अहिंसा सन्यासी कौ,श्रुति विचार तप बनवासी कौ ॥६७॥
ग्रह मैं दया जज्ञ सम क्रम, ब्रह्मचरज गुरु सेवा धृम ।
ब्रह्मचरज तप सोच सन्तोष, सकल सुहृद कतहुं नहीं रोष ॥६८॥
मेरो भजन सकल मम कारण,ऐ सबहिनके धृम साधारण ।
ग्रही देइ बनिता रित्युदान, भूलि न गवन करै दिनआन ॥६९॥
या विधि अपने अपने धरम, मेरे हेति करै सब करम ।
सबमैं जाणै मेरो भाव, काहूंपरि नहीं धरै अभाव ॥ ७० ॥
सो पावै मेरी दृढ़ भक्ति, और सकलतै करै विरक्ति ।
तातै उपजै मेरो ज्ञान, देषै मोहि मिटै सब आन ॥ ७१ ॥
ऐसो ह्वै पावै ममरूप, बहुरिन आवै या[illegible] ।
जेहैं सकल वरण आश्रम, ति[illegible] ॥[illegible] धरम ॥ ७२ ॥
भक्ति सहित ए मोहिं मिलावैं, भक्ति बिना भवसिंधु बहावैं ।
ऐसो तत्त्व लहै ते तरै, और सकल निति जनमै मरै ॥७३॥

दोहा—

यह उधव तोसूं कह्यौ, वरणाश्रमको धर्म ।
ताते नर करिहिं लहै, छूटे बंधन कर्म ॥ ७४ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कंधे श्रीभगवतउधव संवादे भाषायां वरणाश्रम धर्म निरूपण नाम अष्टादसोध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

चौपाई—

उधव ए बरण रु आसरमा, तिनके सब मैं भाषे धरमा ।
इनमें रहि मम भक्ति जु पावे, ताते मेरो ज्ञानहिं पावे ॥ १ ॥
ज्ञानहिं पाइ सकल भ्रम जाने, बरणाश्रम मिथ्या करि माने ।
सब साधन तजि मोकूं ध्यावे, और कछू हिरदे नहिं ल्यावे॥२॥
ज्ञानीके मैंही हूं साधन, अरु मेरोइ नित आराधन ।
मोहि करि मोकूं आराधे, तन मन इन्द्रिय मोसूं बांधे ॥ ३ ॥
मो बिन सुरगादिक नहीं लेवे, मेरे ही चरणनि चित देवे ।
मो बिनि मुक्ति हू नहीं गहै, मो बिनि सकल बासना दहै ॥४॥
मैं ही हित मैंही [illegible]प्रिय, मो बिनु और सकल अति अप्रिय ।
जेहैं सहित ज्ञान विज्ञान[illegible] मोहि सुजान ॥ ५ ॥
ग्यानी ते मेरे प्रिय नाहीं, सदा बसे मेरे मनमांहीं ।
मैं ताको मेरो है सोई, दूजो नहीं परस्पर कोई ॥ ६ ॥

जप तप तीरथ अरु ब्रत दाना, कहुं कहां लग जे विधि नाना ।
ते सब केर नहीं फल ऐसो, ज्ञान कलाते होवै जैसो ॥ ७ ॥
ताते ज्ञान हृदै मैं धारो, औरैं साधन सकल निवारो ।
सबमैं रूप आपनो जानौ, मोहि जानि प्रभु सेवा ठानौ ॥ ८ ॥
है करि सहित ज्ञान विज्ञान, देषै सकल एक भगवान ।
बहुते मम निज रूप समाऐ, जहां जाइ कोई नहीं आऐ ॥ ६ ॥
जबही ज्ञानी ज्ञानहि पावै, तबही मम निज रूप समावै ।
ज्ञान विना नहीं पावै मोहि, यह निज मतौ कहत हूं तोहिं ॥१०॥
उधव तो मैं बिविध विकारा, जनम मरण सुष दुष प्रकारा ।
ते सम सत् यातनके जानो, सो तन माया भ्रम करि मानौ ॥११॥
आपहि सुद्ध निरंजण देषौ, द्वैत अतीत ऐक ही लेषौ ।
ए जे सकल प्रगट देहादि, ते आतम मैं हुते न आदि ॥ १२ ॥
अरु अंतहु रहै कछु नाहीं, अब अज्ञानहुं ते बरताहीं ।
ज्ञान दृष्टि करि देषै जब ही, त्रिगुण रहत आपहि है तबही॥१३॥
जसे रजुमाहि अहि कहै, आदिनहुतो अंतनहीं रहैं ।
भ्रम ते मध्य मंद मति मानै, हैं नाही परि है सो जानै ॥ १४ ॥
त्यूं देहादि सकल भ्रम देषै, आपहि सदा ब्रह्ममय लेषौ ।
ऐसो सुनि हरिजीसूं ज्ञानहि, उधवजन पूछे [illegible]हि ॥ १५ ॥

उधव उवाच—

हे प्रभु ज्ञान कृपाकरि कहौ, मेरे नाना भ्रमकूं दहौ ।
अरु त्यौंही भाषो विज्ञान, मुक्ति आपनी प्रेम निधान ॥ १६ ॥

[illegible], ताते छोड़ि जगतको अंत ।
[illegible] ज्ञान [illegible] नांही, [illegible] क्रिया [illegible]ताही॥१७॥
ताकूं [illegible] नहीं लेवै, और कुपलि परि दृष्टि न देवै ।
ऐसी [illegible] कारि ताही, अपने जनहि और निरदहो ॥ १८ ॥
यह [illegible] विकट अनन्त, तामैं भ्रमत न पावै अन्त ।
[illegible] त्रिविध संताप, तिनमैं परे आप ही आप ॥ १९ ॥
ताते जीव महा दुख पावे, सुख ठानेसे दुख ह्वै आवै ।
ताकूं दूजो [illegible] नाहीं, मैं विचारि देख्यौं मनमांहीं ॥ २० ॥
तुम्हरे चरण छत्र सिर धारै, सो समस्त संताप निवारै ।
ताकूं [illegible] दृष्टि अमृत वरषै, ताके दरस और सब हरषै ॥२१॥
ज्यूं [illegible] संभालहि लीजे, ताके सीस छत्र लै दीजे ।
[illegible] भूप महा सुख पावै, अरु औरनके दुख मिटावे ॥ २२ ॥
त्यूं तुम चरण छत्र सिरधारै, सो अपने सब दुख निवारै ।
सो निर्भय तिहुं लोकनि मांहीं, तासम और कहूं कोउ नांहीं॥२३॥
अरु तामी सरणहि जो आवे, तेते सकल प्रम सुख पावै ।
या भवकूप पर्यो बेहाल, तापरि डस्यो महा अहिकाल ॥ २४ ॥
ताते विषय [illegible] जाने, तिनि निमित बहु उद्यम ठाने ।
ताते सदा अमित [illegible]वे, जाको कबहुं अन्त न आवे ॥ २५ ॥
ताकूं कृपापियूष पिवावौ, [illegible] कूपते मृतक जिवावौ ।
वचन अमृतकी वर्षा करौ, अपने गुणनि बांधि उर धरौ ॥ २६ ॥
तुमही जनक पिता जग स्वामी, जगपालक जग अन्तरजामी ।
ऐसे वचन सुने भगवान, तब भाष्यौ ऋषभ संहान ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच—

उधव प्रश्न करी तुम जोई, धरमपुत्र कीनी थी सोई।
सर सज्यामें भीषम परे, हमको सुनत बचन उचरे ॥ २८ ॥
तेई अब मैं तुमहिं सुनाऊं, भक्ति ज्ञान विज्ञान जनाऊं।
प्रकृति पुरुष महतत अहंकार, सबदादिक जे पंच प्रकार ॥ २९ ॥
त्रिगुण अरु इन्द्रिय दस ऐक, पंचभूत मिलि भये अनेक।
थावर जंगम विविधि प्रकार, इन अठाईसनको विसतार ॥३०॥
इन बिनि और कहू कछू नाहीं, एक दृष्टि देषे सब माहीं।
जा करि सकल एक करि जाने, ताकू साधू ज्ञान बखाने ॥३१॥
अरु जब ऐ अठाईस तत्व, माया जाने सकल अतत्व।
आत्मब्रह्म एक करि माने, देहादिक सब मिथ्या जाने ॥ ३२ ॥
रजू जानि ज्यूं सरप निवारै, त्योंसम सत मम रूप विचारै।
जैसे दिसा मोह मिटि जावे, आठो दिसकी खबरिहि पावै ॥३३॥
करत निरंतर ज्ञान विचार, देखे ब्रह्म मिटै विसतार।
ताको कहियतु है विज्ञान, ताते लहै मोहि तजि आन ॥ ३४ ॥
आदिहु ते अरु रहि हैं अंत, सोई है अबहु बरतंत।
तृणाकार प्रगट है जेते, आदिनहुते अस अं[illegible] विचारतें ॥ ३५ ॥
ताते अबहुं मिथ्या देषै, तिहूंकाल मोहि [illegible]षै।
जैसे तिहूं काल मैं धरणी, घट नामादिक मिथ्या करणी ॥३६॥
श्रुतिको मतो हृदेमें आने, नेति नेति श्रुति सदा बखाने।
नानाकार वेद भ्रम भाखै, ब्रह्म सति दूजो सब नाषै ॥ ३७ ॥

सकल घटनिमें एक बतावे, ऊंच नीच सब भेद मिटावे ।
ऐसी भांति विचारे वेद, जाने मोहि मिटावे वेद, ॥ ३८ ॥
अरु त्योंही सब प्रगट देषे, सतधातके सब तन लेपे ।
अरु देषे उपजत बिनसंत, यों परखि विचारे सन्त ॥ ३९ ॥
अरु सत पुरुष भये हैं जेते, तिनके वचन विचारे तेते ।
एके मतो सबनिको देषै, जाने मोहि भेद भ्रम लेषै ॥ ४० ॥
अरु त्यों अनुभव हृदे विचारै, चेतनं राषि अचेतन डारै ।
सब देखे चेतन आधार, इन्द्रिय देह विविध विसतार ॥ ४१ ॥
चेतन ते जड़ अरथनि जग है, चेतन विनि कोई नहीं रहै ।
यों वेदान्त तथा दृष्टांत, अनुभव अरु त्योंही सिधान्त ॥ ४२ ॥
इन चारिहुंको मतो विचारे, मोहि जानि सब भेद निवारै ।
सकल दृश्यसे होइ विरक्त, चेतन ब्रह्म सदा अनुरक्त ॥ ४३ ॥
क्रम रचित सब मिथ्या मानै, ब्रह्मलोकलों नस्वर जानै ।
देख्यो सुन्यौ हिरदेमें आवै, सो सब बंधनं जानि बहावै ॥ ४४ ॥
मेरी भक्ति हिरदेमें धरे, जितने भक्ति होइ ते करे ।
भक्तरु भक्त हेत हैं जेते, तुमसूं पीछे भाषे तेते ॥ ४५ ॥
अब बहुसू तुव हेत विचारौ, भक्त भक्ति साधन उचारौ ।
मेरी कथा सुने [illegible] प्रीति सहित उर अन्तर गहै ॥ ४६ ॥
पूजामें अति निष्टा धरै, [illegible] भांति अस्तुति विसतरै ।
बदन करै प्रदक्षिणा देई, अरु अष्टांग प्रणाम करेई ॥ ४७ ॥
सब भूतनिमें मोकूं जानै, परि मम जन मेरो तन मानै ।
मम भक्तनकूं बहुविधि सेवे, तन मनधन तिनहींकूं देव ॥ ४८ ॥

मेरे हेत करे जो करै, मो बिनि और सकल परिहरै।
मेरे गुणन कहै उरधारै, दूजी सब कामना निवारै ॥ ४६ ॥
मेरे अरथ अरथ सब त्यागै, सुख अरु भोगनते वैरागै।
जपतप यग्य जोग ब्रत दान, सयनासन भोजन जलपान ॥ ५० ॥
इत्यादिक सब मम हित करै, जाते अन्तर सो परिहरै।
सदा आपकूं मोहि नवेदै, प्रेमशस्त्र उर ग्रन्थहिं भेदै ॥ ५१ ॥
ऐसे जब मम भक्तिहि लहै, तब अवशेष कछू नहिं रहै।
साधन साध लहै सो सकल, काल करमतें होवै अकल ॥ ५२ ॥
जब मम विषय चित्तको धारै, तबहु शान्तिक रजतम टारै।
धर्म ऐश्वर्य ज्ञान वैराग्य, इनको सहज लहे बड़भाग्य ॥ ५३ ॥
अरु जो मेरी युक्तिन पावै, देहगेहसूं चित्त लगावै।
तब होवैं रजतम अधिकारा, बंधै अधर्म परै संसारा ॥ ५४ ॥
बन्ध मुक्तिको चितहि कारन, बोरे चित्त अरु चित्तहितारन।
सोमें धारै मोकूं लहै, भवको धारै भवमें बहै ॥ ५५ ॥

ताते धरम ज्ञान वैराग, ईसुरतादिक जे बड़ भाग।
ते समस्त मेरे आधीन, ताते होवे मम लवलीन ॥ ५६ ॥
सेवत मोहिं सकल ये पावे, मो बिन कोई [illegible] न आवे।
मेरी भक्ति कहावै धरम, उधव दूजो स[illegible] विवक्ष्[illegible]धरम ॥ ५७ ॥
एक ब्रह्म दरसन सो ज्ञान, य[illegible]ौर सकल अज्ञान।
अरु उधव सोहै वैराग, जो समस्त विषयनको त्याग ॥ ५८ ॥
अरु ऐश्वर्य सिधि अणिमादि, मम सेवककी सेवक आदि।
ताते जे मम शरणहि आवै, तेई भक्ति मुक्ति सुख पावै ॥ ५९ ॥

दोहा—

ऐसे अद्भुत वैन जब, कहैं कृपाकरि कृश्न ।
तब उधव जन हरषि करि, कीन्हीं हरिसूं प्रश्न ॥ ६० ॥

उधवउवाच—

हे प्रभु पूरण करुणां करौ, ज्यौंहि त्यों सब बिधि बिसतरौ ।
ज्यौं तुम धरम भक्ति कृत भाष्यौ, ब्रह्मदृष्टिकूं ज्ञानहि राष्यौ ६१
अरु वैरागादिक समझाऐ, मेरे सब सन्देह मिटाए ।
त्यौंही सकल तत्वकूं भाषौ, होइ अतत्व दूरिकरि नाषौ ॥६२॥
जमकहीऐ सो कै प्रकार, अस त्यूं कहौ नियम बिसतार ।
अरु सम कौन कौम दम देवा,कौन क्षमा अरु धृतिको भेवा ॥६३॥
कौन सूरता अरु तपदान, कौन सति को झूठ बषान ।
कौन त्याग को धन है इष्ट, कौन जज्ञ दक्षणा वरिष्ट ॥ ६४ ॥
बल अरु दया लाभ अरु सुख, विद्यालजा सोभा दुख ।
पण्डित मूरख ग्रह सतपंथ, स्वरग नरक अरुबंध कुपंथ ॥ ६५ ॥
कौन दरिद्र कौन धनवंत, कौन कृपण कोई सुरवन्त ।
अरु इनते उलटीहै जेती, सम अरुदम आदिक सब तेती ॥ ६६ ॥
मोसों देव कृपाक[illegible] राखौ तत्व अतत्वहि नाषौ ।
यौं सुनि बहु उधवकी प्र[illegible]तब कृपाकरि बोले कृश्न ॥ ६७ ॥

श्रीभगवानुवाच—

हिंसा रहित सति अस्तेय, संग बिबरजत सबको हेल ।
लज्या मौनि आंस्तिक थीर, ब्रह्मचरज अरु क्षमा अभीर ॥ ६८ ॥

ऐ द्वादश जग गहे निवृति, अरु त्यूं द्वादस नियम प्रवृत्ति।
सोचरु कपट रहत धरमांद्र, जपतप अरु मम पूजा सादर ॥६९॥
तीरथाटन अतिथिहि पोष, गुरु सेवा अरु दृढ़ सन्तोष।
पर उपकार होम बिसतारै, मुक्ति भुक्ति चाहे सो धारै ॥ ७० ॥
समजो मोमे निष्टा बुधि, दम इन्द्रिय निग्रह मन सुधि।
जो दुषनि उपजावे कोई, तिनते जाके दुख न होई ॥७१॥
सकल सहै कछू मन नहीं आनै, ताकूं मम जन क्षमा बषानै।
जिह्वा इन्द्रिय चंचल होई, तिन दोनों कूं धारे सोई ॥७२॥
रस अरु अबलाको नहिं गहे, ताको मेरो जन धृति कहे।
भूत द्रोह त्याग सो दान, भोगत जनसो तप नहिं आन ॥७३॥
सोई सूर जो जितै सुभाव, सोई सति सकल मम भाव।
मोकूं लीऐ बचन सो सतिय, मो बिनि बोले सकल असत्य ॥७४॥
क्रमनमें जो होइ असंग, सो वह परम सोच है अंग।
सोहै त्याग तजै फल क्रम, सो धन इष्ट प्रम ममध्रम ॥७५॥
जज्ञ रूपमें हों नहीं आन, सो दक्षणा देइ मम ज्ञान।
प्राणायाम परम बल कहीए, जा करि बड़ो सत्रु मन गहीए ॥७६॥
भाग्य जो मम एस्वरजहि पावे, चेतन निजानंद ह्व आवे।
मेरी भक्ति एक यह लाभ, भक्ति बिना [illegible] अलाभ ॥७७॥
जाते भेद मिटे सो विद्या, उधव [illegible] अविद्या।
लज्जा मानि अक्रमनि गहे, मम जनताकूं लज्जा कहै ॥७८॥
निह किंचन निरपेक्ष निलोभा, इत्यादिक जे गुण ते सोभा।
सो सुख जो सुख दुख अतीत, पुनि न पाप उश्न नहीं सीत ॥७९॥

विषयनकी इछा दुख जानौ, गुण पनि आद्य सौ मानौ।
बंध मुक्तिकी जुक्तिहि जानै, मम जन पण्डित ताहि बषानै ॥८०
अहंकार जाके जग आदि, अपने कहे देह गेहादि।
सो समस्त मूरिषहि जानौ, याते और भांति मति मानौ ॥८१॥
जा करि मोहि लहैं सो पंथ, जो प्रवृत्ति सो सकल कुपंथ।
निति सन्तोषी सीतल हृदय, सान्तिक चित सबनि परि सदय ॥८॥
यह सुरग सुखको भण्डार, नरकनमैं तामस अधिकार।
सतगुर एक बन्धु करि जानौ, और सकल ही बैरी मानौ ॥८३॥
सतगुरु है सो मेरो रूप, जाते जीव तजै ग्रह कूप।
सत गुरु बिना बन्धु नहीं कोई, सत गुरु विना जो बैरी सोई ॥८४॥
मानव तन सोई ग्रह कहीए, ताके ग्रहे ग्रही ह्वै रहीए।
सो दरीद्र जो तृष्णावंत, कृपण इन्द्रियनि बसि वरतंत ॥८५॥
विषयन अनासक्त सो ईस, विषयनि बसि ते सकल अनीस।
इतनो प्रश्न कही मैं तोसूं, जाजा विधि तुम पूछी मोसूं ॥८६॥
विधि निषेधके लक्षण जैसे, महा पुरुष जानत है तैसे।
विधि निषेधकूं जो कूं जानै, ऊंच नीच बहु भेदनि मानै ॥८७॥
सो यह सकल निषेधे [illegible] भेद दृष्टिमें विधि मति मानौ।
विधिरु निषेध निषेधे देषौ, दुहुंत [illegible]हि बिधि लेषौ ॥८८॥
विधि निषेध पसु मानव मानै, पण्डित कहे हद्दे नहीं आनै।
ताते विधि निषेध भ्रम जानौ, मेरो रूप सकल करि मानौ ॥८९॥

दोहा—

विधि निषेध भ्रम जाननौ, ज्ञान कह्यौ जब कृश्न।
वेद बचन तब सुमरि करि, उधव कीन्हीं प्रश्न ॥२०॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादश स्कंधे श्री भगवत उधव संबादे भाषायां गुणीसमोध्यायाः ॥१९॥

उंधवउवाच—

चौपाई—

हे प्रभुजी तुम करुणा करौ, मेरो यह संसौ परिहरौ।
तुम्हरी अज्ञा कहीये वेद, ताहीमें दीसतु है भेद ॥१॥
विधि निषेद सो वेद बषानै, ताही ते सब कोई मानै।
तुम्हरी अज्ञा क्यों भ्रम लेषै, जाते विधि निषेध नहीं देषै ॥२॥
अरु ए प्रगट दीसे देवा, विधि निषेधके बहुविधि भेवा।
प्रगट विधि वरणरु अ ाश्रम, तिनके विविध भांति विधिक्रम ॥३॥
तिनके प्रगट फल स्वरगादि, अबकौ नहीं यह पंथ अनादि।
अरु निषेध प्रगट प्रति लोम, अवष्टादिक जे अनुलोम ॥४॥
वरणनिमें सक रहे जेतै, अरु तिनके कर्म पुनि तेते।
तिनके फल प्रगट नरकादि, कहेहुते अज्ञांइ न बादि ॥५॥
जाके फलहि वेद ज्यूं कहै, करै नर त्यूंही लहै।
अरु त्यौइ त्यदेसबय काल, प्रगट विधि निषेध गोपाल ॥६॥
अरु जो विधि निषेध नहीं सति, तो सुख अरु दुख फल असति।
कोई स्वरग नरक नहीं जावै, तो बहु श्रम करि विधिन करावै ॥७॥

अरु कहा कहीए बारंबार, तुम्हरे बचन आन प्रकार।
यह तो कह्यो तुम्हारो वेद, जाते विधि निषेधके भेद ॥८॥
देव पितर मुनि मानव जेते, वेद नयन करि देषे तेते।
विधि निषेध तिनके फल जानै, अरु त्यूही त्यूतेहूठानै ॥६॥
सकल तुम्हारी आज्ञा माहीं, ज्यूं ज्यूं थापे त्यूं बरताहीं।
सो मिथ्या क्यूं कहीए वेद, याको मोहि बतावो भेद ॥१०॥
द्वै विधि बचन बढ़ै संदेह, वहै सत्य किंधौ प्रभु येह।
यह पूरण सन्देह मिटावो, एक भांतिके बचन सुनावो ॥११॥
या विधि प्रेम ज्ञान बिसतारो, अपने रचे जीव निसतारो।
सुनि ऐसी उधवकी वाणी, तब बोले श्री सारंगपाणी ॥१२॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

उधव प्रम ज्ञान अब कहुं, तेरे सब सन्देह हि दहुं।
मैं भाषे हैं तीन उपाइ, क्रमरु भक्ति ज्ञान समझाइ ॥१३॥
ज्यूं जाको देष्यौ अधिकार, ताकूं तैसो कियो विचार।
जो भाषूं सब हिन सूं ज्ञान, तोते विषई तजैन आन ॥१४॥
ताते क्रम क्रम सकल छुड़ाऊं, लेकरि ज्ञान मध्य ठहराऊं।
ताते बचन सकल कह [illegible], विधि निषेधहु नहीं असति ॥१५॥
परि यह सकल ज्ञानके [illegible] ज्ञान लहे ते सकल निवारण।
ए तुम सीढ़ी ब्रह्मकी जानौ, ता[illegible] सन्देह न आनौ ॥१६॥
जिनि भंत्र सुख ज्यौं है त्यौं जानौ, ब्रह्म लोकलौं दुष करि मानौ।
ताते तिनके उदिम दहै, और सकल तजि थिर ह्वै रहै ॥१७॥

तिनको ज्ञान जोग अधिकार, थिर ह्वै करणो ब्रह्म विचार।
अरु जिनि विषय दुख नहिं जानै, अरु तिनके उद्दिम नहिं भानै१८
परि मम गुण सुनिकरि सुख मानै, मेरो भजन भलो करि जानै।
ताकूं भक्ति जोग अधिकारी, औसे ज्ञानै तत्व विचारी ॥१६॥
अरु जे विषयनके आधीन, तिनके उद्दिम सौले लीन।
कथा सुननको नहीं अवकास, अरु मम प्रीति नहीं आभास॥२०॥
तिनकूं करम जोग सुखदाई, इनतै और न श्रेय उपाई।
ऐ तीनूं भाषत हूं तोसूं, निहचल चित ह्वै सुनियौ मोसूं ॥२१॥
प्रथमहि करम जोग बिसतारूं, विषयी जीवनकूं निसतारूं।
मेरे बहुविधि गुण बिसतारा, कथा प्रसंग विविध प्रकारा ॥२२॥
तिनमें प्रीति न उपजे जो लूं, कर्म जोग नहीं तजीए तो लूं।
अरु जो लूं न बढ़ै वैराग, बिषयन कौ न मिटे अनुराग ॥२३॥
तो लूं करम जोग नहीं तजै, करम नहीं करि मोकूं भजै।
अपने धरम माहि थिर रहै, कबहूं भूलि निषेधनि गहै ॥२४॥
जज्ञ महोछव बहु विधि करै, सकल कर्म मम हित बिसतरै।
मनते इछा सकल मिटावै, सो जन सुरग नरक नहीं जावै ॥२५॥
ऐसे ज्ञान भक्तिकूं लहै, ताते करम कालिमा दहै।
उधव यह मानव तन ऐसो, सकल भूमि[illegible] नाहीं जैसो ॥२६॥
सुरग नरकके बंछे याकूं, परि क्यौं [illegible] तवे ताकूं।
ज्ञान भक्ति पातन करि ल[illegible] सेवन करि भवजल बहै ॥२७॥
जो ऐसो मानव तन पावै, सो समस्त कामना मिटावै।
तजै निषेध सकलई कर्म, अरु कामना हेत जे धर्म ॥२८॥

अरु फिरि नहीं बंछे नर देहा, प्रेम रतन नहीं षोवे ऐहा ।
यद्यपि बहुलो नर तन पावे, परि कछु ज्ञानादिक न रहाव ॥२९॥
मात पिता भाई कुल लोग, ज्ञान मिटावे करि सयोग ।
खान पान आदिक बहु साधे, बालापणतैं ताकूं बांधे ॥३०॥
तातै जो लग नाहीं मरै, तोलग जतन प्रथमहिं करै ।
या तनकूं मिथ्या करि मानैं, अरु पुनि ब्रह्म दानिकरि जानै ॥३१॥
तातै जतन निरन्तर करै, सावधानता हिरदै धरै ।
या तन मैं आसक्ति न होई, करै उपाइ मुक्तिको सोई ॥३२॥
ज्यूं पंषो तरु बासा करै, तामैं प्रीति माभि मन धरै ।
अरु ता वृक्षहि काटै कोई, जिनके हिरदै दया नहीं होई ॥३३॥
वृक्ष संगि जो पंषी परै, तो तिनकै बसि ह्वै करि मरै ।
परि जो प्रथमहि वृक्षहि त्यागै, काटत देषि आप उठि भागै ॥३४॥
आपहि ऐसी भांति बचावै, पीछे तहां रहै जहां भावै ।
त्यूं ही नरतन अरु आधार, आत्म पक्ष कीयो आगार ॥३५॥
ताकूं निस दिन करै प्रहार, सदा निरन्तर बार बार ।
ऐसे देषि धरै मन त्रास, प्रथमहि त्यागै तरुको बास ॥३६॥
मौमे आइ बसेरा करै, तातै बहुरिन जनमैं मरै ।
मानव तन भासा[illegible], मेरी कृपा हूतें यह पावा ॥३७॥
तामैं गुरु षेवट सु[illegible]नानकूल मैं पवन सहाई ।
तोहूं आपहि जो नहिं तारै, न[illegible] भवसागर डारै ॥३८॥
ताकूं आतमघाती जानौ, दूजौ आत्मघात न मानौ ।
अरु जो भवते होइ विरक्त, दुषमय जानि न होवे रक्त ॥३९॥

सो समस्त इन्द्रिय बसि कहै, मन निश्चल करि मोमै धरै ।
जो मन धारत अचल न होई, तो हूं आतुर होइ न सोई ॥४०॥
एकहि बार न सकल निवारै, क्रम क्रम सकल उपाधिहि टारै ।
कछु इक आसा पूरै मनकी, हरदै धारै मूल खलनकी ॥४१॥
देवे सो तजिवेके हेत; सावधान निति रहै सुचेत ।
आगे फलकी अवधि बतावै, दुख दिखाइ बिरक्त उपावै ॥४२॥
ऐसे क्रमहिं क्रम मन धारै, क्रम क्रम सकल विकार निवारै ।
इन्द्रिय गुण हिरदै नहीं आनै; स्वास जीति मनकी गति मानै ४३॥
मन जीतनकूं प्रेम उपाइ, याते मनगति जानीजाइ ।
जैसे अवनि तुरंगम होई, अश्व धार वसि होइ न सोई ॥४४॥
तब तापर चढ़ि करि असवारहिं, हठ नहीं करै ऐक ही बारहि ।
कछु हयकौ रुष सहित चलावै, पीछे दे चापक दोरावै ॥४५॥
ऐसी विधि हमको बसि करै, त्यों जोगी क्रम क्रम मन धरै ।
सांष्य विचार निरंतर करै, जा विधि यह जग उपजै मरै ॥४६॥
तत्वनकी उतपति विचारै, ज्यूं ज्यूं विनसै त्यूं मन धारै ।
सकल उपाधि उरैकी देषै, आपहि परै सकलते लेषै ॥४७॥
या विधि जो लग मन बसि होई, तो लगकरै विचारहि सोई ।
ऐसी विधि जब सांषि विचारै, गुरुके ब[illegible] ताकूं [illegible]मैं धारै ॥४८॥
तब सबही त होइ विरक्त, मन घरमें [illegible] अनुरक्त ।
जोग पंथजे अष्ट प्रकार, अरु यह आतम देह विचार ॥४९॥
अरु मम श्रवन कीरतन ध्यान, मन जीतनकूं पंथ न आन ।
जोग रु सांषि भक्ति ऐ तीनि, सब पंथनिमैं लीन्हे बीनि ॥५०॥

इन ते चौथो नहीं उपाई, जाते मनमो मैं ठहराई ।
ताते चौथो कछू न करणो, इन पंथनि मोकूं अनुसरणो ॥५१॥
अरु जो कदे पाप ह्वै आवै, सावधानता उर न रहावै ।
तोहू औरन करै उपाई, सौ सौ पाप इन्हे ते जाई ॥५२॥
और करै नाना विधि जोई, सो सो अधिक अधिक मल होई ।
विधि निषेध सब हो मल जानौ, कहूं कछू उतिम मति मानौ ५३॥
विधि निषेध ए कीन्हें दोई, जातै बंधे रहे सब कोई ।
भय त बहु आरंभ न करै, अपने अपने विधि आचरै ॥५४॥
ता पीछे सब बंध जनाऊं, करूं अबंध सकल छुड़ाऊं ।
सकलन त्यागै ऐकही वार, तातै कीन्हें बहुत प्रकार ॥५५॥
तातै विधि निषेध नहीं करणा, सकल त्याग्य मोमैं मन धरणा ।
विधि निषेध जिन मिथ्या जाने, अरु भव-सुख दुर्ख करि माने।५६॥
परि समर्थन जिवेकूं नाहीं, प्रबल ज्ञान प्रगट्यो नहीं माहीं ।
ताकूं भक्ति जोग अधिकार, सहजे छूटे सकल विकार ॥५७॥
मेरी कथा निरन्तर सुणै, हृदय मांहि मेरे गुण गुणै ।
दृढ़ बिसवास हृदेमें राष्यै, मेरे ग्रण नामनि निति भाषै ॥५८॥
यों यद्यपि विषयनमें रहै, परि मन बच क्रम त्यागे चहै ।
सो निति भक्ति [illegible] भजे, मो बिचि अन्तराइ सौ तजे ॥५९॥
तंत्र पंथ पूजा बिस[illegible]हित जो कछू सो सब करै ।
या बिधि सकल बासना नासै, [illegible] हृदै प्रकासै ॥६०॥
तातै ब्रह्म रूप मय जानै, द्वैत भाव मिथ्या करि मानै ।
संसय करम भरम भय भागै, अहंकार तजि सोवत जागै ॥६१॥

जहां तहां मोहीकूं देषै, मो बिनि और कछू नहिं लेषै।
ऐसो ह्व मम रूप समावे, याही जनम और नहीं पावै ॥६२॥
तातै जाके मेरी भक्ति, निस दिन मम चरणन अनुरक्ति।
ताके यद्यपि नाहीं ज्ञान, अरु नाहीं बैराग विधान ॥६३॥
तोहू सो मोकूं अनुसरै, अति दुस्तर भवसागर तरै।
वरणाश्रमके धरमनि करै, बहुत भांति तपकूं अनुसरै ॥६४॥
निसदिन सांषि ज्ञान विचारै, गहि बैराग सकल भय डारै।
साधे जोग अष्ट प्रकार, दान ब्रतादिक बहु प्रकार ॥६५॥
ऐ सब आपहि तै चलि आवै, मम जन के आधीन रहावै।
मेरी भक्ति सकल सिरताजा, जैसे सकल नरनमैं राजा ॥६६॥
भुक्ति मुक्ति पल नहीं परिहरै, मम जनकी निति सेवा करै।
अरु यद्यपि मैं बहु विधि कहौं,भक्ति मुक्ति कछू दीन्हीं चहौं ॥६७॥
परि मेरो निज जन नहीं लेवे, सकल त्यागि मम चरणनि सेवै।
निरपेक्षता परम है श्रेय, मो बिनि सकल वस्तुको हेय ॥६८॥
निसप्रहता यह सुख अपार, जहां न काल क्रम अधिकार।
मैं निसप्रह निसप्रह जो होई, मेरो भक्त कही जे सोई ॥६९॥
मेरे सम्य लछिण है जामै, मेरो रूप जानियो तामै।
सबतै निसप्रह निति मम भक्त, मैं निस[illegible] ताकूं अनुरक्त ॥७०॥
तातै निसप्रहता सुष ऐसो, सकल [illegible] नाहीं तैसो।
निसप्रह जन मेरो सुख पावैं, संप्रहावतकै निकट न आवै ॥७१॥
जे एकंत भक्त है मेरे, तिनि[illegible] पुनि पाप नहीं नेरे।
राग द्वेष बरजित सम दरसे, त्रिगुणातीत ब्रह्मको परसे ॥७२॥

ऐ मैं तीन पंथ बिसतारे, इन तैं बहुत जीव निसतारे।
जेई जे जन इनमैं आवै, तेई ते मेरो पद पावै ॥७३॥

दोहा

जे जन पंथन कूं तजे, करे करम अधिकार।
तिन पसु जीवनकूं कहै, विधि निषेध बिसतार ॥७४॥

इति श्री भागवते महापराणे एकादस स्कंधे श्री भगवत उधव संवादे भाषायां क्रम भक्ति ज्ञान निरूपण नाम वीसमोध्यायः २०

श्रीभगवानुवाच—

चौपाई—

ज्ञान भक्ति अरु क्रम उपाई, आप मिलनको दीये बताई।
परि जे अति ही पसु अज्ञान, इनको छोड़ि करै कछु आन ॥१॥
बहुत कामना हिरदे धरै, तिन हित वहु क्रमनि बिसतरै।
ते पशु दुख निरन्तर पावे, भव प्रहा माहि बह जावे ॥२॥
तिन हित व्याधि निषेध डिसतारे, तिनके वहु आरंभ निवारे।
अपनो अपनो [illegible]ार, तामैं बरते तजि बिसतार ॥३॥
ऊचौ नीचौ सब पा[illegible] अपने करम मांहि अनुसरे।
सो सो तिन तिनको विधि जानो, तातें और निषेधहि मानो॥४॥
ऐ कछु वस्तु बुधि मति देखो, जीव पशूनकूं बंधन लेखो।
उपजी वस्तु समस्त असुध, परि कहि भाषै सुध असुध ॥५॥

क्रम क्रम सकल छुड़ावन कारन, मैं यह कीयो भेद उचारण ।
पाप छुड़ाइ धरम ग्रहाऊं, या विधि बहु आरम्भ छुड़ाऊं ॥६॥
यह समस्त जगको व्यवहार, याते जगको वार न पार ।
सीत जलतेजपवन आकाश, सब जग पंच भूत प्रकाश ॥७॥
ब्रह्मादि कथा वर प्रजंत, पंच भूत करि सब बरतंत ।
अरु एके आतम सब मांहीं; ताते भेद कहूं कछू नाहीं ॥८॥
परि तथापि मैं भाष्यौ वेद, ताकरि कीन्हें नाना भेद ।
जिनके स्वारथ सुखके हेत, विधि उचारे फलनि समेत ॥९॥
देश काल गुण द्रव्य सुभाव, इनके भाषे नाना भाव ।
ऐक निषेध ऐक विधि भाषै, यौ संकोच मांहि सब राषै ॥१०॥
जौने देश कृष्ण मृग नाहीं, अरु जहां द्विज सेवा न कराहीं ।
अरु जो कृष्ण मृगौ बहु रहै, परि मलेछ तहँ बासा गहै ॥११॥
अरु यद्यपि तुरकौ जहँ नाहीं, परि मग हर आदिनुके मांहीं ।
अरु जो मग हरदि परिहरै, परि कदरजता दूरि न करै ॥१२॥
अरु कदरजता मेटी होई, परि जो होवे ऊसर सोई ।
सो सौ देश निषेध कहीजैं, तिनमें बासादिक नहीं कीजे ॥१३॥
तिन तै और देश सुचि जानै, तिन मांहीं बासादिक ठानै ।
अरु जो काल धरमको नांहीं, सूतक आदि[illegible] मांहीं ॥१४॥
सौ सौ काल निषेध कहीजे, उतम सो [illegible] विधि कीजै ।
वस्त्रादिक जलादिकन सुध, क्षुद्रादिक तै होइ असुध ॥१५॥
सुध असुध बचन तै त्यौही, सूघे तै पुष्पादिक यौही ।
तबही पाक कस्यौ सो सुध, बहुत कालको होहि असुध ॥१६॥

कहीए भूमि मसान असुध, बहुत काल तै कहीए सुध ।
भूमै जो वर्षाजल होई, बहुत कालतै सुधै ह सोई ।।१७।।
ऐसी भांति औरहु जानै, सुध असुध है भेद पहिचानै ।
बिना सनान सुध बालादिक, सनानादिकतै सुध जुवादिक।।१८।।
जीरण वस्त्र अधनको सुद्ध, द्रव्यवंतको परम असुद्ध ।
औरे सकल सक्ति अनुमान, सुद्ध असुद्धहिं कह्यौ बखान ।।१६।।
सो सब देश काल अनुसार, विधि निषेधको कह्यौ बिचार ।
धान रु पात्र वस्त्र गजदंत, तेल रु घृत हेमाहि अनंत ।।२०।।
काल अग्नि ह्वै माटी बाई, यथा जोग ह्वै सुध कराई ।
अरु जो कछू लग्यो दुरगंध, जौ लगि धोयौ मिटे न गंध ।।२१।।
तौ लगि जाणि असुद्ध न गहिये, गंध गये ते निर्मल कहिये ।
सक्ति अवस्था तपस्थान, संस्कार सुभ करम रुज्ञान ।।२२।।
मम सुमरण ते होवे सुद्ध, करै अन्यथा होय असुद्ध ।
मेरो मंत्र लिये विधि मानै, मंत्र विहोन निपेधहिं जानै ।।२३।।
अरपै मोहिं सुध सब कर्म, करै बिपरजै होय अधर्म ।
देस रु काल करम अरु करता, द्रव्य मंत्र ये षट आचरता ।।२४।।
ये जो सुद्ध होंय तो सुद्ध, ये असुद्ध तो होंय असुद्ध ।
अरु कहुं होवे सु[illegible]द्र, कहुं असुद्ध यों होवे सुद्ध ।।२५।।
सुद्ध असुद्ध भेद है जो[illegible]राज दहूंको है ता ताके ।
जो कहिये ऊंचेको धर्म, नीचे कूं है वहै अधर्म ।।२६।।
अरु जो कछु धर्म नीचेको, सोई है अधरम ऊंचेको ।
ताहीतें दोऊ भ्रम जानै, मेरो भक्त कहे नहिं मानै ।।२७।।

जो कबहूं विष अमृत लीजे, ले ऊंचे नीचेको दीजे।
तो तिनमें तो भेद न होई, मरनो अमर एक सम दोई ॥२८॥
यूं ये विधि निषेधड़ होवैं, ऊंच नीचकी ओर न जोवै।
परि ये दोऊ हैं कछु नाहीं, आप विचारो अंतर माहीं ॥२९॥
नीचे नीच करम आचरै, मदिरा पान आदिकउ करै।
तौहू उनको दूषण नाहीं, सो नित है दूषण ही माहीं ॥३०॥
अरु जो गृही करतु है संग, ऋतू समय युवती परसंग।
सो ताकूं कछु दूषण नाहीं, सो नित ही है दूषण माहीं ॥३१॥
जैसे परयो धरणिपर कोई, ताहि न परनैको भय होई।
परि जे कछू चढ़े हैं ऊंचे, संग करै ढह आवै नीचे ॥३२॥
ताते तिनको संग न करणो, मन बच क्रम सकल परिहरणो।
ज्यूं ज्यूं प्राणी छोड़ै क्रम, त्यों त्यों छूटै पावै सरम ॥३३॥
क्षेम धर्म सबहिनको यह है, मिटै सोक मोह सन्देहै।
या निमित्त मैं भेद सुनाए, थोरे थोरे मैं ठहराये ॥३४॥
पीछे भ्रम कहि सकल निवारे, ऐसी भांति जीव निस्तारे।
जब नर विषयन उत्तम जानै, तब तिनमें आसक्तिहि ठानै ॥३५॥
तातैं हृदय उपजे काम, जाते होय कालको धाम।
ताही हूते क्रोध उपजावे। तब अविवेक [illegible] आवै ॥३६॥
सो अविवेक हरै सब ज्ञान, ताते प्रानी मृतकि समान।
तातैं काज अकाज न जानै, निसि दिन बहु विधि चिन्ता ठानै॥३७
सब पुरुषारथ होवै हीन, निस दिन रहै दुखित अरु दीन।
तातैं समझै आपु न आन, मिथ्या जीवै वृक्ष समान ॥३८॥

ज्यूं होवै लुहारके षाल, स्वांस लेत यों खोवै काल ।
अरु पुनि कहै करम फल तेते, स्वर्गादिक नाना विधि केते ॥३९॥
तेते कहिकरि रुचि उपजावे, मेटि निषेधहिं विधि करवावै ।
जैसे औषधकों पिलवाइय, बालककों मोदक दिखलाइय ॥४०॥
औषधको फल मोदक नाहीं, औषधहूतें रोग सकु जाहीं ।
स्वर्ग हेत जो करमनि करै, पुनि सुन तत्व फलहिं परिहरै ॥४१॥
तब अनरथ तजि अरथहिं पावै, मोमैं ह्वै निष्कर्म समावै ।
अरु ये जबते जनमहिं पावै, तबते आपुहि विषय कमावै ॥४२॥
पुत्र कलत्र कुटुम्बरु प्राना, इनके हेत चहै सुख नाना ।
आपु आपुको कर अनर्थ, तिनको मूरख जानै अर्थ ॥४३॥
ऐसे याभ्रममें नित भरमैं, कहै न जाते सुखको मरमैं ।
अरु तिनको जो भरमत देखै, सदा निरंतर दुःखित लेखै ॥४४॥
सो तिनको कबहूं न बढ़ाव, अर्थ अरु काम न कहै छुड़ावै ।
ताते मैं तो सब विधि जानौ, कैसे काम रु अरथ बखानौ ॥४५॥
पै जे कछु श्रुति मांहिं सुनाए, अर्थ धर्म अरु काम बताए ।
ते ते सकल छुड़ावन कारन, हेत विचार कियो उचारन ॥४६॥
ऐसे वेद तत्व नहिं जानै, मूरख पुष्पत बैन बखानै ।
फलनि हेत आरूहै क्रम, तिनको कहै न छूटै भ्रम ॥४७॥
कामी कृपण लोभ अधिकारी, तृष्णा आकुल सदा विकारी ।
फूलन माहिं फलहिं करि मानै, कामना लाग तत्व नहिं जानै ।
मैं तिनके नित हिरदय माहीं, परि तौहूते जानै नाहीं ।
तातें यह सब जक्त पसारा, अरु समस्त जगके आधारा ॥४९॥

जाकी सक्ति पाप सब बरतै, चुम्बक संग लोह जिमि निरतै।
जाकी आज्ञा सबई मानै, कोई मरजादा नहिं मानै ॥५०॥
ऐसो मैं प्रगट सब ईस, जैसें सकल देहमें सीस।
परि ते काम करै मति अंध, ना मोहिं देखै अरु न वंध ॥५१॥
जैसे नयन रोगमय होवै, आगे होती वस्तु न जोवै।
यों अज्ञान अन्ध क्रमपष्ट, देखै नहीं निकटमें इष्ट ॥५२॥
ते मो बिन मम मतौ न जानै, हानि जीवनि यज्ञादिक ठानै।
ते पुनि तिनहिं हतै परलोक, जन्म मरन पावे भय सोक ॥५३॥
जब याके बहु हिंसा देखी, हनि हनि जीव जीवका पेखी।
तिनके हेत कही यह बानी, हिंसा यज्ञहिं माहिं बखानी ॥५४॥
पसुवध एक यज्ञमें भाष्यौ, और समस्त दूर करि नाख्यौ।
जब प्राणी तामें ठहरावै, तब पुनि खेदहिं सकल छुड़ावै ॥५५॥
या निमित्त पसु-हिंसा भाखी, सो मूरखनि तत्व करि राखी।
तातें बहु विधि करमनि करै, बहु कामना हिरदे धरै ॥५६॥
पसुहिंसा करि करै विहार, जे दुख पावै बहुत प्रकार।
देव पितर भूतनिको तजै, उरते सुख इच्छा नहिं तजै ॥५७॥
स्वप्न तुल्य स्वर्गादिक लोक, तिनको उत्तम सुनियो बोक।
तिनकी इच्छा हिरदे धरै, द्रव्य खरच कर[illegible]स्तरै ॥५८॥
विघनि होहिं बहु करमनि माहीं, स्वर्गादिक न उपावै नाहीं।
ज्यों कोइ सायर पास रहावै, धनहित ग्रहके धनहिं लगावै ॥५९॥
पीछे परै विघन जे कोई, तो दून्यों ते जावै सोई।
त्यों जे बहु विधि करम उपावैं, ते पशु दुहूं लोक ते जावै ॥६०॥

सात्विकते जे देवनि भजैं। जक्षादिकन राक्षसी तजैं।
तामस भूत प्रेत बहु सेवे, तन मन धन तिन तिनकूं देवै ॥६१॥
इहां जग्य बहुत विधि कीजै, विप्रन बहुत दक्षिणा दीजै।
ताते सुरगादिक सुख पैये, तहां बहुत विधि भोग भुगइये ॥६२॥
पुनि जब होवै तिनको अंत, तबहू जे भूमें धनवंत।
ऐसी भांति कामना करै, तिन निमित करमनि विस्तरै ॥६३॥
तिनकूं मेरी बात न भावै, भक्ति कहांते हिरदे आवे।
यदपि वेद धरम उच्चारै, धर्म अरु अरथ काम विस्तारै ॥६४॥
परि तथापि ब्रह्मइ बतावै, क्रम क्रम दूजौ सकल छुड़ावै।
परि श्रुतिको आसय नहिं जानै, ते कछू और और बखानै ६५॥
सब्द ब्रह्म महा दुर्बेध, जाको कोई बहैं न सोध।
सूक्ष्म स्थूल रूप द्वै जाके, मो बिन भेद लहै को ताके ॥६६॥
प्राण सरूप परासे नाम, पस्यंतीको मनमें धाम।
तीजी कंण्ठ मध्य मासूल, चौथी प्रगट वैषरी थूल ॥६७॥
तिनको भेद कोइ नहिं जानै, ताते और और बखानै।
अतिपार कोई नहिं पावै, ज्यों सागर थाह्यौ नहिं जावै ॥६८॥
अति गंभीर अरथ है याको, कोई भेद न जानै जाको।
मैं सबहिनमें अन्तर[illegible] शक्ति अनन्त सकलको स्वामी ॥६९॥
सर्व व्यापक ब्रह्म सरूप, लिप्त न कितहू प्रेम अनेक।
सोई व्यापक सबहिन माहीं, सब्द रूप दूजो कोउ नाहीं ॥७०॥
कमल नालमें तंतू जैसे, सब्द रूप सबमें मैं ऐसे।
सोइ प्रगट्यो बहु विस्तार, मन करि हृदय हूते मुखद्वार ॥७१॥

ज्यों मकरी तंतुनिविस्तारै, करि विस्तार बहुरि संहारै।
वेद रूप त्यों मम विस्तार, ॐकार मूल आकार ॥७२॥
तातें अक्षर बहुत प्रकार, तिनतें छन्द वार नहिं पार।
चार चार अक्षर अधिकाहीं, छन्द होत ऐसी विधि जाहीं ॥७३॥
एकहिं ते यों होये अनेक, बहुस्यों सकल एकके एक।
गायत्री अक्षर चौबीस, उष्णिक छन्द अष्ट अरु बीस ॥७४॥
जो बत्तीस अनुष्टुप सोहै,ब्रहती नाम तीस षट को है।
पंक्ति नाम अक्षर चालीस, त्योंही त्रिष्टुप चवालीस ॥७५॥
जगती छन्द अष्ट चालीस, कहत पार नहिं को बरीस।
या विधि प्रगट वेद विस्तारा, जाको कछू वार नहिं पारा ॥७६॥
कहा हृदयमें कहा बतावै, लै करि अन्त कहां ठहरावै।
ऐसो मतो न जानै कोई, मो बिन भावै विधि किन होई ॥७७॥
जग्य रूप कहि कोकूं राषै, सकल देव मैं मोकूं भाषै
मेरे हेत करम करवावै, मोते उपज्यो सकल बतावै ॥७८॥
अति संकलको भाषै नास, मोकूं कहै नित प्रकास।
नाना रूपनि वृथा जनावै, एक ब्रह्म करि सकल सुनावै ॥७९॥
जैसे सांप जेवरी माहीं, यों सब जगत [illegible] नाहीं।
मोकूं नित निरंजन भाषै, अज्ञान सकल दूरि करि नाषै ॥८०॥
ताते श्रुति निति मोहि बतावै, परि यह तत्व न कोई पावै।
जो पावै सो मम आधीन, ह्वै निष्काम होय लौलीन ॥८१॥

दोहा

यों सुनि करि श्रुति तत्वको, उद्धव लह्यौ अनंद ।
प्रश्न करी पुनि कृष्णसों, जातें छूटै द्वंद ॥८२॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्रीभगवान उद्धव सम्वादे भाषायां आश्रम धर्म निरूपण नाम सप्तदसो अध्यायः ॥

उधव उवाच—

हे देव सत तत्व हैं केते, कहौ कृपा करि मोसों तेते ।
जिनको रचित सकल संसारा, जो दीसै नाना विस्तारा ॥१॥
तुमतो अष्टाविंस तत कहे, ते मैं दृढ़ करि मनमें गहे ।
परि बहुते ऋषि बहु विधि कहे,अस तिनते सुनि त्योंही गहे ॥२॥
कोई कहै तत्व छवीस, अरु त्यूं केई कहै पचीस ।
केई षट अरु केई चारी, केई भाषै सप्त विचारी ॥३॥
केई नवकी करै विवेक, केई भाषै दस अरु एक ।
केई तत्व बतावै षोड़स, अरु त्यों एक कहै त्रियोदस ॥४॥
केई भाषैं दस अरु सात, ये रिष्यमते सुम्रति विष्यात ।
कौन प्रयोजन लै लै भाषै, अपने अपने मत्तहिं राष ॥५॥
कृपा करो निज केह सुनाओ, सत्य मतौ सो मोहिं बताओ ।
सुनि उद्धवके वैन रसाल, कृपासिन्धु बोले गोपाल ॥६॥

श्री भगवानुवाच—

हे उद्धव ज्यों ज्यों सब भाषे,जितने जितने तत्वनि राषे ।
तेते तुम सब जानौ सत्य, तत्व विचारो सबै असत्य ॥७॥

माया देखि कहै जो जेते, माया माहिं सत्यई तेते।
मोहिं देखि जो तिनको देखै, तो समस्तई मिथ्या लेखै ॥८॥
माया माहै युक्ति विचारै, अपनो अपनो मतो उचारै।
यह यों यह यों यह यों नाहीं, कहै सबै मिलि आपन माहीं ॥९॥
यह यों ही है ज्यों मैं भाष्यो, तेरी कही सत्य नहिं राष्यो।
या विधि मम माया भरमाये, तिन नाना विधि पंथ चलाये ॥१०॥
मम मायाकी शक्ति अनन्त, तिनके पंथनिको नहिं अंत।
जब सम दम उर अन्तर आवै, तब ये भेद सबै मिटि जावै ॥११॥
जेते तत्व सकल मायाके, जिनतें मते भये ता ताके।
क्रम क्रम तत्व उपजते गये, त्यों त्यों भेद बहुत विधि भये ॥१२॥
जैसे एक वृक्ष विस्तार, ताकि संपति बहु प्रतकार।
कछु साखा बहुतेक प्रसाखा, अरुतिनके बहुविधि उपसाखा ॥१३॥
तिनको बहुत भांति विस्तार, पान फूल फल विविधि प्रकार।
अरु तौ वृक्षहिं वरणै कोई, ज्यों ज्यों कहै सत्य त्यों होई ॥१४॥
थोरे होई कहै जो साखा, बहुत होहिं मिलिये पर साखा।
उपसाखा मिलि बहु विधि होवै,ते सब पंथ सत्य कर जोवै ॥१५॥
यों संसार वृक्ष विस्तारा, माया मूल बहुत प्रकारा।
तत्व सकल साखा प्रसाखा,अरु तिनके बहु[illegible] उपसाखा ॥१६॥
ताते ज्यों बरण्यों त्यों सत्य, परि माया सकल आसत्य।
ज्यों ही ज्यों जिनके मन आयौ,त्यों हीं त्यों तिन बरन सुनायो॥१७॥
माया करि बंध्यो सो आतम, तातें छोड़ै सो परमातम।
ए द्वै अरु वे जड़ चौबीस,तिन कोमिले सकल छबीस॥१८॥

अरु जो बन्ध मुक्ति है दोई, ते भ्रम माया सत्य न कोई।
ताते जीव ब्रह्म द्वै नाहीं, यूं पचीस जानौ मन माहीं ॥१९॥
सत रज तम ये गुण हैं जेते, जड़ सरूप मायाके तेते।
रज उतपति सांतिक प्रतिपाल, तामस रूप ग्रस्त है काल ॥२०॥
राजस हूतें करम अधिकार, तामसतें अविवेक अपार।
सांतिक गुण ते उपजे ग्याना, ये हैं मायाके गुण नाना ॥२१॥
इनते परे आतमा मानो, तातें ब्रह्म रूप करि जानौ।
पंच बीस ताहीतें कहें, अरु त्यों ही मुनि औरे गहे ॥२२॥
सो है काल गुणन विस्तारे, सूत्र स्वभाव सो सक्ति पसारे।
तातें काल रूप हरि जानौ, अरु स्वभाव महं तत्त्वहिं मानौ ॥२३॥
ताते तत्व अधिक नहिं गहिये, पंच बीस छबीसहिं कहिये।
प्रकृति पुरुष मंह तत अहंकार, तन मात्रा ये पंच प्रकार ॥२४॥
करण त्वचा नयन रस घ्राण, ये पंच इन्द्रिय हैं ज्ञान।
वायु उपस्थ चरण कर बानी, पंच कर्म इन्द्रिय यह जानी ॥२५॥
मदन दसहु इन्द्रियनको राजा, जाकी सक्ति करै सब काजा।
क्षिति जल तेज पवन आकास, ये अट्ठाइस तीन गुण पास ॥२६॥
गति उतसर्ग करम अरु बचना, ये पंचौ इन्द्रिय फल रचना।
ताते अष्टाविंसति कहे तत्व, अधिक न भाषै ज्ञानी सत्व ॥२७॥
श्रष्टि आदिते माया एक, पुरुष शक्तिते भये अनेक।
तन मात्र महं तत्व अहंकार, ए है कारण सत प्रकार ॥२८॥
पंचभूत अरु मन इन्द्रिय दस, कारज रूप प्रकृति ये षोड़स।
सत रज तम गुण तीन प्रकार, तिनतें रच्यौ सकल विस्तार ॥२९॥

कारण करण प्रकृति ये जानौ, पुरुष निमित्त रुसाक्षी मानौ।
इच्छा शक्ति पुरुषते पावै, मिलि समस्त तब श्रष्टि उपावै ॥३०॥

सप्त धातको सब विस्तार, आतम द्रष्टाको आधार।
सकल तत्व सप्तहिं में आये, ताते एकनि सप्त बताए ॥३१॥

पंच भूत आपहिं उपजाए, तिनके बहु विधि देह बनाए।
आप प्रवेस कियो हरि तनमें, चेतन ही सत है जिन जिनमें ॥३२॥

ऐसी विधि षटको विस्तार, आपहिमें बहु करै विचार।
पृथ्वी आप तेज त्रय तत्व, अरु आतम निर्मित सब सत्व ॥३३॥

या विधि चार तत्व विस्तार, ऊंचौ नीचौ सब संसार।
पंचभूत तन मात्रा पंच, पंच इन्द्रिय मिलि सब प्रपंच ॥३४॥

मन आत्मा मिले दस सात, तत्व सप्त दस जानौ तात।
मन आत्मा एक करि जानै, तेजन षोड़स तत्व बखानै ॥३४॥

पंचभूत अरु इन्द्रिय पंच, ब्रह्म जीव मन केर प्रपंच।
ऐसी विधि करि पंथ चलावै, तेरहको सब जगत बतावै ॥३८॥

इन्द्रिय पंच पंचई भूत, आतम मिलि सब जग उद्भूत।
ऐसी विधि ऐकादस कहै, त्यूहीं त्यूं सुनि हरदै गहै ॥३७॥

पंच भतमन बुधि अहंकार, आत्मा मिलि नवको विस्तार।
ऐसी विधि बहु मारग कहै, युगति विचारि हृदयमें गहै ॥३८॥

प्रकृति पुरुष को लहै विवेक, इनको जान एकको एक।
ऐसो सुनि तत्वनको ज्ञान, उधव पूछ्यो प्रभुसो जान ॥३९॥

उधव उवाचः—

हे प्रभुजी यह ज्ञान सुनाओ, मेरे उरको भ्रमहिं मिटाओ।
चेतन ज्ञान रूप अविनासी, सुधा नन्द समप्रेम प्रकासी ॥४०॥
ऐसो आतम तुम्हरो रुप, परै गुणनि ते प्रेम अनूप।
जड़ विनासमय प्रेम असुद्ध, दुख रुपपल सुख न सुध ॥४१॥
ऐसी प्रकृति पुरुषतें न्यारी, तौहू भई प्रमपियारी।
प्रकृति माहिं आतम मिलि त्यौ, अरु आत्मा प्रकृति करि गह्यौ ॥४२॥
इनमें भेद न मान्यौ परै, एकमे कहै सब अनुसरै।
इनमें प्रकृति कहां लो कहिये, कौन आत्मासो दृढ़ गहिये ॥४३॥
करि करुणा वाणी विस्तारौ, बचन बान संसय परिहरौ।
तुव माया बंध्यौ संसारा, तुमही हूतें होय उधारा ॥४४॥
तुमही मायाकी गति जानौ, कृपा करी तब तुमही भानौ।
बानी सुनी भक्त अपनेकी, तब बोले श्री कृष्ण विवेकी ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच—

हे उधव यह ज्ञान अगाध, कोई एक लहैं मम साध।
सो यह ग्यान सुनाऊं तोहिं, तू है सदा अनुव्रत मोहिं ॥४६॥
उधव प्रकृति रचे संसार, सूक्ष्म स्थूल विविध प्रकार।
उपजै बरतै होय विनास, तासं आत्मानित्य प्रकाश ॥४७॥
उधव यह है मेरी माया, तिनसे रज तम गुण उपजाया।
तिनको त्रिविध सकल विस्तार, जाकौ कछू वार न पार ॥४८॥
त्रिविधि कहनकूं परि बहु भेद, जिनतैं जीव लहै निति षेद।
अध्यात्म अधिदेव अधिभूत, त्रिविधि रूप सब जगवदभूत ॥४९॥

द्रिग अध्यात्म रूप अधिभूत, रवि अधिदैवत मिलि अनुसूत ।
तीनूं मिले परसपर जबहीं, तिनकौ कारिज सीके तबही ॥५०॥
तीनूं बिना कछू नहिं होई, तीनू मिलि बरतै सब कोई ।
त्वचासपरस पवन त्यूं जानौ, करणरु सब्द दिसायौ मानौ ॥५१
नासागन्ध अस्वनी सुता, जिह्वा रस रु बरण जलजुता ।
चित्त चेतना अन्तरजामी, बुधि बोधना ब्रह्मास्वामी ॥५२॥
अहङ्कार अहंकरता रुद्र, मन मानवौ देवता चन्द्र ।
या विधि त्रिविधि प्रपंच पसारा, सकल परे आतम निज सारा॥५३
इन तीनू बिनि जक्त न होई, ते आतम बिनि रहै न कोई ।
आदि सकलकी आतम ऐक, जाते चेतन होहि अनेक ॥५४॥
आतम स्वयं प्रकास अबिनासी, चेतन रूप सकल प्रकासी ।
ऐ सब आतम कै आधार, अरु आतमा सकल कै पार ॥५५॥
बिनि आतमा कछू नहीं होई, अरु आतमा न जाणै कोई ।
महतत तै उपज्यौ अहंकार, तिहुं गुणनि कौ त्रिविधि प्रकार॥५६॥
सो अज्ञान मूल करि मानौ, ताकौ कीयो जक्त भय जानौ ।
सो आतमा आप गहि लीयौ, भवभय आप आपकूं कीयौ ॥५७॥
आतम सदा ऐक ही रूप, अनहंकार तै परे अनूप ।
सो जब रूप आपनौ जानौ, तब हो सकल उपाधि सानौ ॥५८॥
सो कछू है प नहीं उपाधि, परि आतमा लई करि व्याधि ।
समझै जबहि आपनौ रूप, तब आतमा तजै भवकूप ॥ ५९ ॥
अरु तब रूप आपनौ जानै, जब मम चरण हरदेमें आनै ।
यद्यपि मिथ्या सब संसार, जो कछु दीसै बिविधि प्रकार ॥ ६० ॥

परि जो लौं नहिं मोकू भजै, तो लौं निज अज्ञान न तजै।
जब ही मेरी सरणिहि आवं, तबही आतम ज्ञानहि पावे ॥ ६१ ॥

दोहा।

ऐसे श्रीमुख वेन सुनि, प्रकृति पुरुषको ज्ञान।
उधव कीन्हीं प्रश्न तब, हरिजन परम सुजान ॥ ६२ ॥

उधव उवाच—

तुम करि रहित बुधि है जिनकी, कहिए देव कौन गति तिनकी।
सकल वियापी आतम एक, क्यौं करि पावे देह अनेक ॥ ६३ ॥
अरु शुभ अशुभ करम है जेते, त्रिगुण रचित कहिये सब तेते।
तिन करमनि निह करम बंधावै,क्यू करि जौनि अजौनी पावै॥६४
अमर मरै कैसे करि देवा, याको मोहि बतावो भेवा।
यह तुम विना न कोई जानै, यद्यपि विद्या वेद बषानै ॥ ६५ ॥
जो कछू पढ़ै बंध सो होई, तातै तत्वनि जानै कोई।
या बिधि उधव पूछयो ज्ञान, तब हंसि बोले श्रीभगवान ॥ ६६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

उधव यह मन परम विकारी, सब इन्द्रिनि माहिं अधिकारी।
इन्द्रिन ह्वै सबई मन करै, सुखहित बहु उद्यम बिसतरै ॥ ६७ ॥
सो तन तजि दूजे तन जावै, तहांई तहां आतमा आवै।
जिन जिन सुखनि सुनै अरु देखे,तिन तिनकूं उत्तिम करि लेखे॥६८॥
तिनकौं सो मन निस दिन ध्यावे, यह तन षीन भए तहँ जावे।
यह तन पाइ बिसारै वाकूं,जनम मरण कहियत हैं ताकूं ॥ ६९ ॥

जातन मैं बांध्यौं अभिमान, छोड़े पूरब तन जो आन।
जनम मरन आतमकूं सोई, दूजो जनम मरण नहिं कोई ॥ ७० ॥
जैसे सुपन मनोरथ जावे, यह तन छोड़ि और ही पावे।
तब या तनकी सुधि न रहै, वाही तनको आपहि कहै ॥ ७१ ॥
जनम मरण स्मृतिको होई, आतम जनम मरण नहिं सोई।
और कछू आतम नहिं मरे, अरु कबहुं नाहीं अवतरे ॥ ७२ ॥
यों तनमैं मनको अभिमाना, तातै तन उपजत है नाना।
ते सब आतमके आधारा, तन मन बुधि चित्त अहंकारा ॥ ७३ ॥
तिन संगति आतमकूं दुख, तिनहित जे बिनि पल नहीं सुख।
उधव सकल देह है जेते, सदा सकल बिनसत है तेते ॥ ७४ ॥
काल नदी प्रवाह प्रचण्ड, ताकरि पलक परत नहीं षण्ड।
जसे नदी निरंतन बहै, पर देखनकूं त्योंही रहै ॥ ७५ ॥
अरु जो अरचि निरन्तर जावे, पर दीपादिक तहां रहावे।
अरु जैसे सब बृक्षनके फल, दीखे त्यूं पर थिर नाहीं पल ॥ ७६ ॥
त्यूं ही सब देहनि कूं जानो, कालहिं ग्रसत निरंतर मानो।
यद्पिजात अवस्था लेख, बाल कुमार जुवादिक देखे ॥ ७७ ॥
पर तोहू मूरख नहिं जाने, मैं वहई हूं यों करि माने।
यह आतम सो सदा अजनमा, देह संगते पावै जनमा ॥ ७८ ॥
अरु त्यों अमर निरंतर जानो, देह संग मरनो सो मानो।
जैसे अगनि दाहके संग, सदा लहै उतपति अरु भंग ॥ ७९ ॥
जो लगि तनकी संगत लहै, तो लगि आतम अतिदुख सहे।
गर्भ-प्रवेस वृद्धि अवतार, बाल अवस्थ पोगंठ कुमार ॥ ८० ॥

जोबन मध्य जरा अरु मरणा, नवै अवस्था देह आचरना ।
आत्मा एक रूप सबहिनमें, कबहूं नहिं लिये तिन तिनमें ॥ ८१ ॥
ऐसे जानि मुक्ति तब होई, मेरी सरणागत जो कोई ।
अपनो दादौ पिता विचारौ, तिनको मरनो उरमें धारौ ॥ ८२ ॥
भाई ज्यूं अबमें अनुरक्त, त्योंहीते हूते आसक्त ।
तितो प्रगट काल बसि भये, परित्रस परे छांड़ सब गये ॥ ८३ ॥
मेरी यौ ह्वै है गति ऐसी, भाई बाप दादेकी जैसी ।
अरु मेरे सब बालक जैसे, हमहूं हूते पिताके तैसे ॥ ८४
सकल अवस्था सो मम गई, यह तो प्रगट और ई भाई ।
याही विधि जैहैं सब देह, छुटि हैं सबै पुत्र धन गेह ॥ ८५ ॥
यों उरमें बहुभांति विचारै, अपने बन्धन सकल निवारै ।
देहादिक सब संगति तजै, सदा निरंतर मोकूं भजै ॥ ८६ ॥
बीज जनम पाकेते अन्त, खेती खेत माहिं बरतंत ।
खेती करणहार सो न्यारा, यों तन न्यारौ करै विचारा ॥ ८७ ॥
करम बीज विस्तारै नाहिं, दगध करै जे हैं तनमाहीं ।
तनते आपुहिं न्यारौ जानै, संग कियेते सुख-दुख मानै ॥ ८८ ॥
तातें तनको संग निवारो, या विधि आप आपकूं तारो ।
जो तन न्यारो आपन जानै, तन सुख हेत करम बहु ठानै ॥ ८९ ॥
तिनते नाना देहनि पावै, तिनहित जनम जनम मरिजावै ।
सांतिकत सुरकै ऋषि होई, राजस नैरकै दानव सोई ॥९०॥
तामस पसु आदिकके भूत, या विधि त्रिगुण जगत उदभूत ।
यदपि आतम सदा अनीह, कबहूं कछु न करै तमीह ॥ ९१ ॥

परि तन करिते करता होई, संगदोष बंधत है सोई।
जैसे नाचै गावै कोई, तिनको दूजौ द्रष्टा होई॥ ९२॥
त्यौं त्यौं आपहु बैठे करै, तान ताल रागहि उर धरै।
त्यौं माया गुणकर मनि ठानौ, आतम करै आपको मानौ॥ ९३॥
तिनहीं करमनि वंधै आप, जो कछु करै होइ सब पाप।
तिनकूं जानि तजै नहीं जोलूं, जनम मरण दुख मिटै न तोलूं॥९४
जल-प्रवाह ढिग ठाडौ कोई, तटि वृक्षनिचल देखे सोई।
नयन भ्रमतज्यूं कोई देखै, तब सब धरनी भ्रमती लेखै॥९५॥
तैसे यह आतम थिर जानौ, और सकल चंचल करिमानौ।
निश्चल मन करि देखे जबही, निश्चल ब्रह्म रूप सब तबही॥९६॥
जैसे स्वपन मनोरथ मृषा, यौं सब जगत रु विषिया सरषा।
परि यद्यपि जग सति न कोई, तोहूकदे निव्रति न होई॥ ९७॥
जैसे स्वपन सति कछु नाहीं, परि जोलूं है निद्रा माहीं।
तो लग सकल सति ही जानै, सुख-दुख पावै उदिम मानै॥ ९८॥
त्यौं अज्ञान नींद सब जोलूं, जनम मरण भय मिटै न तोलूं।
तातैं उधव सब भ्रम जानौ, महा अनर्थ रूप करि मानौ॥९९॥
विषयनकौ उद्यम छिटकावौ, अरु जे है ते सकल मिटावौ।
जो लगि आपुहि समझै नाहीं, तो लगि है नाना भये माहीं॥१००॥
अरु आपुहि नहिं समझै तोलूं, मम आधीन न होवै जोलूं।
मम अधीन निरंतर रहै, जग उपहास सीस सब सहै॥ १०१॥
केई एक करै अपमान, केई गहि बांधै अज्ञान।
केई मूतै थूके तनमैं, मारै धूलि भीषके अनुमै॥ १०२॥

केई डहके मूढ़ डिगावै, ऐके निंदे चोट लगावै ।
ऐसे बहुविधि दुख उपजावै, बहु विधि भयके बैन सुनावै ॥१०३॥
परि जो अपनो श्रेय विचारै, सो एको मनमें नहिं धारै ।
बहु कष्टनि ते मन न डिगावै,सो भव तजि मम चरननि आवै१०४॥
मेरो पंथ खड़गकी धारा, जो न डिगै सो उतरै पारा ।
हरिके बैननि दुःकर जानी, उधव प्रश्न करी भय मानी ॥१०५॥

उधव उवाच

हे प्रभु तुम यह बैन सुनाए, ते मेरे उर दुःकर आये ।
जो असाध्य बेकाज खिकावें, तोते सहै कौन विधि जाव १०६॥
मेरे हृदय ज्ञान ठहरावे, सहन उपाय मोहिं समभावे ।
जो यह नौ उत्तम करि जानौ,अरु त्यों और न पास्य बखानौ ॥१०७
परि ते आप परै नहिं सहै, अति प्रकृतिके बस व्है रहैं ।
केवल जे तुव चरण अधार, तिनके कोई नहीं विकार ॥१०८॥
तो नित निश्चल सीतल रूप, नित्य आनंदित प्रेम अनूप ।
तिनकूं कहे लिपे कछु नाहीं, सदा बसे तुव चरननि माहीं १०९॥
और सकल प्रकृति आधीन, सदा विकारनि आगे दीन ।
ताते तुमही करुणा करौ, ध्यानादिक मम हिरदे धरौ ॥११०॥

दोहा

ऐसी कीन्हीं प्रश्न जब, उधव प्रेम सुजान ।
भाष्यौ सहन उपाय तब, भव७भजन भगवान ॥१११॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कंधे श्रीभगवानउधव संवादे भाषायां द्वै बीसमौध्यायः ॥ २२॥

श्रीभगवानुवाच—

चौपाई—

है उधव ऐसो नहिं कोई, दुरजन वचन क्षुभित नहिं होई ।
दुरजन बचन बान जो सहै, मन क्रम वचन क्षोभि नहीं लहै ॥१॥
जो ऐसौ सो साधु कहावै, यौबिन साध पदहि नहिं पावै ।
बेधि कसीसहनैगह बाना, अरु तै भेद मरम स्थाना ॥२॥
तौ तिनतै दुख होइ न ऐसो, दुष्ट बचन बाननतै जैसो ।
परि मैं तोहि उपाइ सुनाऊं, सहनसीलता उर ठहराऊं ॥३॥
सोसौं सुनो ऐक इतिहास, जातै होइ हृदय प्रकास ।
भिक्षुक ऐक ज्ञानमय भाषी, ताकी तोहि सुनाऊं साषी ॥४॥
कियौ असाधनि बहु अपमाना, तिरस्कार ठान्यौ विधि नाना।
तब ता भिक्षुक गाथा कही, कुमति आपनी सबही दही ॥५॥
सो अब सुनौ सुचित है मोसूं, निज जन जानि कहत हूं तोसूं ।
मालव देस रहै घर जाको, खेती वणिज जीवका ताकौ ॥६॥
क्रोधवन्त लोभी अरु कामी, विप्रनको अपजसको नामी ।
जाके होइ द्रव्य अधिकाई, अरु जो नहीं देइ नहिं खाई ॥७।
आपन कौ पीड़ा उपजावै, पुत्रादिक खानै नहीं पावै ।
देवरु पित्र अतिथि न पोषै, बैन भानजाकदसंतोषै ॥८॥
सो कद रज जौ ऐसो होई, तातै नीचौ और न कोई ।
तातौ सोकदरज द्विज भयौ, सब जगमै जिनि अपजस लयौ ॥६॥
ज्ञाति अतिथ बंधू न निज तिनकूं, इनईहेत खरचै धनकूं ।
पुत्रादिक कलपै दुखं लहै, ज्ञाति भ्रत्य दुर नैननि कहै ॥१०॥

पुत्र कलित्र कन्या अरु भाई, जहां लगै सम्बन्ध सगाई ।
ते सब द्रोह निरन्तर करै, ताकौ अप्रिय सब आचरै ॥११॥
ऐसो देखि पाप अति ताकौ, जक्ष समान वित है जाकौ ।
धरम काम दोनौं करि हीन, दहुं लोकके सुख तैक्षीन ॥१२॥
ज्ञिनहित पच जज्ञ नित करै, सकल गृहस्थ दंड कूं भरै ।
तब तिन कियौ देवतनि कोप, तातै भयौ विप्र धन लोप ॥१३॥
कछू द्रव्य ज्ञातिन हरि लह्यो, चोरी भए हु तैक कछू गयौ ।
कछू अगनि लागै तौ जस्यौ, कछू धरनि माहीं धीसस्यौ ॥१४॥
कछू राज विग्रह तै गयो, यों बहु भांति षीण सब भयौ ।
तब ताकौ सब धन हरि लीयौ,तिरस्कार सबहिन मिलि कीयौ॥१५
बहुत कष्ट करि धन उपजायौ, सो नहीं दियौ न आपन खायौ
तातै उपजी चिन्ता चित्त, निसदिन बस्यौ हृदै मैं वित्त ॥१६॥
तब सो विप्र वचन उचारै, बहुत भांति आपहि धिकारै ।
अहो वृथा मैं कष्टहि पायौ, आप आपकूं दुखहु उपजावौ ॥१७॥
होवै तप्त दुख कूं पावै, आसू कंठ बहुत विधि ध्यावै ।
ऐसी विधि उपज्यों वैराग, जातौ सकल दुखनकौ त्याग ॥१८॥
बहुत श्रमन उपजायौ द्रव्य, सुपन समान भयौ सो सरब ।
नामै परच्यौ नामैं पायौ, ना मेरो कहूं अरथि लगायौ ॥१९॥
द्रव्यक दर जनि कौ है जेतौ, ऐक हूं अरथनि आवै तेतौ ।
ना यह लोक नहीं, परलोक, केवल बैढ़ै दुख भय शोक ॥२०॥
बहुत कष्ट सहि इहां उपावै, पुनि प्रलोक नरक मैं जावै ।
परम जसस्विन कौ जस सुध, अरु जे पिंडत ज्ञान प्रबुध ॥२१॥

सकल गुणन कहे गुण जेते, लोभलेस तै न्हासे तेते ।
जैसे रूपवन्त अति कोई, केहूं अंगनि लछिण होई ॥२२॥
स्वेत कुष्ट को छिटका एक, मेरे गुण अरु रुप अनेक ।
यों थोराऊ होवै लोभ, मेटै सकल रुप गुण सोभ ॥२३॥
जब तै धनको साधन करै, व्रधि हैंति उदिम बिसतरै ।
तब तो त्रास शोक भय लहै, चिन्ता अगनि निरन्तर दहै ॥२४॥
सिध भरो अरु रिष्यत भोग, नासा लगनह सुख संजोग ।
चोरी हिंसा मिथ्या दंभ काम क्रोध बसि मरणा थंभ ॥२५॥
बैर रुगर बस परधा भेद, अप्रतीति चिन्ता भय षेद ।
ऐ पन्द्रह जब होहिं अनरथ, तब हीनहुते होतहै अरथ ॥२६॥
ताते प्रेम अनरथ कहावै, भलौ चहै सो दूरि बहावै ।
अरथ नाम सुनि भूले लोक, बिनि विचार पावै भय शोक ॥२७॥
पुत्र कलत्र बन्धु अरु भाई, मात पिता हिंत सजन सगाई ।
द्रव्य हेत सब करै विरुद्ध, आप आप मैं ठानै युद्ध ॥२८॥
द्रव्य काजि अति क्रोधहि करै, तिनकूं मारै आपण मरै ।
धनहित प्रिय प्राणनि छिटकावै, आपहि मूढ़ नरकमैं जावै ॥२९॥
जाकूं देव बहुत विधि ध्यावै, परिमथा नर देहहि नहिं पावै ।
सो नर तन तामै द्विज देह, अनायास हरिजीको गेह ॥३०॥
ताकूं पाइ अरथ नहीं साधै, सब तजि हरिकूं नहीं आराधै ।
महा अनरथ अरथको गहै, सो भवसिन्धु आपते बहै ॥३१॥
ताते दूजौ नहीं मतिमन्द, परै दुखमैं तजि आनन्द ।
देव पित्रिरिष भूत सहाई, पुत्र कलित्र आपहित भाई ॥३२॥

धनहि पाइ जो इनहि न पोषै, औरन हूं कूं नहिं सनोषै ।
सो सब त्यागि नरक मैं जावै, तहां मूढ्य नाना दुख पावै ॥३३॥
सो तन धन मैं वृथा गुमायौ, भव दुख तै नहिं आप बचायौ ।
जाहि पाइ बुधि ऐसी करै, जातै बहुरिन जनमै मरै ॥३४॥
सो नर तन मैं वृथा गुमायौ, छोड्यौ अरथ अनरथ उपायौ ।
बयबल आयु सकल मम गयौ, नष सष अङ्ग अन्ध सब भयौ॥३५॥
अब मैं अरथ कौन बिध्य साधूं, दुराराध्य हरिक्यौ आराधू ।
भाई जे अनरथ सब जाने, तिउ क्यौं आरंभनि ठाने ॥३६॥
छोड़ै अरथ अनरथ उपावै, क्यौं सब आप आप दुख पावै ।
परि यह कोई नहीं स्वतन्त्र, सकल देषियतु है प्रतन्त्र ॥३७॥
ते जाकी माया करि मोहे, नटबाजी के सम सब सोहैं ।
भाई सो प्रभु बढ़ौ बलिष्ट, ब्रह्मा आदि सकलको इष्ट ॥३८॥
जे धन अरु जे धनके दाता, जे कामदि अरु काम विख्याता ।
अरु बहु धरम करम है जेते, मात पिता सुखदाई केते ॥३९॥
कहौ कहांते हित आचरै, मृत्यु ग्रसत जे नहिं परहरै ।
काल रूप शत्रु है जाको, कहौ कहां को सुख है ताको ॥४०॥
परि जे दीनबन्धु भगवान, करुणा-सागर प्रेम-निधान ।
तिन ही मोकूं करुणा करी जामै मम उर ऐसो धारी ॥४१॥
भवसागर ते तारै जाकूं, देहि नाव बैरागहि ताकूं ।
तातै मोहि दीयौ बैराग, मेरे प्रगटै पूरण भाग ॥४२॥
अब जा आय होइ कछु मेरौ, ता करि भजन करूं हरिकेरौ ।
या तनके गुण सकल निवारूं, मन तै सकल कामना टारूं॥४३॥

सकल साधु अनुमोदन करै, तथास्तु तियौ कहि उचरै।
यद्यपि आयु थोरौ है मेरौ, तोहूं हरिकौ पद अति नेरौ ॥४४॥
नृप षडांग जबही हरि ध्यायौ, ऐक महूरथ मैं प्रभु पायौ।
तातै प्रभू सम कोई नाहीं, जनकूं प्रगट होइ पल माहीं ॥३५॥
मन बच क्रम अब ताकूं भजू, दूजी सकल कामना तजू।
ऐसो निश्चय मन मैं धर्‌यौ, भिक्षुक भयौ सकल पर हर्‌यौ ॥४६॥
सीतल हृदै त्रशना सब त्यागी, निश्चल भयौ विप्र बड़ भागी।
अहंकार ममता कछू नाहीं, एकाको विचरै भू माहीं ॥ ४७ ॥
इन्द्रिय प्राण बचन मन गह्यौ, अंतर बाहर संगति दह्यौ
आपहि काहूको न लखावे, भिक्षाहेत गुहनमें जावै ॥४८॥
संसकार नहिं तनको जाके, जीरण टूक वस्त्र तन ताके।
भिक्षुक वृद्ध विप्रको जोवै, तब बहु दुःख घातकी होवै ॥२९॥
केई ताको डंड छुड़ावै, केई पात्र खोंसि ले जावै।
केई लेहु कमण्डल करते, कोई निकसण देइन घरसे ॥५०॥
केई धूल भीखमा डारै, कोई मूर्ख क्रोध करि मारै।
केऊ आसण कू लै भागै, ऊरध करि केऊ पग लागै ॥५१॥
केई कंथाकूं परिहरै, मार मार वाणी उच्चारै।
केई खांसि लेइ जप माला, केई वस्त्र जाहिं ले बाला ॥५२॥
केई आनि आनि करि देवै, केई खोंसि खोंसि पुनि लेवै।
केई भीष अन्न ले जाहीं, भोजन करणौ पावै नाहीं ॥५३॥
केई तनमे थूकै मूंतै, केई निन्दा करै बहूतै।
केई कानिन लागि पुकारै, केई सीस धूलि जल डारै ॥५४॥

कोई मौनि छुड़ाई दुखावै, कोई बोलत मौनि गहावै।
कोई ताहि बांधि करि राखै, कोई जानि न पावै भाषै ॥५५॥
कोई करै बहुत अपमान, जिन्हें बहुविधि मूढ़ अज्ञान।
यह है चोर ज्ञान नहिं पावै, दिन देखे नित चोरी आवै ॥५६॥
याको क्षीण भयो है वित्त, तातें यह है व्याकुल चित्त।
सकल कुटुम्ब याहि परि हरयौ, जीवन काज भेष यह धरयौ॥५७॥
देखो यह कैसो है खोटो, महा प्रबल अन्तरको बोटो।
देखो हम पचिहारे केते, परि याके उर भिदे न तेते ॥५८॥
धीरजवंत अहित यह ऐसो, पवन प्रचंड मेर गिर जैसो।
याके लानत हम कछु कह्यो, बक ज्यों ध्यान मौन गहि रह्यौ॥५९॥
यों करि क्रोध बंधि ले डारै, काठ माहिं दे ऊपर मारै।
हांसी सहित बीनती करै, हितसे त्रिपे वंनन उच्चरै ॥६०॥
ये भौतिक दुख भाषैं तैसे, देव आत्म कूँ पावे जैसे।
सीत उष्ण विरहादिक दैवक, जरा रोग आदिक ते देहिक ॥६१॥
ऐसे बहुविधि पावै दुख, कहूं न आवै तनको सुख।
परि सो कछू न मनमें आनै, अपने करे करमसो जानै ॥६२ ॥
तब तिन भाषी गाथा एक, हिरदै धारयौ परम विवेक।
भिक्षुक कहे वचन तब जेई, मैं तोसूं भाषत हौं तेई ॥ ६३ ॥

—:भिक्षुकउवाच:—

सुख-दुखदाहत लोकत एते, अरु नहीं असुर नहीं सुर जेते।
नाग्रह नहीं करम नहिं काल, ये समस्त हैं मनके ख्याल ॥६४ ॥

जगत चक्र मैं मनहिं फिरावै जीव महा दुख मनते पावै।
मनहिं करै विषयनको भोग, ताते होय करम संयोग ॥ ६५ ॥
होवै सतरज तम विस्तार, ताते जोनि विविध प्रकार !
ताते दुख निरंतर लहै, देह योगतें निशदिन दहै ॥ ६६ ॥
ताते दुखदाइक मन एक, संत कहै यह परम विवेक ।
आप आत्मा परम अनीह, परि सो मन करि करै समीह ॥ ६७॥
मनसो बंध्यौ अविद्या माहीं, ताते बन्धन जाने नाहीं ।
विष समान विषयनकूं खावे, ताके संग जीव दुःख पावे ॥ ६८॥
यह है जीव ब्रह्मको अंग, याकूं संश्रति मनके संग ।
मन करि रहित ब्रह्म सुखरासो, सदा एक रस प्रेम प्रकासी। ॥६९॥
तातें बन्धन मनही करै, संग आत्मा जन्मै मरै ।
जब मन रहत जीव यह होई,तब सिव जीव मरे नहिं कोई ॥ ७०॥
तातें जिन अपनो मन गह्यौ, ताहि कछू करने नहिं रह्यौ ।
अरु जो मन बस कीन्हों नाहीं, ते श्रम सकल वृथाही जाहीं ॥७१॥
स्वर्नादिक देवै बहु दाना, एकादसी आदि व्रत नाना ।
अपने-अपने धरमनि करै, समदम जन नियमी विस्तरै ॥७२ ॥
विद्या वेद पढ़ै ह विचारै, और सकल धरम विस्तारै ।
पर जो बस नाहीं मन एक, तो मिथ्या आचरण अनेक ॥ ७३॥
मन बसि काजि कहे सब तेते,विधि आचरण वेदमें जेते ।
मननिग्रहसों उत्तम ग्यान, मैंननिग्रह बिजि सब अज्ञान ॥ ७४ ॥
ताते जो मननिग्रह करै, मो बिधि काहेको विस्तरै ।
ताको विधिनहुते कछु नाहीं, सब विधि है मननिग्रह माहीं ॥७५॥

अरु जो मन बसि नाहीं एक, तो विधि किन्हें वृथा अनेक।
सबहिनको फल मन बसि करनो,मन बसि काज सकल आचरनो
॥ ७६ ॥

मनकूं बसि करे जो कोई, इन्द्रिय-गुण आपहिं बसि होई।
मन बसि बिन इन्द्रिय बसि नाहीं,करि करि जतन बहुत मर जाहीं
॥ ७७ ॥

मन बसि भए सफल बसि देवा, तीनो भवन करे ता सेवा।
सकल बलनतें मन बलवंत, मारि करे सबहिनको अंत ॥७८॥
मनकूं कोऊ जीति न सके, बहुत उपायनि करि करि थके।
ऐसे मनकूं जीतै कोई, सबहिन माहं प्रिबल है सोई ॥७९॥
सो दुर्जय रिपु बसि नहिं करै, बाहिर क्षुधादिक बिसतरै।
बैरी मित्र बहुत बिधि ठानै, अनहित अरु हित तिनतौ जानै ॥८०॥
ते अति मूढ सुखी नहीं होवै,मन जीते बिनि जुग जुग रोवै।
दुख रूप जढ़ मिथ्या तनकूं, आप मानि करि बाध्यौ मनकूं ॥८१॥
तब बहु किये देह सम्बन्धी, तिनसूं मूरष ममता बंधी।
यह मैं यह समस्त है मेरे, मित्र शत्रु ठाने बहुतेरे ॥८२॥
तातै मूढ़ महा दुख पावै,उपजि उपजि पुनि मरि मरि जावै।
तातै दुख कौ मन ही कारण, आतमकूं भव जलमै डारण ॥८३॥
अरु जो सुख दुख दाता एते, मोकूं दुःख देत हैं तेते।
ते सब सुख दुख मोकूं नाहीं, देह एक सब आतम माहीं ॥८४॥
ते सुख दुख देहइ पावै ,आतमके कहुं निकट न आवै।
अरु यदपि तनके संयोग, करै जीवइ सुख दुख भोग ॥८५॥

तोहू मैं दुख देहूं काको, रूप सकल मम देखूं जाको ।
आप आपकूं क्यों दुख दीजे, अपनो अहित आप क्यों कीजे ८६॥
या तनमें मैं ही दुख पाऊं, अरु तिनहूं मै क्यूं उपजाऊं ।
दंतनि भूलि जीभ काटीजै, तो फिर तिन्है कहा दुख दीजै ॥८७॥
दंतन अरु जीभहिं दुख देई, सोतो सकल आप करि लेई ।
इन्द्रिय अधिप देवता जेते, जो दुख दानि होंइ सब तेते ॥८८॥
तोहू आप कोप क्यों कीजै, पर उपाधि क्यों सिरपर लीजै ।
कर दीजे मुख माहिं असनसूं, सो मुख काटै करहि दसनसूं॥८९॥
ते पावक अरु बासव जानै, राग द्वेष भावे त्यूं ठानै ।
यूं सब इन्द्रियनके सब देवा, करै आपमें दोष रु सेवा ॥९०॥
तेतो सब जानै ज्यूं करै, ग्यानी अपने मन नहि धरै ।
अरु जो सुख दुख दाता आप, दूजेको कछु नाहीं पाप ॥९१॥
तो यह सब आपनो स्वभाव, कौनेको अनिये आभाव ।
अरु आतममें सुख दुख नाहीं, उपजे ग्यान सकल मिटि जाहीं ।९२
आप भूलि सुख दुख करि लीन्हें, सब मिटि जाएं आपको चीन्हें
तातें दोष कौनको धरिये, जो अपनो मन बसि नहिं करिये ।९३।
अरु जो ग्रह सुख दुखके दाता, लोक वेद कहियत विख्याता ।
ते आपन क्यूं क्रोधहिं कीजै, परको दुख आप क्यों लीजै ॥९४॥
ग्रह आकास माहिं हैं जेते, द्वादस रास बसैं सब तेते ।
राग दोष आपनमें करै, तिनही सुख दुख निति ही परै ॥९५॥
ताता रासि जनम जो पावे, तिनकी संगति सुख दुख आवे ।
तातें आतम सदा आजन्मा, बार बार देहनिको जनमा ॥९६॥

तातों सुख दुःख तनहीं पावे, निकट आत्माके नहिं आवै ।
अरु यद्यपि संगत दुःख परै, आप क्रोध तो कासों करै ॥९७॥
करनहारते ग्रहई जानौ, राग द्वेष मानौ त्यू ठानै ।
अरु दुख दान होहिं जो क्रम, तो तो सकल आपही भ्रम ॥९८॥
यह जड़ देह करमता माहीं, आतम निकट देहई नाहीं ।
आतम चेतन ग्यान सरूप, परे सकलतों प्रेम अनूप ॥९९॥
तातो क्रोध कौनलूं करूं, काको दोष हृदयमें धरूं ।
अरु जो दुख कालतो कहिये, तो आपनमें कदे न लहिये ॥१००॥
तनहू कालहूतो दुख पावे, तो आतमको निकट न आवै ।
काल आत्मा ब्रह्म सरूप, देह विलक्षण सकल अनूप ॥१०१॥
तातो कालहुतो दुख नाहीं, काल भयानक देहनि माहीं ।
ज्यों लौ अगनि अगनिमें डारै, सो वह अगनि अगनि नहिं जारै१०२
अरु ज्यों पालाको तन लीजे, लौ बहुतो पालामें दीजै ।
तो तो पालाकूं भय नाहीं, यद्यपि रहै सदा ता माहीं ॥१०३॥
योंही एक आत्मा काल, सुख दुखादि देहनिके ख्याल ।
आतम सबतो सदा अतीत, इच्छारहित अनीह अभीत ॥१०४॥
अरु आत्मा परेतो परै, द्वंद जहां लौं तो सब डरै ।
कोई आतमको नहिं जानै, सुख दुःख कौन कौनको ठानै ॥१०५॥
सुख अरु दुख जहांलो जेतो, एक प्रकृति ही के सब तेतो ।
सो प्रकृति आप जड़ रूप, चेतन आप ब्रह्म सरूप ॥१०६॥
केवल मान लियो संसार, सुख दुख तन मन सकल असार ।
मोह निसातों जागे जेते, निर्भय भये ततक्षण तेते ॥१०७॥

ताते अब मैं भय नहिं आनूं, आपहिं परे सकलते मानू।
हरि चरणनिकी सेवा करूं; ऐसी विधि भवसागर तरूं ॥१०८

जेई जे आए हरि सरणा, तिनही तिन पाए हरि चरणा।
ताते मैं हरि चरननि भजूं, मन क्रम बचन और सब तजूं ॥१०९॥

उद्धव यूं द्विज भयो विरक्त, तनहू में न रह्यौ अनुरक्त।
बहुत असाधनि बहुतहि गायौ,परि सो कछू न मनमें लायो ॥११०॥

ए भाषे दस अष्ट श्लोक, करि विचार मेटयो भय सोक।
ताते उद्धव सुख दुखदायक, आतमकूं कोई नहिं लाइक ॥१११॥

सुख दुख दाता नाहीं कोई, जो तौ कहूं द्वैत कछु होई।
सुख दुःख भ्रमतें जाने सकल, आतम एक अजनमा अकल ॥११२

भ्रम छूटैं दूजाको नाहीं, मेरो रूपमिलै मोंमाहीं।
जब सुख दुख मिथ्या करि जानै,मान अमान हृदय नहिं आनै ११३

धीरज धरि मम चरननि भजै, देहादिककी आसा तजै।
तब भवसागरको तरि जावै, मेरो निजानन्द पद पावै ॥११४॥

ताते उधव मन बच क्रम, सकल द्वैतको जानै भ्रम।
सबत मनको निग्रह करौ, निश्चल करि मम चरननि धरौ ॥११५॥

याही कूं कहियतु हैं योग, जा करि होवै मम संयोग।
अरु जो या गाथाको धारैं र्नै सुनावैं सदा विचारैं ॥११६॥

तिनके निकट द्वंद नहिं आवैं, अति काल मम चरननि पावैं।
ताते याकूं सदा विचारौ, मेरो बल अन्तरगति धारौ ॥११७॥

दोहा

यह उधव तोसों कह्यो, मनसंयम हृढ ग्यान।
अबभाषत हूं सांख्य कूं, सुनत मिटैं ज्यौं आन ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादश स्कंधे श्री भगवान उधव संवादे भाषायां भीक्षुक गीतायां त्रियोविंसमोध्यायाः ॥२३॥

श्री भगवानुउवाच

उधव तोसूं सांष्यहि कहूं, द्वैत भरम भ्रमहिं बिन दहूं।
जाहि सुनतही छूटै द्वैत, देखै एक ब्रह्म अद्‌वैत ॥१॥
प्रथमहि महा पुरुष जे भये, ते यह सांख्य प्रगट करि गये।
मुक्ति सांख्य ज्ञानतही होई, सांष्य बिना नहिं छूटै कोई ॥२॥
सो हो सांख्य कहू मैं तोसूं, निश्चल मन ह्वै सुनियो मोसूं।
उधव प्रथमहू तौ मैं एक, मो बिन कछू न हुते अनेक ॥३॥
तब मैं प्रकृति आपतें करी, जड़ चेतन द्वै विधि विस्तरी।
तन दोन्यूं ते उपज्यो पुत्र, महातत्व कहियतु जो सुत्र ॥४॥
एक प्रकृतिके त्रिय गुण कीन्हे, लक्षण भिन्न तिहूंको दीन्हें।
सुत्रहु तें त्रिविधि अहंकार, भरमावनको बड़ो विकार ॥५॥
पंचभूत जे पृथ्वी आदि, अरु पंचू सुक्षम सब्दादि।
तामस अहंकारते एते, राजसते इन्द्रिय सब तेते ॥६॥
सात्विकते मन अरु सब देवा, जिनको पाइ भये बहु मेवा।
तब सबहिनमें प्रेरि मिलायौ, तिनि सब हिन मिलि अंड उपायौ।

अंड सलिलमाहिं थिर करयौ, तामें मैं निज अंसहि धरयौ ।
आदि पुरुष सो मेरो रूप, त्रिगुणनियन्ता ज्ञान सरूप ॥८॥
तासु नाभितें उपज्यौ पद्म, जामैं सकल भवनको सद्म ।
पद्महुतें तब ब्रह्मा भयौ, बर लै मोसूं अग निर्मयौ ॥६॥
राजस अधिपति भयो विरंच, तातें प्रगट्यो सकल प्रपंच ।
लोकपाल लोकनसो करै, तीनो लोकत्रिविधि विस्तरै ॥१०॥
सुरग लोक देवनिको दियो, अन्तरिक्ष भूतन ग्रह कियौ ।
भूमि लोकमें मानव राखे, असुर अहिनकूं नीचे नाखे ॥११॥
महरलोक जन तप सतलोक, चारोंमें सिधनको लोक ।
जे त्रिगुण करमनिको करै, ते तीन्यूं लोकनमें फिरै ॥१२॥
तप अरु जोग तथा सन्यास, इनते तिन चारयौंमें बास ।
भक्तिहुं ते पावै बैकुण्ठ, जो सबहिन करि सदा अकुंठ ॥१३॥
पर बल काल रूप है मेरो, सकल जगत भक्षणे तेहिं केरो ।
सत्य लोकहूमें जो आवै, काल तहाहू ताको खावै ॥१४॥
कबहूं जाहि कष्ट करि ऊंचे, कबहूं काल ढहावै नीचे ।
ऐसी विधि सब भरमत रहैं, जनमैं मरैं बहुत दुःख सहैं ॥१५॥
उत्तम मध्यम नीचे जेते, छोटे बड़े थूल कृस केते ।
जे कछु जहं लग आकारा, ते सब प्रकृति पुरुष विस्तारा ॥१६॥
प्रकृति पुरुष बिन और न कोई, इन्द्रिय मन गोचर है जोई ।
प्रथमहिं निराकार मैं एक, तापै ए आकार अनेक ॥१७॥
अरुपुनि मैं ही रहहूं अन्त; ताते अबहूं मैं बरतन्त ।
जाकी आदि अन्त है जोई, ताके मध्यहुं मैं पुनि सोई ॥१८॥

ज्यों माटीतें बहु घट भये, सबहु फूटि माटीमें मिले ।
माटी आदि मध्य है अन्त, यह माटी सबहु परतन्त्र ॥१९॥
ज्यूं कञ्चनके बहु आभरना, आदिरु अन्त एक सोवरना ।
तो मध्यहु और कछु नाहीं, नाम रूप मिथ्या है जाहीं ॥२०॥
त्यों जब देखै सब व्यवहार, तब मैं हूं सब विस्तार ।
आदिरु अन्त मध्यमें एक; मिथ्या नाम रूप अनेक ॥२१॥
मायातें भइ तब अहंकार, तिनते होय सकल विस्तार ।
तहुत्यूं ज्ञान सकलको होई, महदादिक रहै नहीं कोई ॥२२॥
प्रकृति मूल यों पुरुष अधार, अरु जो काल सकल आधार ।
ऐसी शक्ति तीन ए जानो, मोते द्वैत कहैं मत मानो ॥२३॥
या विधि बढ्यो जाय विस्तार, नदी प्रवाह तुल्य संसार ।
परमातमको इच्छा जोलूं, बरते सकल निरंतर तोलूं ॥ २४ ॥
तहुत्यूं प्रलय सकलको होई, सूक्षम स्थूल रहै नहिं कोई ।
महा बलिष्ट शक्ति मम काल, ताको सकल जगत या ख्याल २५
काल विनासैं सब ब्रह्मंड, कितहू कछु न राखै खंड ।
अनावृष्टि होवै सत बरष, तातें देहनिको आकरष ॥ २६ ॥
छोटे बड़े देह हैं जेते, लीन असनमें होवैं तेते ।
असन धरनमें होवै लीन, भूमिगंध मिलि होवै क्षीण ॥ २७ ॥
गंधलीन होवै जलमाहीं, जल सूक्षम रस माहिं समाहीं ।
रस तब तेज माहिं मिलि जाई, तेजु जोतिमें जाय समाई ॥२८॥
जोति पवन माहीं मिलि रहै, पवनहिं तब सपरस गुण गहै ।
सपरस लीन होय तब गगन, गगन सबदमें होवै मगन ॥ २९ ॥

सबद मिले तामस अहंकार, सो अरु इन्द्रिय दस प्रकार।
ते सब मिलि तामस अहंकरहिं, मिलकरि सकल होय संहारहिं
देहरु मन सातिक अहंकार, मिलिकर सकल होहिं संहार।
अहंकार महं तत्वहिं मिले, प्रकृति तत्व महं तत्वहिं मिलै ॥३१॥
प्रकृति काल मां होवे लीन, काल पुरुष मिलि होवै क्षीण।
पुरुष मिलै पुरुषोत्तम माहीं पुरुषोत्तम कहुं जावै नाहीं ॥३२॥
भेदाभेद रहत तब ऐक, नित्यानन्द द्वैत वितरेक।
चेतन निर्मल ज्ञान स्वरूप, पूरण अक्षय परम अनूप ॥ ३३ ॥
तातै उधव मिथ्या द्वैत, आदि अंति मध्यहु अद्वैत।
जल बुद बुद सम सब आकार,उत्तम मध्यम विविध प्रकार ॥३४॥
ऐसो सदा विचारै सोई, ताके कौन भांति भ्रम होई।
रवि उदोत रहै तिमि कैसे, नदी मध्य दावानल जैसे ॥ ३५ ॥
यह मैं भाष्यौ सांष्य प्रकार, सकल द्वैत उतपति संहार।
याके ज्ञानन संसै रहै, अहंकार दृढ़ ग्रंथिहि दहै ॥ ३६ ॥
छाड़ै रूप अरूप समावै, जातै बहुरिन दुखकूं पावै।
तातै याकूं सदा सदा विचारौ, मोकूं जानि आपकूं तारौ ॥३७॥

दोहा—

उधव यह तोसूं कह्यौ, सांष्य ज्ञान विचार।
अवगुण त्रतिनकूं कहूं, भिन भिन विविध प्रकार ॥ ३८ ॥

इति श्रीभगवते महापुराणे एकादसस्कंधे श्रीभगवत उधव संवादे भाषायां सांष्य निरूपण नाम चतुरविंसौध्याय ॥ २४ ॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

चौपाई—

उधव अब भाखूं गुणव्रति, जिनकों जाने लहै निव्रति ।
जा गुण तें जो लक्षण होई, भिन भिन भाखूं सो सोई ॥ १ ॥
सम दम क्षमा विवेक स्वधर्म, लज्जा मानि न करै विकर्म ।
सत्य दया नहीं भूलै सुधि, उत्तम मारिग मैं थिर बुधि ॥२॥
जस रु सोभा धीरजवंत, पर उपगार सदा बरतंत ।
सुचि आस्तिक मिति निह संग, सन्तोषी अरु दान अभंग ॥३॥
कोमल विनय दीन चतुराई, सीतल हृदय सदा सुखदाई ।
ऐसी भांति बहुत सम्पति, सात्विक गुणकी जानो वृति ॥ ४ ॥
आतम इन सबहिनतें न्यारा, चेतन करि वर्तावनहारा ।
भोगै सक्ति हृदय बहु काम, धन अभिवरषा जस अभिराम ॥५॥
अस्ना हास्य गर्व बलवंत, रिपु मित्रादिक भेद अनंत ।
करि कामना भजै बहुदेव, परमारथ को लहै नो भेव ॥ ६ ॥
बहु आरंभनमें उत्साह, सदा कठोर सदा अति चाह ।
बहुत व्रत्ति राजसकी ऐसी, ए तुमसों मैं भाखी तैसी ॥ ७ ॥
हिंसा क्रोध लोभ अधिकाई, जंह तंह दीन दंभ कुटलाई ।
श्रम अर कलह सोक अर मोहा, निंदा आलस भय अरु द्रोहा॥८॥
निसदिन चिन्ता उद्यम हीन, हृदयअसाहस आसा क्षीन ।
ऐसो बहु तामसकी व्रति, जिनते कदे न लहै निव्रति ॥ ९ ॥
उपजे ममता अरु अहंकार, ताते करै विवध विवहार ।
ते सब मिलि तम गुणकी व्रति, तिन तैं बाढ़ै बहु प्रव्रति ॥१०॥

धर्म अरु अर्थ काम अनुरक्ति, श्रधा लोभ यथा आसक्ति ।
धर्म प्रव्रति परायण जेते, बहुत भांति विस्तारे तेते ॥११॥
बरते अपने अपने धर्म, प्रियगृह अरु ग्रह सुष गृह कर्म ।
ऐ सब मिलि त्रिगुणनकी व्रति, जिनतै बहुविधि होइ प्रव्रति ॥१२॥
सम दम आदि जुक्ति नर जोई, सात्विक लक्षण कहिये सोई ।
रजस कामादिक अधिकार, तामस तंह क्रोधादि विकार ॥ १३॥
जब स्वधर्मसूं मोकूं भजै, दूजी सकल कामना तजै ।
त्रिये पुरुष भावै सो होई, सांतिक प्रकृति कहीये सोई ॥१४॥
जब कामना हृदय धरि लेवे, अपने क्रमननि मोकूं सेवै ।
यह स्वभाव राजसको कहिये,मुक्ति हेत कबहूं नहिं गहिये ॥१५॥
जब हिंसा हिरदेमें आने, निज क्रमनन मम सेवा ठाने ।
सो वह तामस व्रत्ति कहावै, तामें मम सुख कदे न पावै ॥१६॥
सत रज तम तीनों गुण जे हैं, जीवनकूं बन्धन सम ते हैं ।
ते गुण मेरी आज्ञा करै, ताते मोहिं भजै सो तरै ॥१७॥
चितहू ते उपजैं ए सकल, इनकूं तजै आत्मा अकल ।
इनको छोड़ि रहै मो माहीं, बहुरयूं उपजे विनसै नाहीं ॥१८॥
करि साधन रज तम परिहरै, सांतिक गुणकी वृधिहिं करै ।
जिमी सात्विक सूरज परकास,अति सीतल ज्यों चन्द विकास ॥१९॥
सब कल्यान मूल सुखकारी, निश्चल करण सकल दुःखहारी ।
ताते धरम ज्ञान सुख लहै, चिन्ता सोक मोह भय दहै ॥२०॥
जब सातिक तामस नहिं रहै, राजस आइ बसेरा गहै ।
राजस रूप संग बल भेद, तामें माने क्रम भय खेद ॥२१॥

जब सत अरु रज छूटै दोई, केवल एक तमोगुण होई।
तब अविवेक नाहक आचरना, उद्दिम हरता जड़ता करना ॥२२॥
ताते सोक मोहको घाला, निद्रा आलस निसदिन आसा ।
जब छूटै इन्द्रिनकी प्रति, हृदय नहीं ईहा उतपति ॥२३॥
चित प्रसंग सकल नहिं संग, सो सांतिक मन अइ है अंग ।
जब तनमन इन्द्रिय अरु बुद्धि, थिर नहिं होय लहै नहिं सुद्धि ॥२४॥
ताते विविध करम विस्तार, सो जानौ राजस अधिकार।
जन विकार बहु विधि मन गहै, आसाबन्ध निरन्तर रहै ॥२५॥
सोक विषाद चेतना हीन, सो तामस उद्दिम बल छीन ।
जब उपजै सात्विकको भाव, तब सो होवै देव सुभाव ॥२६॥
राजसत असुरनकी प्रति, भूत गुननकी तम उतपत्ति ।
सांतिक तें जागरणौ होई, राज पावै सुपनौ सोई ॥२७॥
तामसतें सुषोप्ति कहिये, ब्रह्म तुरीया निरंतर रहिये ।
सांतिक उरध लोकने जावै, राज नर आदिक सुख पावै ॥२८॥
तामस नीचे थावर आदि, या विधि भ्रमै जीव अनादि ।
सात्विक प्रधमान जो होई, तामें मरन लहै जो कोई ॥२९॥
सो देवनके लोकहिं जावै, राजसमें मर नर तन पावै ।
तामसमें मर नरकहि लहै, तीन गुणन तज मोमें रहै ॥३०॥
मेरे हेत करम जो करै, तामें दूजो फल नहिं धरै ।
सो वह सात्विक करम कहावै, ताते जीव महा सुख पावै ॥३१॥
फल निमित मम करमनि ठानै, ताको राजस करम बखानै ।
हिंसा हेत करै मम कर्म, सो तामस है बड़ो अधर्म ॥३२॥

भेद रहित सो साँतिक ज्ञान, देह भेद सो राजस ज्ञान ।
बालक मूक तुल्य जो होई, तामस ज्ञान कहीजै सोइ ॥३३॥
आत्मा देह रहित जो एक, सो है मेरो ज्ञान विवेक ।
होय विरक्त तब लिए एकेत, सात्विक बास कहै सो संत ॥३४॥
ग्रहमें कहिये राजस बास, तामस रूप सुरा आभास ।
थावर चल मम मूरत जहां, निर्गुण वास कहीजे तहां ॥३५॥
सात्विक करता जो नहिं संगी, सो राजस फल कर्म प्रसंगी ।
विधिकरि रहित तामसी थरता, आसा लागि क्रमनि विस्तरता ॥३६॥
आपहिं मेटि रहै मम सरना, ताके सब निर्गुण आचरना ।
सो जन निर्गुण करता चहिये, ताके संग परम पद लहिये ॥३७॥
जो निष्कर्म आत्मा माने, सकल जननकरी श्रद्धा ठानै ।
सकल त्याग निश्चल जो होई, सांतिक श्रद्धा कहिये सोई ॥३८॥
राजस श्रद्धा ठानै कर्म, तामस श्रद्धा करै विकर्म ।
निर्गुण सरधा मेरी भक्ति, ताते मिटै सकल आसक्ति ॥३९॥
पंथ पवित्र बिना श्रम आवै, जामें अपनो धर्म न जावै ।
जातें उपजै नहीं, विकारा, सो कहिये सांतिक आहारा ॥४०॥
खाटा मीठा तीखा खारा, दुख दाइक राजस आहारा ।
जो असुद्ध हिंसातें आवै, सो तामस आहार कहावै ॥४१॥
मम जन अरु मेरी उछिष्ट, सो निर्गुण भोजन अति इष्ट ।
इन्द्रिय सुख तृष्णादिक दहै, तजि आरंभ नहिं थिर ह्वै रहै ॥४२॥
आतमते उपजै सुख जोई, सांतिक सुख कहियतु है सोई ।
इन्द्रिय सुख राजस नहिं गहिये । निद्रा आलस तामस कहिये ॥४३॥

मेरी प्रेम भक्ति सुख जोई, निर्गुन सुख कहियतु हैं सोई।
द्रव्य देस फल काल रु ज्ञान। करता करम अवस्था दान ॥४४॥
श्रद्धानिष्ठा अरु आकार, निरमित त्रिगुण लखै बिस्तार।
जो कछु कहौ सुनौ अरु देखो, मन अरु बुद्धि जहां लगि लेखो॥४५॥
सो सब प्रकृति पुरुष बिस्तारा, निर्मिति त्रिगुण सकल संसारा।
इनते जीव लहैं संसार, त्रिगुण करम मय बारम्बार ॥४६॥
जो इन तीनो गुणन निवारै, चित्त आपणो मोमें धारै।
सो मेरी निर्गुण पद पावै, बहुर्यूं या भवमें नहिं आवै ॥४७॥
तातैं यह ऐसी नर देह, जाकरि मिटै सकल सन्देह।
होवै प्रगट ज्ञान विज्ञान, पावै मोहि मिटै सब आन ॥४८॥
तातों पंडित सकल निवारै, मोकूं सेइ आपकूं तारै।
यो बिनि सकल अपंडित जानौ, जेते आतम घाती मानौ ॥४९॥
सकलहुते होवै निःसंग, सावधान पल परै न भंग।
इन्द्रिय प्राणदेह मन जीते, मम चरचा दिन रैन व्यतीतै ॥५०॥
सकल सांतिकी संगति करै, राजस अरु तामस परिहरै।
देहाहिकतें निस्प्रह होई, आगे इच्छा करै न कोई ॥५१॥
मोमे धारैं निश्चल बुद्धि, तब पावै अंतर गति सुद्धि।
या विधि सात्विकहू छिटकावै, तातों लिंग सरीर मिटावै ॥५२॥
लिंग सरीर मिटे भव तजै, निर्मल रूप आपनो भजै।
ऐसो ह्वै मोही कूं जानै, बाहर भीतर द्वैत न मानै ॥५३॥
मोमे मिल मोहीमें रहै, बहुर्यूं काल अगनि नहिं दहै।
रहै निरन्तर मेरे संग, ताको कदे न होवै भंग ॥५४॥

दोहा—

उधव यह तोसों कही तीनों गुणकी व्रत्ति
अब औरू ग्यानहि कहूं, जाते होय निव्रत्ति ॥५५॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्रीभगवान उद्धव सम्बादे भाषायां गुण व्रत्तिनिरूपण नाम पंच बिसमोध्यायः २५

श्रीभगवानुवाच—

चौपाई

उधव यह नर तन हैं ऐसो, सकल श्रष्टि में नाहीं जैसो ।
या तन करि मम ग्यानहिं पावै, जाते भव तजि मोमें आवै ॥१॥
ताते ऐसे तनको पाई, मोहिं मिलनेको करै उपाई ।
अंतर माहिं मोहिं विचारै, और सकल बासना टारै ॥२॥
ममभक्तनके लक्षण जानै, त्यूं त्यूं आप आपमें ठानै ।
अनायास तब मोकूं पावै, ध्याल ध्याल बहुत्यूं नहिं खानै ॥३॥
माया गुण जब मिथ्या जानै, मेरी ज्ञान पाइ करि मानै ।
यूं ह्वै रहै देहहू माहीं, तोहूं फेर लिये कहुं नाहीं ॥४॥
परि यद्यपि होवै ऐसोऊ, करै असाध संग नहिं सोऊं ।
सिसन रु उदर परायण जेते, मन क्रम बचन त्यागिये तेते ॥५॥
करै असाध एकको संगु, तोहू ग्यान ध्यानको भंग ।
असंत संग जबहीं नर करै, ताके संग नरकमें परै ॥६॥
जैसे अन्ध अन्धके संग, कूप परै होनै सुख भंग ।
जाकी गाथा भाषं एक, तातै उपजै परम विवेक ॥७॥

जब उरबसी ग्रह तन दह्यौ, सोक मोह सागरमें बह्यौ।
तबहीं पुरुरव भाषी जोई, तोसूं गाथा भाषूं सोई ॥८॥
राजा पुरुरव चक्रवर्ती, ताकी आण जहां लौ धरती।
आपहुते उतरी उर बसी, सोमिलके नृपके उर बसी ॥९॥
ए उरनाहरि हरि लौ लौ जबहीं, नगनदेखि मैं तजिहूं तबहीं।
तब उर बसी नृप बेन सुनावै, ए उरना कोउ लेन न पावै ॥१०॥
ऐसे वचन उर बसी भावे, राजा सुनि हिरदेमें राखे।
करै सपरस भोग निरन्तर, विषैलीन नहिं पावै अन्तर ॥११॥
बहुरयूं श्राप मुक्ति तब भई, तब तजि नृपहिं उर बसी गई।
नृपति विलाप करै बहु रोवै, परि सो नृपकी ओर न जोवै ॥१२॥
राजा नगन देह सुधि नाहीं, बानी विकल दीनता माहीं।
लज्जा रहित मत मद जैसे, चलौउर बसी पीछे तैसे ॥१३॥
अहो प्रिया तुम ठाढो होवो, मेरी ओर कृपा करि जोओ।
मोकूं मारि कहा तुम आओ, कृपा करौ मेरे ग्रह आओ ॥१४॥
मिलि उरबसी संग सुख पायो, सोलो सकल दुख ह्वै आयो।
त्रयतिन भयो भोगवतभोग, पाइ उरबसीको संयोग ॥१५॥
ता उर बसी ग्यान आकरष्यो, ताते भलो मानिकर हरष्यो।
तन मन हृदय कछु नहिं आनै, निस दिन मास बरष नहिं जानै ॥१६॥
तब ता नृपको पूरण भाग, जाते प्रगट भयो वैराग।
तब नृप वचन बखाने जेई, तो सूं मैं भाषत हूं तेई ॥१७॥

पुरुरवाउवाच—

अहो एक देखो मम मोह, आपुहिं कियो आपनो द्रोह।
गहियो कंठ देवकी माया; जिन मेरो सब आव गुमाया ॥१८॥

इन मो कूं डह क्यों बहुतेरो, सरबस आप लियो हर मेरो।
मैं दिन रात न जाने जात, अमृत करि मान्यो बिख्यात ॥१९॥
वर्ष समोहु गये मम बीती, सकल बिकारन लीनो जीती।
देखो मय कैसो दहकायौ, स्त्रीके कर आप बिकायो ॥२०॥
जो मैं राजा अरु चक्रवर्त्ती, जीति समस्त करी बसि धरती।
सकल भूप मम चरननि सेवे, तन मन धन सब मोकूं देवे ॥२१॥
सो मैं बिकानो स्त्री हाथ, ज्यों बानर बाजीगर हाथ।
ज्यों ज्यों स्त्री मोहिं नचायो, त्यों त्यों मैं मूरख सुख पायो।२२।
तापर राज सहित तजि मोहीं, त्रण समान करि चली व सोंही।
नगन भयो मैं पीछे धायो, ज्यों उन्मत्त आप बिसरायो ॥ २३ ॥
कौन भांति ताके बल होई, तेज प्रताप रहै नहिं कोई।
जो होवे स्त्री आधीन, जैसे खरी संग खर दीन।२४।
विद्या मौनि तपस्या त्याग, बनमें बसे वा दृढ़ वैराग।
ये समस्त कीन्हीं कछु नाहीं, जौ लों त्रिया बसे मनमाहीं ॥२५॥
यह उर बसी जबहिं ते पाई, काम अगिन बहुभाँति जुमाई।
परि यह अगिन न सीतल भयी, अधिक अधिक बांधत नित गई।
जैसे अगिन प्रज्वलित होई, तामें ईंधन डारे कोई।
तो सों अधिक अधिक प्र जरे, पलकहु नहिं सीतलता करे।२७
मैं अपनो नहिं जान्यो अर्थ, आप आप कूं कियो अनर्थ।
मूरख आपहि पंडित मान्यौ, परयो मृत्युमुख अमृत जान्यौ ॥२८॥
जो मैं ईस सकल भू केरो, सो ह्वै रह्यो त्रियाको चेरो।
मैं मईखताको धिक्कार, जिन न कियो कछु ग्यान विचार ॥२९॥

स्त्री करि जाको चित हस्यो, ज्ञान विचार सकल परिहस्यो ।
ताको हरि बिन कौन छुड़ावै,दूजो आपहु छूट न पावै ॥३०॥
तातें मैं हरिचरनन गह्यौ, सकल त्याग हरिको ह्वै रह्यौ ।
यदपि देवी मोहिं बुझायौ,त्रिया प्रीति दुख कहि समझायौ ॥३१॥
तौहू मैं मूरख नहिं जान्यौ, काम अंध सुखही करि मान्यौ ।
तातें ताको नहिं अपराध,यह मेरो मन बड़ो असाध ॥३२॥
जो मैं सुरग नरकमें देख्यौ,दुखही माहिं सुख करि लेख्यौ ।
गुणमें रूप जानि दुख पावै,अगनि पतंग परै जरि जावै ॥३३॥
तो तिनको अपराध न कोई, आप दुःख करि लेवै सोई ।
तातें इनको यही स्वभाव, मैं मनमें क्यों धरूं कुभाव ॥३४॥
जो मैं आप अगनिमें परूं, तो मैं दोष कवनकूं धरूं ।
देहमलीन महा दुर्गंध, सो करि जानी विमल सुगंध ॥३५॥
सो आपनी अविद्या कस्यो,निजानन्द आतमा बिसस्यौ ।
यह तन तो बहुतनको कहिए, तामैं ममता गहि क्यूं रहिए ॥३६॥
मात पिता अपनो करि कहै, अस्त्रीएकमेक मिलि रहै ।
कै यह तन कहिये राजाको, कै पावक भक्षण है ताको ॥३७॥
कै भूको कै स्वान शृगाल, कै आपनो मित्र कै काल ।
यह तन यौं कहीऐ किन किनको,प्रगट दीसत है तिन तिनको ३८॥
महा असुध देह यह ऐसी, प्रगटै नरकखानि है जैसी ।
तहको मन बांधै मतिमन्द, स्त्री नाम कालको फन्द ॥३९॥
त्वचा रुधिर अरु मासहु अन्त, मज्जा मेद रोम नख दन्त ।
विष्टा मूत्र पीड कृमि हाड़ा,स्त्री प्रगट नर्कको खाड़ा ॥४०॥

तातै स्त्री अरु ता संगी, तिनके नहिं होइय परसङ्गी ।
तिनके दर्श क्षुभित मन होई, देखै विना विकार न कोई ॥४१॥
तातै तिनकौ दरस न करिये, आपहि आप नरक नहिं भरिये ।
जो यह इन्द्रिय नरक निवारै, मन वच क्रम दुहुं संगति टारै ४२
तब यह मन सहजहिं थिर होई, करै विकार न परसै कोई ।
तातै जे स्त्रिनकूं भजैं, अरु स्त्रिन कूं बुधजन तजैं ॥४३॥
दरस परस अरु श्रवन निवास, सब भावनितै मानै त्रास ।
इन्द्रिनको विश्वास न करै,ज्ञानवन्त नित ही परिहरै ॥४४॥
महा पुरुष जे जीवनमुक, तिनहूंको सब सङ्ग अजुक्त ।
तातै जगसे छूटन चहैं, ते हमसे क्यूं सङ्गहि गहैं ॥४५॥
तातै मैं सब सङ्ग निवारूं, श्रीपति चरण कमल उर धारूं ।
दीनबन्धु करुणामय स्वामी, कृपा करी यह अन्तर्यामी ॥४६॥

श्री भगवानौवाच

या विधि वचन कहे नरराजा, तजि उरवसी लोक सब साजा ।
ज्ञान लह्यो सब संशय टार्यौ,मन निश्चल करि मो मैं धार्यौ ॥४७॥
तातै उधव यह पुरुषारथ, नर तन पायौ तबहीं स्वारथ ।
जब समस्तकी संगति तजै, सतसंगति गहि मोकूं भजै ॥४८॥
सन्त बतावैं हित उपदेश, जिनतै संशय रहै न लेश ।
मनकी सब आसक्ति निवारै, सन्त महा भवसागर तारै ॥४९॥
निस प्रह निरारम्भ सम दरसै, संग्रह रहत द्वन्द नहिं परसै ।
अहंकार ममता नहिं आनै, मोहिं भजै दूजौ नहिं जानै ॥५०॥

ते यद्यपि उपदेश न देवैं, तोहू मोहि चहै ते सेवै।
तहां कथा मेरी निति होवै, तेई अघ सन्देहनि खोवै ॥५१॥
मेरी कथा श्रवन जे करैं, ते सब पापनते निस्तरैं।
सुनै कहैं अंतरगति ध्यावैं अति आदरतें प्रीति बढ़ावैं ॥५२॥
ते सहजहीं लहैं मम भक्ति, सहजहिं होवै सकल विरक्ति।
मेरी भक्ति लहै नर जबहीं, पूरण काम भयौ सो तबहीं ॥५३॥
ताको कछू न करनो रहै, ज्ञानानन्द रूप मम लहै।
सीत निसा कहुं होवै कोई, तहां अगनि परिजाले सोई ॥५४॥
तम तुषार भय सहजहिं जावै, त्यों साधू सब दोष मिटावै।
यह अपार सागर संसार, जामैं बढ़ै जीव अपार ॥५५॥
तिनको नाव एकही यह, सन्त रूप प्रगटे मम देह।
ज्यों प्रानिन राखे अहार, मेरी सरिण दुःख संहार ॥५६॥
ज्यों परलोक परम धन जानों, त्यों भवतारक साधू मानों।
जिनके हृदय प्रगट मम चरना,तिन बिन या भव और न सरना५७
ज्यों बाहर है सूरज एका, यों उर नयन उघारै नेका।
सन्तहिं मात पिता हितकारी, सन्तहिं देव विष्णु दुःखहारी ५८
ताते सन्त संग नित करनो,और उपाइ न हृदे धरनो।
तिनते अनायास भव तरै, अनायास मोकुं अनुसरै ॥५६॥
तब पुररवा ऐसोहि करयौ, सो उरबसी लोक परिहर्यौ।
सब तजि भयौ आत्माराम, विचर्यो भूमै ह्वै निःकाम ॥६०॥
तातैं असन्त संग परिहरिये, साधु संग निरन्तर करिये।
साधूजन सुखही भव तारै, सुख ही मम चरनन चित धारै ॥६१॥

दोहा—

ऐसो साधु असाधुको, सुनि हरिजीसूं सङ्ग ।
तब उधव जन पूछियो, करम जोग परसङ्ग ॥ ६२ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कंधे श्री भगवत उधव संवादे भाषायां अलि गीता व्याख्याने षट बीसमोऽध्यायः ॥२६॥

उधवउवाच

चौ०—

हे प्रभु कृपा करो अब ऐसी, भाषौ क्रिया जोग विधि जैसी ।
जाके करत होइ सत्संगा, पावै ज्ञान होइ निःसंगा ॥ १ ॥
यह जो तुव प्रतिमाकी पूजा, याते श्रेय कहे नहिं दूजा ।
याकूं कहे व्यास अरु नारद, गुरु बृहस्पति परम विशारद ॥२॥
औरहु सकल मुनीश्वर जेते, परम श्रेय यह भाषै तेते ।
कल्प आदि विधिसूं तुम कह्यौ, सो दृढ़करि विधि हृदे गह्यौ ॥३॥
तिन भृगु आदिक सुतन सुनायो, शम्भू हूते भवानी पायो ।
जेते सकल वरण आश्रमां, स्त्री अन्तिज सबको धर्मा ॥ ४ ॥
या बिन और धरम हैं जेते, या ही काज कहे सब तेते ।
या बिन और धरम जे करैं, तो तिनते भवबन्धन परैं ॥ ५ ॥
यह ही सब धर्मनको धर्म, याही हू ते कटें सब कर्म ।
तातै पूजा विधि बिस्तारौ, कृपा करौ जीवन निस्तारौ ॥ ६ ॥

तुम दयाल सबके हितकारी, सुमरत सकल दुःख अघहारी ।
सुनिके पर उपकारी बैन, बोले हरषि कमलदल नैन ॥ ७ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

उधव याकौ अंत न पारा, मम पूजा विधि बहु विस्तारा ।
परि तो हू संक्षेप सुनाऊं, तामै तत्व सकलकौ ल्याऊं ॥८॥
पूजा विधि है तीन प्रकार, वैदिक तंत्रिक मिश्रित सार ।
वेदमंत्र अरु वैदिक अंग सो कहिये वैदिक परसंग ॥ ९ ॥
यों ही तंत्रिक मिश्रित जानै, भावै तासूं पूजा ठानै ।
द्विज जु क्षत्री वैश्य त्रि वरणा, यनकूं जा विधि पूजा करणा ॥१०॥
सो समस्त विधि तुमहिं सुनाऊं, जीवनकौ कल्याण उपाऊं ।
प्रतिमा भूमि अँगनि जल वाई, द्विज अरु आप अरक अरु गाई ॥११॥
अरु सबहिनमें मोकूं जानै, जथा जोग्य सब पूजा ठानै ।
गुरु अरु मोसै भेद न राखै मानुष बुधि दूरिकरि नाखै ॥ १२ ॥
सुध होइ जल माटी संग, अरु असनान सकलई अंग ।
जेते प्रगट वेद अरु तंत्र, तेते पढ़ै सकल मम मंत्र ॥ १३ ॥
सन्ध्यापासनादि जे कर्म, प्रगटे तिहुं वरणनिके धर्म ।
तिन तिनसूं निति मोकूं भजै, होइ निषेध सकलई तजै ॥१४॥
जाही करि मम सुमरण होई, काटै सबकरमनिकूं सोई ।
सोईसों कहिए मम धर्म, मम सुमरण विनि बंधण कर्म ॥१५॥
अब भाषूं प्रतिमाके भेद, सेवत जिन्हहि मिटै भवखेद ।
एक सिलाकी कहिये मूरति, एक काठकी स्यूं मम सूरति ॥१६॥

ऐक लोपि चंदणकी करिए, एक चित्र पुस्तक खल धरिए ।
प्रतिमा ऐक सुवरण सत्रारी, ऐक मनौ मम मनमें धारी ॥१७॥
ऐक प्रतिका कीलै कीन्हीं, ऐक रतनमणिकी करि लीन्हीं ।
ऐ मम प्रतिमा अष्ट प्रकार, जानै मम मंदिर निजसार ॥ १८ ॥
तिनमें होवै निश्चल जेती, सयनादिकन करावै तेती ।
सालिगराम आदि है जेते, मेरो तन जानौ तुम तेते ॥१९॥
और सबनको पूजा काल, किंवा जानै निति गोपाल ।
लेपी लिखी मंजनन करै, औरनि असनानहि बिसतरै ॥२०॥
उत्तम सामगरीसूं सेवै, तन मन धन सब मोकूं देवै ।
जोन्हिं काम निहकपट होई, करै भाव सब मोकूं सोई ॥२१॥
उतिम वस्तुनि मन करि ल्यावै, प्रेम सहित सब मोहि चढ़ावै ।
उतिम विधि स्नान करावै, वस्त्राभरणादिक पहरावै ॥२२॥
अगनि घ्रतादिक होमहिं करै, धरणी रवि अस्तुति विसतरै ।
जलकूं पूजै जल फल फूल, जानै मोंहि सकलको मूल ॥२३॥
भक्ति सहित जो अरपै तोई, जाहूमें मोकूं सुख होई ।
जो जो धूप दीप नईवेद, मोकूं बहु विधि करै निवेद ॥२४॥
ताको म्हमां कहा बखानौ, ज्यू है त्यू मैं ही पैं जानौ ।
तातै मैं नितिप्रति आधीन, तांष न मानौ प्रीति वहीन ॥२५॥
अब भाषूं पूजा विधि तोसूं, सावधान ह्वै सुनीयो मोसूं ।
होइ पवित्र करै असनान, मनमें राखै मेरो ध्यान ॥२६॥
पूजा साज प्रथम सब लेई, फिरि उठिवेकूं रहन न देई ।
बैठे उत्तर पूरब मुख, निश्चल मन प्रतिमा सनमुख ॥ २७ ॥

दरसनिसों निज आसन करै, आसनि कै न्यासहि विसतरै ।
न्यास करै सम मूरति अंग, तब ठानै अस्नान प्रसंग ॥२८॥
उत्तम कलस तोइसूं भरै, दूजै जलके पात्रहि धरै ।
जलमें बहुत सुगंध मिलावै, तासूं मोहिं सनान करावै ॥२९॥
अरघ पाद अरु विष्टर करै, तीन पात्र तातै जल भरै ।
गंध पुहप तिनमें बहु धरै, गायत्री अभिमंत्रनि करै ॥ ३० ॥
तब आपनौ करै तन सुद्ध, काहू द्वार न होइ असुद्ध ।
हृदय मांहि मम रूपहिं ध्यावै, ओंकार जहांते आवै ॥ ३१ ॥
जैसे गृहमें दीप प्रकासै, यूं ध्यावैतन माहिं उजासै ।
पूजि प्रेमसूं तनमय होई, पुनि मूरतिमें थापै सोई ॥ ३२ ॥
सांगापांग करै तन पूजा, काई भाव न आनै दूजा
देवै अरघ पाद आचमना, रचै अष्ट दल पङ्कज भवना ॥ ३३ ॥
ताहूंपर स्थापै धरमादि, सकल शक्ति रवि शशि अगनादि ।
शंख चक्र गदा असस्त्र, धन अरु बान मूसल हल सस्त्र ॥ ३४ ॥
ये आठौं अठहूं दिशि आनै, मणिमाला भृगु लता बखानै ।
नन्द सुनन्द महा बलचण्ड, कुमदेक्षण बल कुमुद प्रचण्ड ॥३५॥
अष्ट दिशा पार्षद् समग्र, ठाढ़ौ गरुड़ जोरि कर अग्र ।
विश्वसेन जासु गुरु देवा, गणपति दुर्गा अरु सब देवा ॥ ३६ ॥
कर जोरे हर सन्मुख ठाढ़े, हर्षित बदन प्रेम अति बाढ़े ।
सबहिनको पूजै अरघादि, विनय नम्रता वन्दन आदि ॥ ३७ ॥
चन्दन अरु कपूर वशीर, कुमकुम अगर सुगन्धित नीर ।
प्रथमहिं कछु मधु पर्क चढ़ावै, निर्मल जल आचमन करावै ॥३८॥

पुनि सुगन्ध जल देइ सनान, मंत्र बदन मन क्रम नहिं आन ।
पुण्डरीक लोचन मनभावन, आदि पुरुष सबके उपजावन ॥३९॥
जै जै ब्रह्म सकल आधार, नमो नमस्ते वार न पार ।
ऐसे तंत्र मंत्र उच्चारे, सहस्र शीर्षा श्रुति बिसतारे ॥ ४० ॥
वस्त्र जनेऊ अरु आभरना, अंग अंग तिलकादिक करना ।
उत्तम माला बहुत सुगन्ध, प्रेम सहित मोसूं मन बन्ध ॥ ४१ ॥
बालभोग आचवन करावे, कुसुम सुगन्धरु धूप बनावै ।
बहुत भांति आरती उतारे, नाना विधि नैवेद संवारे ॥ ४२ ॥
खीर खांड दधि घृत लापसी, लाडू पुवा सुहारी सरसी ।
व्यञ्जन करै और बहुतेरे, विभव लगावे बहु हित मेरे ॥४३॥
नित दातौन उगटने तेल, स्नान करै पंचामृत मेल ।
अलंकार दरसन आदर्सों, गीत नृत्य वादिंत्र सुपरसी ॥ ४४ ॥
बहुत भांति नैवेद संवार, नित्य नहीं तो परब न टारै ।
बहुरि करै पावकमें पूजा, मो बिन ता हिन जाने दूजा ॥ ४५॥
अगनि कुण्ड मंह अगनिहिं धारे, समिधा घृतयुत होमहिं करै ।
होम करै पढ़ि-पढ़ि मम मंत्र, जिनको कहैं वेद अरु तंत्र ॥ ४६ ॥
करि होमहिं आचमन करावै, ताको मेरे रूपहिं ध्यावै ।
तप्त सुबर्न तुल्य छवि अंग, चारु चतुर्भुज आयुध संग ॥ ४७ ॥
पीत वस्त्र कुण्डल मणिमाला, सीस मुकुट कटिसूत्र बिसाला ।
भृगुलता अरु लछमी आदि, बहु विधि ध्यावै रूप अनादि ॥४८॥
पुनि निन्दादि पारषद जेते, बलि विधानसूं पूजै तेते ।
जपै मूल मंत्रहि बहु बार, जा विधि बधै प्रेम अधिकार ॥४९॥

पीछे ता परसादहि लेवै, कै करि लग भक्तनकूं देवै ।
आज्ञा पाइ आप तब पावै, प्रेम सहित जेतो जिय भावै ॥ ५० ॥
पुनि अरपैं सुगन्ध ताम्बूल, उत्तिम माला उत्तिम फूल ।
मेरे गुण ऊंचे सुर गावै, नामनि भाषे प्रेम बढ़ावै ॥ ५१ ॥
मेरे गुण अरु करम सराहै, पूरण प्रेम सिन्धु अवगाहै ।
कथा तासि मम सुनै सुनावै, मो बिन कहूं न पल ठहरावै ॥५२॥
नृत्य पखोटै रुदन करावै, सुवते नाम भूलि नहिं जावै ।
परमानन्द अरु सहस्र कन भेद, जेई ते स्तुतिके भेद ॥ ५३ ॥
तिन तिनसूं मम स्तुति करै, वार वार मम चरननि परै ।
पाछे थाति जोरि कर दोई, करै दीन ह्वै विनती सोई ॥ ५४ ॥
हे प्रभु भवसागरते तारो, काल मृत्यु भय सोक निवारो ।
तुम बिन मेरे और न कोई, पाऊं चरननि कीजे सोई ॥ ५५ ॥
ह्वै जोति जोतिमय धारै, मूरतिको सज्या बिस्तारै ।
यों आकार जहां लौ देखै, ते समस्त मम मूरति लेखै ॥ ५६ ॥
करै जथाविधि सबमें पूजा, मोकूं छोड़ि न जानै दूजा ।
या विधि क्रियाजोग मन लावै, सो नर भक्ति मुक्तिफल पावै ॥५७॥
मोकूं उत्तम गृह संवरावै, तामें मम प्रतिमा पधरावै ।
मोकूं करै बाग फुलवाई, जामें बहु छबिनति अधिकाई ॥ ५८ ॥
ममहित सदा व्रतादिक देवै, बहुत भांति मम भक्तन सेवै ।
मम पूजा प्रवाहके हेत, देय गांव पुर हाटरु खेत ॥ ५९ ॥
सो मम सम ईसुरता पावै, तिहुं लोकको ईस कहावै ।
मम प्रतिमा स्थापन जे करैं, सो सब भूपति ह्वै अवतरैं ॥ ६० ॥

जो मेरो मन्दिर संवरावैं, तिहूं लोककी प्रभुता पावैं ।
पूजा आदिनि ब्रह्मको लोक, जहां नहीं नाना भय सोक ॥ ६१ ॥
तीनो किये लहैं बैकुण्ठ, कालादिकतें सदा अकुंठ ।
जो यों सेवै ह्वै निःकाम, सो मम भक्ति लहै सुखधाम ॥ ६२ ॥
निष्कामी भावै त्यों सेवै, जो तन मन धन मोकूं देव ।
सो पावै मेरो निज ग्यान, लहै मोहिं छूटै सब आन ॥६३॥
वृत्ति सुरन अरु विप्रन केरी, अरु जो करी होय कछू मेरी ।
दई औरकी किंवा आप, ताके हरै करै सब पाप ॥६४॥
सो होवै क्रमि विष्टा माहीं, वर्ष कोटि हू निकसै नाहीं ।
करना प्रेम कथा सहाई, अनुमादिन करि रुचि उपजाई ॥६५॥
सबहिनको फल होय समान, भावै उत्तिम भावै आन ।
ताते ममहित करमनि करै, सो बहुतनि ले भवजल तरै ॥६६॥

दोहा

या विधि पूजाको करै, ताके उपजै ज्ञान ।
जाते मेरो पद लहै, ताकूं करूं बखान ॥६७॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कंधे श्री भगवानउधव संवादे भाषायां महापुरुष पूजाविधि बरणन नाम सप्त बीसमोध्याय: ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच

चौपाई

उद्धव तोकूं भाखूं ज्ञान, जाते लहै मोहिं तजि आन ।
उत्तिम मध्यम करम स्वभाव, जे सब जगमें नाना भाव ॥१॥
तिन तिनको निन्दा नहिं करै, अरु नहिं कछु स्तुति विस्तरै ।
प्रकृति पुरुष निर्मित सब जानौ, एक जाति सब भेदहिं मानौ ॥२
ब्रह्मादि कीट परिमंत, एक रूप देखै सम संत ।
जेते बहु विधि करम सुभाव, तिनको आनै भाव अभाव ॥ ३ ॥
सो तो होय अरथसूं भ्रष्ट, माया मोह रचित आकृष्ट ।
मिथ्या माहिं चित्तको धरै, ताते मूरख जामें मरै ॥४॥
लीन होहिं जब इन्द्रिय देह, सुपन लहै पुनि आतम एह ।
जहं मन लग्यो तहां तहं जावे, बहुत भांतिके सुख दुख पावै ॥५
पुनि सुषुप्तिमें होवे लीन, मरणो कहिये एह सम हीन ।
यों सुषुपति अरु देखत सुपना,जनम मरण बहु सुख दुःख उपना॥६॥
जो लग सोवे तो लग पावे , जागत ही कछुवे न रहावै ।
त्यों यह सुख दुख पापरु पुन्य, जनम मरण सब जान्यो सुन्य ॥७॥
जो पै यह सब होय असत्य, मो बिन कछू और नहिं सत्य ।
देखन सुनन कहनमें आवै, मन अरु बुद्धि जहांलौ जावै ॥८॥
ते समस्त जो कछु वे नाहीं, तो सुभ असुभ कहौका माहीं ।
यद्यपि है मिथ्या संसार, तौहू दुखको वार न पार ॥ ९ ॥
जो लगि देह बुद्धि नहिं छूटे, तौ लगि भवमय पलक न टूटे ।
जैसे अपनी तनकी काई, अरु प्रतिबिम्ब सिंहको नाई ॥ १० ॥

सीप रूप ज्यों रजु मैं सांप, अरु मृगतृष्णा माहीं आप ।
है नाहीं परि है सो जानै, तिनमें सुख दुःख बहु विधि मानै ॥११॥
जब लगि मिथ्या जानै नाहीं, तौ लगि सकल अनर्थ न जाहीं ।
ब्रह्मरूप यह सब संसार, जहां लग कछु दीखै आकार ॥॥१२॥
ब्रह्मरूप ब्रह्महि उपजावै, ब्रह्म ब्रह्म आधार रहावै ।
ब्रह्महि करै ब्रह्म प्रतिपाल, ब्रह्म रूप ब्रह्मको काल ॥१३॥
जैसे जल बुद बुद जल माहीं, जलको छोड़ वेत कछु नाहीं ।
त्यों ही ब्रह्म रूप सब एक, देखै भ्रमतें जीव अनेक ॥ १४ ॥
परि यह सब जानौ निर्मूल, ज्यों मृग बारि गगनमें फूल ।
त्रिगुण रचित यह सब जग जानौ, ते गुण मायाके मानौ ॥१५॥
जो या विधि सब मिथ्या जानै, ब्रह्म भाव नहिं हृदय आनै ।
परि यद्दपि सो जगमें रहै, तोरिव ज्यों गुण दोष न गहै ॥१६॥
या जगमें सुभ असुभ न देखै, मिथ्या जानि ब्रह्म करि लेखै ।
ज्यों प्रतक्ष घटादिक देखै, उपजत बिनसत मिथ्या लेखै ॥ १७ ॥
धरणी आदि काल त्रिय सत्य, नाम रूपते सकल असत्य ।
त्यूं ही ब्रह्म सति तिहुं काल, नाम रूप मिथ्या जंजाल ॥१८॥
अर त्यूं करि देखै अनुमान, भाई ये जढ़ तन मन प्रान ।
सक्ति कौनकी चेतन रहै, अपने अपने अरथनि गहै ॥१९॥
निराकार ते चेतन होई, सब आकार जहांलौं जोई ।
तातै सब मिथ्या आकार, चेतन ब्रह्म सकल आधार ॥२०॥
अरु श्रुतिकौ प्रणाम विचारै, नेति नेति करि सदा पुकारै ।
अरु त्यूं देखै अनुभव माहीं, नामरूप कछू है ई नाहीं ॥२१॥

अंत न रहि है हुत न आदि, आतम निश्चल ब्रह्म अनादि ।
ऐसै बहुविधि कौ विस्तार, मिथ्या जानि करत आकार ॥२२॥
मन क्रम वचन होइ निहसंग, ब्रह्म विचारहि करै अभंग ।
ऐसे वचन कहे भगवान, तब उधव पूछत दृढ़ ज्ञान ॥२३॥

उधव उवाच

हे प्रभू यह आतम अविनासी, चेतन रूप स्वयं प्रकासी ।
निर्गुन निराकार नित सुध, सदा अनाव्रत सदा प्रबुध ॥२४॥
ईहा रहत सदा आनन्द, सकल प्रकासिक लियै न द्वन्द ।
अरु यह देह सक्ति करि हीन, जड़ असुध है जावै लीन ॥२५ ॥
तातै तिनको संग न होई, महा वसेष परसपर दोई ।
कछू इच्छा नहिं आतम माहीं, अरु तनसूं कछुहोवै नाहीं ॥२६॥
आतमकूं बन्धन नहिं कोई, अरु आतम आवरन होई ।
यह संसार लहै सो कौन, आतम सुध सदा सुख भौन ॥२७॥
यह करि कृपा मोहि समझावौ, मेरो भ्रम सन्देह मिटावौ ।
ऐसौ उधव पूंछयौ ज्ञान, तब बोले भवपति भगवान ॥२८॥

श्रीभगवानउवाच

आतमकूं नाहीं संसार, अरु तिनको नहि जे आकार ।
तिन दोन्यूं ते जो अविवेक; ताहीकूं भव दुःख अनेक ॥२९॥
इन्द्रिय देह प्राण मन वंध, इनसों जो आतम सम्बन्ध ।
तातें आभासै संसार, महा दुख नाना परकार ॥३०॥

जब लग है इनसों सम्बन्ध, तो लग आतम ज्ञान बंध।
सो अज्ञान कस्यौ सब जानौ, नाहीं कछू सकल करि मानौ ॥३१॥
जदिप्य मिथ्या है संसार, परि तोहूं नहि वार न पार।
सदा जीव दुख ही में रहै, बार बार तन छोड़ै गहै ॥३२॥
ज्यूं सुपना कछु हैई एनाहीं, परि सब साचौ निन्द्रा माहीं।
जे जे सुख दुख मनमें ध्यावे, सो सो सकल सुपनमें आवे ॥३३॥
है नाहीं परि है सो जाने, नाना विधिके सुख दुख माने।
जागत ही कछू है ही नाहीं, सब व्यौहार वृथा है जाहीं ॥३४॥
हरष शोक भय मोह अरु लोभ, इच्छा क्रोध असोभा सोभ।
जनमरु मरण विकार जहांलौं, अहंकारके सकल तहांलौं ॥३५॥
आतम सदा एक रसि रहै, अहंकार संगति दुख सहै।
इन्द्रिय देह बुधि मन प्रान, सूत्ररु महातत्व अभिमान ॥३६॥
इनसूं मिलि करि आतमा एक, माया सुख दुख गहै अनेक।
तिन तिनके हित क्रमनिकरै क्रमनके वसि जनमैं मरै ॥३७॥
लिंग बन्ध्यौ देहनि मैं जावै, तिनके संग महा दुख पावै।
बुधि बचन मन प्राण समीर, म्हततइंद्रिय करम सरीर ॥३८॥
सुख अरु दुख ममता अहंकार, तिनिको नाना विधि संसार।
सो निरमूल सकलई जानै, ज्यूं जेवरी सांपत्यूं मानै ॥३९॥
ज्ञान षडग भजि मोकों पावै, गुरु सेवा रस सान धरावै।
तासूं काटि होइ निहसंग, बिचरै सब देखत मम अंग ॥४०॥
गुरुके वचन हृदयमें धारै, आदि अंतिलौ श्रुतिहि विचारै।
जनम मरण देखौ प्रत्यक्ष, तजि अज्ञानहि होवै दक्ष ॥४१॥

साधन धरम मांहिं थिर होई, आतम देह विचारै दोई।
जो या जगकी आदि रु अन्त, सोई मध्य विचारै सन्त ॥४२॥
आदि रु मध्य अंतिमें एक, नाम रूप भ्रम रूप अनेक।
हेम ऐक ज्यूं आदि रु अन्त, मध्य किए आभरण अनन्त ॥४३॥
तो कछू हेम छोड़ि नहिं आन, जो विचारि करि देखे ज्ञान।
मिथ्या सकल नाम आकार, हेम काल त्रय करै विचार ॥४४॥
त्यूं जग आदि मध्य अरु अन्त, मोहि अरूप विचारै सन्त।
आदि अंतिमें ऐक अरूप, सोई मध्य वृथा सब रूप ॥४५॥
जाग्रत सुपन सुषुप्ति अवसथा, आदिरु अंतमधिमा स्वस्था।
इनके नास भये ते रहै, सकल छांड़ि ताकूं बुधि गहै ॥४६॥
इन्द्रिय अरु इन्द्रिनके देवा, इन्द्रिय विषयनके बहु भेवा।
ते सब जाय एक बिन नाहीं, सत्य ब्रह्म सो षोजौ माहीं ॥४७॥
जाहि प्रकासत सकल प्रकासै, जाको शक्ति सत्यसे भासै।
सुखके सुख करननके करन, करके कर चरननके चरन ॥४८॥
नासानास नैनके नैन, जिह्वा जीभ वैनके वैन।
या विधि सकल प्रकासक एक, ता बिनि मिथ्या सकल अनेक।४६
ए जे नाम रूप बिसतार, जिनसों पूरन सब संसार।
ते सबं आदि हुं ते कछ नाहीं, अरु नहिं रहैं अंतहूं माहीं ॥५०॥
तातो अबहूं मिथ्या मानौ, कारन ब्रह्म निरंजन जानो।
नाम धरयो सो सकल बिकार, तिहुं कालमें माटी सार ॥५१॥
यह जो कछू सो ब्रह्म समस्त, आदि मध्य अरु सबके अस्त।
ऐसे बहु विधि वेद बखानै, ब्रह्म बताइ द्वैत सब भानै ॥५२॥

आदि समस्त हुं ते कछू नाहीं, अब आभासत है मो मांहीं।
याते परे ब्रह्म मम रूप, सकल प्रकासिक आप अरूप ॥५३॥
यह विचित्र तामे आभासे, ताकी सक्ति सक्ति प्रकासे।
ताते सकल ब्रह्म ही लेखो, तजि करि रुप अरुपहि देखो ॥५४॥
इनते परे रूप निज जानो, अरु ए सब मम रूपहिं मानो।
द्वैत छोड़ि निश्चल ह्व रहो, जानि ब्रह्म तो ब्रह्महिं लहो॥५५॥
ऐसे जो निति करे विचार, मिथ्या जानै सब आकार।
गुरु सेवा करि ज्ञान बढावै, चेतन मोहि अखंडित ध्यावै ॥५६॥
यह जो तन सो आतम नाहीं, तन घट रूप विचारो माही।
अरु इन्द्रिय ते दीप समान, इनहिं प्रकासक आतम आन ॥५७॥
अरु त्यूं देव पवन मन बुधि, आतमकी नहिं जानै सुधि।
क्षित जल तेज पवन आकास, अहंकार गुण चित प्रकास ॥५८॥
साम्यप्रकृति तन मात्रा पंच, इनहीको सब द्वैत प्रपंच।
ते जड़ आतमकूं नहिं जाने, आतम सक्ति इहां सब ठाने ॥५९॥
सकल प्रकासिक आतमा एक, ऐ जड़ जानि न सके अनेक।
या विधि जो मम रूप विचारै, सकल उपाधि उरैकी टारै ॥६०॥
सो बनि रहै इन्द्रियन थंभे, किंबापुर विषयन आरंभे।
तो हू ताकूं नहिं गुण दोष, जीवत ही जिन पायो मोष ॥६१॥
जैसे घन रवि आड़े आये, तो तिनसूं कछु रवि नहिं छाये।
अरु जो मेघ दूरि ह्वै गये, तौ कछु रवि न प्रकासत भये ॥६२॥
रवि है परै उरै घन वृन्द, जाने लिप्त लोक मतिमन्द।
जैसे पवन प्रगट घनं तोई, धूम धूलि अरु दामनि होई ॥६३॥

रतुके गुण सीतस उष्णादि, उपजत बिनसत रहै अनादि ।
पर नहिं लिप्त अलिप्त अकास, त्यूं आत्मा परम प्रकास ॥६४॥
पर तोहू संगति नहिं करै, माया गुण न दूरि परिहरै ।
जहं लौं करै मेरी दृढ़ भक्ति, छूटी नहिं रजतम आसक्ति ॥६५॥
द्वैत भेद न भूलै जौ लूं, मम जन संग करै नहिं तोलूं ।
जैसे रोग होइ तन मांहीं, दृढ़ करि मूल उपास्यौ नांहीं ॥६६॥
जो तजि औषद अपथ्यहिं करै, तो सौ रोग बहुरि बिसतरै ।
त्यूं अहंकार रोग भवमूल, सो लै लग न भयौ निरमूल ॥६७॥
तौ लग संग अपथ्यहिं करै, तो बहुत्यू जगमें अवतरै ।
सिन्धु बाट फलि बग बहुतेरे, आवैं सकल सुरनके प्रेरे ॥६८॥
तेते अंतराइ सब करै, जोगीकूं करमनि बिसतरै ।
सो तिनतै पावै अवतार, बहुत्यूं करै भक्ति बिस्तार ॥६९॥
कर्म पंथमें भूलै नाहीं, मैं प्रेरकताके उर मांहीं ।
या विधि पाइ ज्ञान विज्ञान, देखै मोहि मिटावै आन ॥७०॥
तब ताकौ मन करमहि करै, लेन देन भोजन बिसतरै ।
पूरब संसकार करवावै, विधिको लिख्यौ न मिथ्या जावै ॥७१॥
सो मुनि मगन ब्रह्म सुख मांहीं, ताते करते जाने नाहीं ।
जो बैठे अरु ठाढ़ौ होई, आवै जाइ कहूं जे सोई ॥७२॥
अन्न खाइ जल पीवै सोवै, ज्यूं व्यौहार देहके होवै ।
सो सो कछु न जानै जोगी, निश्चल रहै ब्रह्म रस भोगी ॥७३॥
जो कबहूं देखे संसार, इन्द्रिय गोचर विविध प्रकार ।
तेते कछू सत्य नहिं जानै, सुपन वस्तु ज्यूं जागे मानै ॥७४॥

प्रथम आत्मा हुतो अबन्ध, आपहि भयौ प्रकृतिसूं बन्ध ।
बहुरयो मोसूं विद्या पावै, तब दुख जानि प्रकृति छिटकावै ॥७५॥
तब बहुरयू ं ताकूं नहिं गहै, मोहिं जानि मो हीमैं रहै ।
प्रथमहि जब मोकूं नहिं जान्यौ,तब माया सुख उतिम मान्यौ॥७६॥
तातै आपहिं गही उपाधि, ताको तजै मानिकर व्याधि ।
सदा निरंतर मोमें रहै, बहुरयू ं भवसागर नहिं बहै ॥७७॥
बहुरयू ं जब मम शरणहिं आवै, मम प्रसाद अज्ञान मिटावै ।
तब मायाको दुखमय जानै परमानन्द रूप मोहि मानै ॥७८॥
ज्यों रवि अंस सकलई अक्ष, पर रवि बिन न लखै प्रत्यक्ष।
रवि संयोग बहुरि जब होई, तब समस्त देखे सो सोई ।।७६।।
रवि बिन अन्धकार अति होवै, तातै कोई नैननि जोवै ।
रवि संयोग प्रकाशहि पावै, तब सब देखे तिमहि मिटावै ।।८०।।
परि ते नैन त्रिकाल अलेप, अन्धकारसूं भये न लेप।
ते ज्योंके त्यों तमहूं माहीं, परि रवि बिन कछु देखे नाहीं ।।८१ ॥
रवितै तम उपाधि परिहरै, पाय प्रकास प्रकासहिं करै ।
त्यों यह आतम मेरो रूप, स्वयं प्रकासिक परै अनूप ।। ८२ ॥
जनम मरण मरजादा रहते, काहू करि कबहूं नहिं गहते।
दूजे रहत आप ही ऐक, ताही करि ऐ देह अनेक ॥८३ ॥
महानभाव सकल अनुभाव, जामै कदे न करम सुभाव ।
नित्यानन्द सदा अति सुद्ध, सदा निरीह सदा परिबुद्ध ॥८४ ॥
जा करि इन्द्रिय तन मन प्राना, चेतन ह्वै बरतै विधि नाना ।
जहंलौं मन अरु बचन न जावै, और कौन विधि ताकौ पावै ८५॥

परि जब मोते रहितो भयो , तब ताको सब बल मिट गयो ।
अहंकार आयो अज्ञान, तातै हुनि भयो मैं मान ॥८६ ॥
जब बहुर यूं मम शरणहिं आवै, तब तै ज्ञान प्रकाशहिं पावै ।
तातै छोड़ै सकल उपाधि, जो मो बिन कर लीन्हीं व्याधि ॥८७॥
ताकूं कबहूं परसे नाहीं, परि मो बिना तजी नहिं जाहीं ।
मोकूं पाइ सकल परिहरै, मेरे चरणनकूं अनुसरै ॥८८॥
रवि प्रकाश मिटै तम जैसे, मम प्रकाश द्वैत भ्रम ऐसे ।
जो पुनि मोकूं नहिं बिसरावै, मोहिं सेवि मो माहिं समावै॥८६
सो मैं हुते न माया ध्यावै, अरु सो मायामें नहिं आवै ।
तातें नित ही सोमै रहै, मो मिल परमानन्दहि लहै ॥ ६० ॥
उधव इतनो ही अज्ञाना, जो केवल मैं जानै नाना ।
ब्रह्म बिना कछु दूजो नाहीं, जैसे सांप जेवरी मांहीं ॥६१॥
द्वैत देह जड़ मिथ्या जनै, चेतन एक ब्रह्म थिर मानै ।
अरु ये पंच वर्ण विस्तार, उपजै बिनसै बारम्बार ॥६२॥
जाको मिथ्या वेद बखानैं, अरु त्योंहीं गुरु साधू मानैं ।
अरु अनुभवते त्योंही देखै, जागे सुपन जगत त्यौं लेखै॥ ६३ ॥
ऐसो जगत सत्य सो जाने, यह दृढ़ वाणी वेद बखानै ।
अन्त सुरतिके बचन विचारै, वहै कहै तेई उर धारै ॥६४॥
तातै करम काम बहु कहैं, ते मूरख या भवमें बहैं ।
करम विछेपते तिनकी बुधि, तातैं कहूं न पावैं सुधि ॥६५॥
ताते तिनके लगे न ज्ञान, मूरख आपहि जानै जान ।
ताते विषयी जीव समस्त, तिनहिं भ्रमाय करे ते अस्त ॥६६॥

तातें उधव यहई ज्ञान, ब्रह्म जानि करि छोड़े आन।
मेरो भजन निरन्तर करै, जा प्रकास ह्वै तिहिं परिहरै॥९७॥
अरु उधव जो जोग कहावे, अष्ट अंगको वेद बनावे।
सो ज्यूं औरै विधि त्यूं जानो,भव मोचन कबहूं मति मानो॥९८॥
जब याके तन प्रबल विकार, करि नहीं सके भगति अधिकार।
तातें बहु विधि विधि बिसतरै, मन बिसवास पाइ परिहरै॥९९॥
प्रथमहि जोग धारणा करै, सीत उश्न रोगहिं परिहरै।
जैसे करि तप पाप निवारै, मंत्र निग्रह बाधाहि कटारै॥१००॥
भोजन षुधा अगद सो रोग, यौं तन जतन एक है जोग।
कामादिक मानसि विकार, जीतै मम सुमरण आधार॥१०१॥
मम भक्तनकी सेवा करै, ता करि दंभादिक परिहरै।
या विधि विघ न समस्त निवारै, मेरो भजन हृदयमें धारै॥१०२॥
अरु एके मूढ़ मूढ़नके राजा, साधैं जोग देहके काजा।
जो यह देह मिटाई चहिए, देह मिटे मेरो सुख लहिए॥१०३॥
मेरो अंस आतमा एह, याकूं दुखदाता सो देह।
ता देहहि जो राख्यौ, चहै, ते आपहि या भवमैं बहै॥ १०४॥
तनके रोग जरादिक टारै, स्वांस जीति करि मृत्यु निवारै।
अन्त मृत्यु होवै कलपन्त, बहुसूं पावै देह अनन्त॥ १०५॥
तातें ब्रिथा करै श्रम मूढ़, मेरो भजन न पावै गूढ़।
ताते मैं अरु संतनि माहीं, तिनको कबहूं आदर नाहीं॥ १०६॥
अरु प्रथमहि जो जोगहि करै, बिघन निवारि भक्ति बिसतरै।
ताको तन जो निश्चल होई, तोहूं आदर करै न सोई॥ १०७॥

छोड़ै जोग समाधि समेत, गहि मम चरण बढ़ावे हेत।
जोग मांहिं बाढ़ै अहंकार, ताते नहिं छूटै संसार ॥ १०८ ॥
तातै सब तजि मोकूं भजै, मम आधीन ह्वै आपा तजै।
मम प्रसाद तै मोकूं पावै, बहुरूं भव दुखमें नहिं आवै ॥१०९॥
जो मेरे होवै आधीन, आपहि माने सबतै हीन।
मैं आधीन होहुं ता जनकै, ज्यूं आधीन देह या मनकै ॥ ११०॥
केवल जो मम सरणहि आवै, ताहीकी इच्छा सब जावै।
तातै विघन न आवै कोई, विघन तहां इच्छा जहं होई ॥१११॥
मम आधीन रहै आनंदित, सब देवनके होवै वंदित।
तातै उधव महई करणौ, मेरौ भजन हृदैमें धरणौ ॥११२॥
जग अरु आप ब्रह्ममय जानै, द्वैत भाव कबहुं नहिं आनै।
ब्रह्म भावते ब्रह्महिं पावै, जनम जनमके दुख बिसरावै ॥११३॥

दोहा

ऐसो सुनि श्रीकृष्णसूं, अति ही हूं कर ज्ञान।
पूछयौ सुगम उपाइ तब, उधव परम सुज्ञान ॥ ११३ ॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्रीभगवत उधव सम्बादे भाषायां परमार्थ धर्म निरूपण नाम अष्टवीसमोऽध्यायः ॥

उधव उवाच—

चौपाई—

हे प्रभु यह तुम ज्ञान बखानौ, सो तो मैं अतिहूं कर जान्यौ।
बस नाहीं इन्द्रिय मन जिनको, कैसे काज होई प्रभु तिनको ॥१॥
जेहैं परमहंस दृढ़ चित, तिनकै ब्रह्म इष्टि है नित।
औरे जे यह ज्ञान विचारं, खैंचि खौंचि या मनकूं धारं ॥ २ ॥
तिनको मन बसि होइ न ज्यूं ज्यूं, महाकलेल लहै ते त्यूं त्यूं।
तिनको मन बसि होइ न क्यूंही, श्रमकरि जनम गुमावै यूंहीं ॥३॥
तुव पद परमानन्द समुद्र, ताकौ भेद न जानै क्षुद्र।
करै जोग जज्ञादिक कर्म, तिनतै कदे न छूटे भर्म ॥ ४ ॥
जाते गर्व बधे जो करै, ताते जुग जुग जनमों मरै।
केवल भक्त तुम्हारे जेते, परमानन्द लहै सब तेते ॥ ५ ॥
जबही ते तुव चरणहि आवे, तबहीते पूरण सुख पावे।
माया निकटि न आवै तिनके, तुम्हरे चरण हरदैमें जिनकै ॥ ६ ॥
ताते सहजहि जगत मिटावे, तुव चरणनिमें सहज समावे।
तुम्ह ब्रह्मादि सकलके नाइक, सबहिनको प्रभुताकै दाइक ॥७॥
तिनकै चरण गहै ह्वै दीन, तुम ताके होवौ आधीन।
अरु यह कहा अचंभा स्वामी, तुम सब प्रभु सब अंतरजामी ॥८॥
तिनकूं सब तजि सेवे जोई, करै आप बसि तुमकूं सोई।
सीस मुकटधारी है जेते, तुव पद मुकटन डारे तेते ॥ ३९ ॥

राम रुप तुम भये मुरारी, तिन कीन्हें बानर अधिकारी ।
बानर सकल सखा तुम करे, सवहिनके सब हित आचरे ॥१०॥
तातें जो तुव कृतहि विचारे, सो क्यूं पल तुव भजन निवारे ।
तुम ही नष सव देह सवारी, चेतन सक्ति तुम्है पुनि धारी ॥११॥
सदा रहे तुह्मरे आधार, तुम ही नित प्रति पालनहार ।
तापर जीव तुमहि नहिं जाने, करता भरता और न माने ॥१२॥
तोहू तुम औगुन नहिं आनौ, वहु विधि जंह तंह रक्षा ठानौ ।
पुनि जव हीं तुम सरणहि आवै,तव तुमसूं चारों फल पावै ॥१३॥
परि तथापि सो अति अज्ञान, तुमकूं सेइ लेइ जो आन ।
चार पदारथ सेवक ताकै, तुमरी भक्ति विराजै जाकै ॥१४॥
एक जहां नाहीं तुव भजनौ, नर्क जाणि सोई सो तजनौ ।
तातें जो होवै सरवंगी, तुम्हरे उपकारनकौ तंगी ॥ १५ ॥
अरु विधि कृपा आयुवल पावै, वहु विधि प्रति उपकार बनावै ।
तोहू तुमहिं अन्त्रण नहिं होई, वह्मादि जहां लौं जोई ॥ १६ ॥
जो तुम बाहिर सतगुरुरूप, भीतर चेतन शक्ति अनूप ।
यों जीवनके पाप निवारौ, आपहिं है भवसंकट टारौ ॥ १७ ॥
तातें भाषौ भजनानन्द, सहजि मिलै तुव छूटै फन्द ।
ए सुनि उधवके प्रिय वैन, बोले कृष्ण कृपाकरि ऐन ॥ १८ ॥

श्रीभगवानउवाच:—

धनि-धनि उधव तू मम भक्त, सव जीवनके हित अनुरक्त ।
तोसं कहूं आपनो धर्म, जाते मिटै सहज सब कर्म ॥१९ ॥

क‧ते सुख आगे सुख पावै, छोड़े भवभय मोमें आवे ।
उधव कर्म करै नर जेते, मेरे हेत करै सब तेते ॥ २० ॥
कर्मनिमें भाषै मम नाम, मेरे करि राखे धनधाम ।
मोमें अरपै मनकी ब्रत्ति, ताके सब आचरण निब्रत्ति ॥ २१ ॥
मेरी प्रीति करै जो करै, मेरी प्रीति रहित परिहरै ।
जिन देसनमें मेरे भक्त, तिन करि बास होइ अनुरक्त ॥ २३ ॥
सुर अरु असुर नरनिमें जेते, मेरे भक्त भये हैं केते ।
तिनतिनके आचरननि जाने, त्योंही त्यों आपनहू ठाने ॥ २३ ॥
मेरे यज्ञ-महोत्सव करै, परबनिमें मिलाप विस्तरै ।
मेरी जहां जातरा होई, तहां-तहां चलि जावै सोई ॥ २४ ॥
गीत नृत्य वादित्र करावे, छत्र चंवर आदिक अधिकावै ।
अति उदारता करि सब ठानै, ममहित लगै भलौ सो जानै ॥२५॥
सब भवनमें मोकूं देखै, अन्तर बाहर एकै लेखै ।
आप आदि जग मोमैं जानै, त्यों आकाश अनाब्रत मानै ॥ २६ ॥
यों सबमें जानै मम भाव, त्यागै सकल प्रब्रत्ति सुभाव ।
सबहिनके सतकारहिं करै. ग्यानद्रष्टि भेदहिं परिहरै ॥ २७ ॥
एकै विप्र वेद अधिकारी, एकै अंतज महाविकारी ।
एकै विप्रनके धन हरता, अरु एकै धन विस्तरता ॥ २८ ॥
एकै तेज हीन बहु देखै, एकै तेजवंत बहु लेखै ।
एकै क्रूर सकल दुखदाई, एकै स्वांतिक सकल सहाई ॥ २९ ॥
एक रूप नानाविधि देखै, परि जो भेद कहूं नहिं लेखै ।
मेरी द्रष्टि सबनिमें आनै, मम जन पंडित ताहि बखानै ॥ ३० ॥

या विधि सबमें मोकूं जानै, देहगेह कछुवै नहिं आनै।
थोरे काल माहिं या जनके, सब विकार मिटि जावैं मनके ॥३१॥
स्पर्धा तिरस्कार अहंकार, सकल मिटे कछु लगै न बार।
तातें देह दृष्ट नहिं धरै, लोग कुटुम्ब लाज परिहरै ॥ ३२ ॥
हाँसी करै सकल ही लोक, पर सो आणै हरष न सोक।
तिनकी कछु मनमें नहिं आनै, सब जीवनमें मोकूं जानै ॥ ३३ ॥
खर स्वकर चांडालनि अंत, जहं लो मेरी श्रष्टि अनन्त।
नमस्कार तिन-तिनकूं करै, दंड समान धरनिमें परै ॥ ३४ ॥
जो लगि थावर जङ्गम माहीं, मेरो भाव होय थिर नाहीं।
तो लग मन वच काय समेत, यों सबमें ठाने मम हेत ॥ ३५ ॥
या विधि करत रहै नर जोई, ताकूं सकल ब्रह्ममय होई।
मिटै अविद्या विद्या आवे, तातें बन्धन सकल मिटावे ॥ ३६ ॥
उधव मते सकल हैं जेते, वेद मध्यमें भाषे तेते।
तिनमें यह मतो मम सार, जाने वेग मिटै संसार ॥ ३७ ॥
मन क्रम वचन जहां लौ जेते, मम रूपहिं जानै सब तेते।
उधव ऐसो धरम है मेरो, कहा प्रभाव कहूं तेहि केरो ॥ ३८ ॥
आन रूपहू प्रगटै जोई, क्योंहू बहुरि मिटै नहिं सोई।
जहं लग गुण अरु निर्मित वस्त, तह लगि सबही होवे अस्त ॥३९॥
मैं निरगुण सब गुण परकासी, तातें मम धरमो अविनासी।
मेरो नास कदे नहिं क्योंही, मम धरमो थिरऊ त्योंहीं ॥४०॥
अरु उधव यह कहा करीजे, मेरो धर्म कदे नहिं छीजे।
उधव जे लौकिक व्योहार, राजस तामस विविध प्रकार ॥४१॥

जिनते केवल होई अनर्थ, प्रवतिहुको सब मेटै अर्थ ।
नरकन माहीं डारनहार, काम क्रोध द्वेषादि विकार ॥४२॥
जो तेऊते मोमैं करैं, तोहू मोहिं लहैं भव तरै ।
जैसे कंस मरन भय करयो, मेरो धर्म नहीं आचरयो ॥ ४३ ॥
परि सो भयउ करि मो मांहीं, मम पद पहुंच्यौ भव मैं नाहीं ।
अरु गोपकनि कियौ बिभचार, लंघे वेद तजे भरतार ॥४४॥
परि बिभचारहु मौमै कस्यो, तोहु तिन भव जल परहस्यो ।
अरु जो दोष कीयौ सिसपाल, जाते जीव न ग्रासै काल ॥४५॥
परि सोऊ करि मोमैं दोष, भव जल तजि करि पहुच्यौ मोष ।
यों विष रूप विकारऊ जेते, मोमें आये अमृत तेते ॥४६॥
तातें यह विवेक चतुराई, देह बुद्धि दूजी नहिं काई ।
लो झूठे सूं साचहिं लीजे, पूरन काम आपनो कीजै ॥४७॥
यह झूठी छणभंगुर देह, सकल विकारन हीको गेह ।
ताकरि पइये हरि अविनासी, निरविकार पूरन सुखरासी ॥४८॥
यह सब ब्रह्म ज्ञानको सार, तातें मिटै सहज संसार ।
मैं संक्षेप माहिं सब कह्यो, याते सार न कहिबे रह्यौ ॥४९॥
यह नर तन अरु यह मम ज्ञान, देवन हू को दुर्लभ जान ।
यद्पि जीव लहै नर देह, तोहू ज्ञान न पावै एह ॥५०॥
ताते मैं भाष्यौ यह ज्ञान, जाते मोहि लहै तजि आन ।
उधव प्रश्न करी तुम जेती, उत्तर सहित कही सब तेती ॥५१॥
ते सब तत्त्व वेदको जानै, मेरो प्रेम रूपकरि मानौ ।
यह तुम्हरो मेरो सम्बाद, अध्यातम परमातम बाद ॥५२॥

ताको कुछ हिरदेमें धारै, पावै मोहिं आपको तारै ।
जो पूरन यह मेरो ज्ञान, मेरे भक्तन देवै दान ।।५३।।
सो साहिबहु है मेरो दाता, जहां तहां होवे विख्याता ।
जो जो देइ लहै सो सोई, लोक वेद साषत है दोई ।।५४।।
तातें दान देइ जो मेरो, मैं आधीन होऊं तेहिं केरो ।
मोहिं देइ सो मोकूं पावे, तिनकूं लै मो माहिं समावे ।।५५।।
जो नर याकूं नितही पढ़ै, ता जनको मोसों हित बढ़ै ।
सो नर मेरो अतिप्रिय होई, ताके सम दूजो नहिं कोई ।।५६।।
जो यह सुनै नितकरि आदर, और सकलको करै अनादर ।
सो कामन सों लिप्त न होई, मेरी भक्ति लहै दृढ़ सोई ।।५७।।
मैं यह प्रेम ज्ञान बखान्यो, उधव तुम कछु हृदय धार्यो
लोक मोह भय भयो निवृत्ति, निश्चल भयौ हृदय आवृत्ति ।।५८।।
उधव यह जो मेरो ज्ञान, सो मति जानौ मोते आन ।
तातें दम्भ सहित है सोई, अरु नास्तिक डहंकुआ होई ।।५९।।
प्रीति न जाने नहिं ममभक्ति, दुर्विनीत त्रिषयन आसक्ति ।
तिनको ज्ञान न देनो यह, ज्यों काल र भू बीज र मेह ।।६०।।
इन दोषन करिं होय विहीन, मेरो भक्त प्रीत दृढ़ दीन ।
स्त्री शुद्रौ ऐसी होई, ताहसों अन्तर नहिं कोई ।।६१।।
ऐसेन सो या ग्यानहिं कहिये, तो तिन सहित प्रेमपद लहिये ।
जो यह मेरो जाने ज्ञान, ताहि जान बे रहै न आन ।।६२।।
ज्यों कोई पीवे पीयूष, ताके रहै न दूजी भूष ।
ज्ञान रु कर्म जोग अष्टंग, ऋषि बारायज नीति सब अङ्ग ।।६३।।

अरथ अरु धरम मोक्ष अरु धाम, इन सबहिनको मोमें धाम।
तातें मोमें आवै जोई, इन सबहिनको पावै सोई ॥६४॥
पर मेरो जन कछू न लेवै, सकल त्यागिकर मोकूं सेवै।
ताते सधिरु साधन जेते, मम जन देखै मोमें तेते॥६५॥
सब तजि जब मम चरणहिं सेवै, आप निवहै कछू न लेवै।
ताके सम दूजौ प्रिय नाहीं, सो नित मोमें मैं तामाहीं ॥६६॥
तब सुन हरिके ऐसे बैन, उधव अंस कुलाकुल नैन।
आगे ठाढ़ अंजुली बांधे, प्रेम मगन तनमन दृढ़ साधे ॥६७॥
बैनहुतें बोल्यौ नहिं जावै, कंठहु तें गदगद स्वर आवै।
ताते उधव चुप करि रहै, कछू बेर कछु बैनन कहै ॥६८॥
बहुसू चित्त थांभिके धीरज, पूरण प्रेम भयो अब करीज।
निश्चय आप कृतारथ मान्यौ, सब सन्देह हृदेते भान्यौ ॥६९॥
हरिके चरननि माथौ धार्‍यौ, उधव भक्त बचन उचार्‍यौ।
जिनको हरिसों बाढ़्यौ प्रेम, जिनको कहि सुनि पइये क्षेम ॥७०॥

उधवउवाच

नाथ अजनमां अरु अविनासी, परमानन्द परम परकासी।
तिनके सत्यधाम जब आयो, तबही सब अजान मिटायो ॥७१॥
सन्यधान पावकके जावै, सजहिं तमभय सीत मिटावै।
अरु तापर तुम दीनदयाल, मो निज जनपर भये कृपाल ॥७२॥
यह विग्यान दीप मोहिं दीन्हौं, जाते सकल सुभासुभ चीन्हैं।
तुम्हरे चरन सरन भव माहीं, दूजे ठौर कदे सुख नाहीं ॥७३॥

जो कोई तन अपनकूं जानै, अरु तापरि अरु कुलकूं मानै ।
सो तुव चरन सरन नहिं आवै, तोहूते कहुंई सुख पावै ॥७४॥
प्रभुजी तुम अति करुणा करी, मम माया पासी परिहरी ।
सकल याद् वनमें अरु नेह, अरु युवती सुत वितारहु देह ॥७५॥
ये सब मेरे मनते टारै, अपने चरण कंवल सिर धारै ।
तुम विस्तारी अपनी माया, जिन यह सकल लोक भरमाया ॥७६
सो तुम ज्ञान खड्गसों छेदी, ह्वै कृपाल निज प्रीत निवेदी ।
नमो नमस्ते ज्ञान प्रकासी, योगेश्वर ईश्वर अविनासी ॥७७॥
दीजे मोहिं एक वर देवा, निश्चल हृदय निरंतर सेवा ।
तुमहिं छोड़ दूजो नहिं जानौ, परि सेवक ह्वै सेवा ठानौ ॥७८॥
मोहिं प्रसाद दीजिये यह, तुमसों निश्चल बढ़ै सनेह ।
करी वीनती उधव भक्त, बोले हरिजी ह्वै अनुरक्त ॥७९॥

श्रीभगवानउवाच—

तथास्तुति उधव मम भक्ति, मम चरनन निश्चल आसक्ति ।
अब तुम उधव ऐसी करौ, लोकनसों सिक्षा विस्तरौ ॥८०॥
बदरीखंड आश्रम है मेरो, अति पुनीत दरसन जेहि केरो ।
तहं तीरथ मम चरननको जल, दरस परस स्नान हरे मल ॥८१॥
नाम अलकनंदा सो गंगा, निरमल करे दरस सब अंगा ।
तहां जाइ तुम बासा करौ, फल भक्षणी तन बलकल धरौ ॥८२॥
द्वंद सीत उसनादिक सहौ, विनयादिक शुभ लक्षण गहौ ।
इन्द्रिनके अरथहि परिहरा, यह विज्ञान ज्ञान उर धरौ ॥८३॥

मोते ज्ञान लह्यौ तुम सोई, बैठि एकंत विचारो जोई।
वचन चित सब मोमें धरौ, मेरो धरम सदा बिसतरौ ॥८४॥
तब तीनों गुणकूं परिहरिहौ, मम निर्गुण पदकूं अनुसरिहौ।
यह उधव प्रतिज्ञा मेरी, फिरि उतपति न ह्वेहे तेरी ॥८५॥
या विधि कृष्ण वचन उचारे, ते उधव ले मस्तकि धारे।
चरनन परि परदक्षिना दीनी, तब चलिवेकी इछा कीनी ॥८६॥
यद्यप्य द्वन्द हृदे नहिं आवै, तोहू हरिजी तजे न जावै।
आंसु कण्ठ अति आदर बुधि, तनमय भयौ न तनकी सुधि ॥८७
कृष्णवियोग न क्योंही सहै, बार बार फिरि चलि चलि रहै।
तब अन्तरजामी गोपाल, जनको जानि प्रेम बेहाल ॥८८॥
निकट बुलाय मिलै दे अंग, ज्ञान रूप कीन्हौ सरबंग।
तब आपनी पावरी दीनी, ते उधव जन माथे लीनी ॥८९॥
तो हू प्रथमहिं कृष्ण पधारे, जादव लरे भास सिधारे।
तबहीं तहं उधव चलि आये, कृष्ण एकही बैठे पाये ॥९०॥
पुनि मंत्रेय पधारे तहां, कृष्ण देव रुचि बैठे जहां।
दोहू किय हरिको परनाम, दरसन पायो अति अभिराम ॥९१॥
ठाढ़े भये जोरि कर दोई, प्रेम मगन कछु कहै न कोई।
तब तिनको हरि भाष्यौ ज्ञान, जैसे अंधकारको भान ॥९२॥
मैत्रेयकूं दियो आदेस, बहुरहि कहियो यो उपदेस।
आज्ञा दीन्हीं उधव जनकूं, आपन सक्ति कियो थिर मनकूं ॥९३॥
तब उधव जन चरनन परे, हरि हरदय निश्चल करि धरे।
पुनि उधव जन पहुंचे जहां, नर नारायण प्रगटे तहां ॥ ९४ ॥

तहां जाय कीन्हें आसन, जे जे हरि भाषे ते कारन ।
कन्दमूल अरु फल आहार, प्रेम भजन नित ब्रह्मविचार ॥९५॥
तब त्रिगुण विस्तार मिटायौ, उधव ब्रह्म निरंजन पायौ ।
यह हरि उधवको सम्वाद, हरिजीको है परम प्रसाद ॥९६॥
जापर कृपा करै सो पावै, तजि भवसिन्धु ब्रह्ममें जावै ।
तब ते याको भाषै सुनै, प्रेम सहित हृदयमें गुणै ॥९७॥
तबते पावै परमानन्द, श्रमहिं बिना मेटै दुख द्वन्द ।
यह स्वयमेव आप हरि कह्यौ, जामें कछु सन्देह न रह्यौ ॥९८॥
यामें ऐसो कृष्ण प्रभाव, मिटै जन्म उपजै हरिभाव ।
जिन ही प्रगट अमृत है करै, भक्तिन पाय सकल दुख हरै ॥९९॥
एक जलधितें अमि उपजायौ, निजानंद देवनकूं पायौ ।
जरा रोग आदिक दुख हरै, बल उपजाय विगत भय करै ॥१००॥
अरु दूजौ यह अमृत एक, बेद सिन्धुते विविध विवेक ।
सो अपने जननको पायौ, जनम मरन भवभयहिं मिटायौ ॥१०१॥
ऐसे आदि पुरुष अविनासी, सुमिरत जिन्हहिं मिटै भव पासी ।
कृष्ण नाम लीन्हों अवतार, तिनकूं बन्द न बारम्बार ॥१०२॥

दोहा—

ऐसो सुन सुखदेवसूं, प्रेम तत्व उपदेस ।
कृष्ण कथाके प्रेमते, कीन्हीं प्रश्न नरेस ॥१०३॥

इति श्री भागवते महापुराणे एकादस स्कन्धे श्रीभगवत उधव सम्बादे भाषायां उधव बद्रीखंड गमन नाम उन्नतीसमौ अध्यायः ॥२९॥

परिचितउवाच

चौपाई

हे प्रभु हरिकी कथा सुनाओ, कणपुटनि यह अमृत प्यावो ।
हरि उपदेस उधवहिं दीन्हों, पीछे आप कहा तिन कीन्हों ॥१॥
यादव कुल कूं प्रगट्यौ साप, हरिजी कहा कस्यो तव आप ।
ईश्वरको बाधा नहिं कोई, अरु द्विज श्राप न मिथ्या होई ॥२॥
सबके तन मन मोहन देह, परमानन्द सुधाको गेह ।
जे नारी हरि दरशन पावैं, तिनसूं नैननि खैंचे जावैं ॥३॥
अरु जे हरिके रूपहिं गावै, बानी सहित मानते पावै ।
अरु जे सुन करि हिरदे धारे, ते पलको नहिं खंडित पार ॥४॥
भारथमें अर्जुन रथ माहीं, बैठे दरसन लहे जो जाहीं ।
तिन तिन हरिकी समता पाई, सब संश्रत ततकाल गंवाई ॥ ५ ॥
ऐसो तन हरि त्याग्यौ कैसे, कोई हरै नाग मनि जैसे ।
ऐसे बचन कहे नरदेव, उत्तर दीन्हों श्री सुखदेव ॥६॥

श्रीसुखउवाच

द्वारावती उठे उतपात, तिनको देखि कही हरि बात ।
उग्रसेन आदिक सब लोका, सभा स्वधर्महिं हरष न सोका ॥७॥
तिनसों कृष्ण बचन उचारै, हरिको मतौ न लखै विचारै ।
निज मायासं मोहित करै, ज्ञान विवेक सबनिके हरै ॥८॥

श्रीभगवानुवाच—

हे यादवहु सुनहु मम बाता, द्वारावती बहुत उत्पाता ।
ये उत्पात मृत्यु निसाना, ताते तजिये यह अस्थाना ॥९॥
जुवती बाल वृद्ध सब जेते, संखोद्धार पठइये तेते ।
हमरे सकल प्रभासहिं जइये, तहं पच्छिम सरस्वती नहइये ॥१०॥
कर स्नान तन निर्मल करिये, सुधा हृदय तीरथ व्रत धरिये ।
जेते बहुत पितर अरु देवा, तिनकी करिये पूजा सेवा ॥११॥
अरु विप्रनकी पूजा कीजे, करि स्नान दान बहु दीजे ।
गाय भूमि सोना वस्त्रादि, हय हाथी रथ अन्न ग्रहादि ॥१२॥
आसीरवाद द्विजनको लीजे, जाते विघन सकल ही छीजे ।
देवन विप्र गायकी पूजा, हरन पाप विधि मध्यम दूजा ॥१३॥
ऐसी सुनि हरिजीकी बानी, सब जादवनि भली करि मानी ।
नावनि बैठ सिन्धुई उतरै, चढ़ करि रथनि प्रमाणहिं करै ॥१४॥
ज्यों हरि तिनको आज्ञा दीनी, त्यों त्यौं सबनि सबै बिधि कीन्हीं
करि स्नान धरम बहु ठानै, मध्य प्रभास आप बहु मानै ॥१५॥
तब तिन कीन्हौं मदिरा पान, जाते भूलि गये सब ज्ञान ।
तबते नमित सकलई भए, हरि माया विवेक हरि लये ॥१६॥
तिनमें कलह भयो उतपन्न, सबमें प्रेरक हरि प्रच्छन्न ।
तब तिनकी ता सभा मंझारी, सांतिक बारि गिरा उचारी ॥१७॥
कृत ब्रह्माको करि अपमान, सांतिक छोड़ बानी बान ।
भाई जो क्षत्री तन धारी, अरु बहुमें कहिये अधिकारी ॥१८॥

सो ऐसो को ऐसी कर, सोवत बालनके सिर हरै।
यह प्रदुम्न बचन सतकार्यो, कृत ब्रह्माको अति धिकार्यो ॥१९॥
तब कृत ब्रह्मा कीन्हों क्रुध, बाणी बाण प्रकास्यौ जुद्ध।
अरे करै क्षत्रीको ऐसी, व्याधि कृत्ति कीन्हीं तत जैसी ॥२०॥
भूरिश्रवा निरायुध भये, जाके बाहु युगल कटि गये।
ताको बध तिन कीन्हों ऐसे, व्याध कसाई कर न जैसे ॥२१॥
तब सातिक उठि बोले बानी, सुनौ सुनौ हो सारंग पानी।
इनको जस अरु आयु सिरायो, तातें इसो मतो ह्वै आयौ ॥२२॥
एकहि बचन खड्ग तिन काढ्यो, कृतवर्मा को मस्तक बाढ्यौ।
यद्पि सब मिलि बहुत निवार्यो, तोहू सात्रिक क्रोधन टार्यौ २३॥
ताते सकल भये तब क्रुध, सातिक ही तब ठान्यौ युध।
तब ते सकल भये द्वै ओर, युध रच्यो सागर तट घोर ॥२४॥
कोई धनुष भालसों लरै, कोई खड्ग गहै संहरै।
केई फरसी गदा कुठार, केई लरैं सैं हथी प्रहार ॥२५॥
केई गुर्ज गोफना केई, ब्रक्षादिकन लरैं ते तेई।
हर्षित सबै कर संग्राम, बैठे देखैं कृष्णह राम ॥ २६ ॥
हयसों हय हाथीसों हाथी, रथसों रथ साथीसों साथी।
खरसों खरु ऊंट ऊंटनसूं, महिषरु महिष बैल बैलनसूं ॥ २७ ॥
खच्चरसूं खच्चर मिल लेरं, नरसूं नर मिलि युधहिं करैं।
महामत्त कछु लखैं न ऐसे, युद्ध करैं बनमें गज जैसे ॥ २८ ॥
साम प्रद्युमन ठान्यौ युद्ध, त्यों अक्रूर भाज अति क्रुध।
तहं संग्राम जीतरु सुभई, करै जुध बारनिको भई ॥ २९॥

गदहि राम कृष्णको भ्राता, नाम सुचारु पुत्र विख्याता।
त्यों सांबिकहै मिलि अनुरुद्ध,कुरथ सुमित्र करैं मिलि युद्ध ॥३०॥
उलमुक निषद सहस्रजित सजिमत,भानु आदि दे योध अपरमित।
आपु आपुमें युद्धहिं ठान्यो, हरि करि मोहित कछु न जान्यौ ३१॥
दाशिन वृष्णि मधु दाशरह वंस, सात्विक अंधक भोजवतंस ।
अरबुद सूरसेन मधु माथुर, देस विसरजनको तिरकुर फर ॥३२॥
आप आप मिलि जुधहिं ठान्यो, सबहिं परसपर सुहृदय मान्यौ।
पुत्र पिता भाई अस भाई, मामा अरु भानेज लराई ॥३३॥
काका भतीजे नाती नाना, मित्र मित्र मिलि युद्धहि ठाना।
सुहृद सुहृद ज्ञातिसूं ज्ञाती, सब मिलि भये परस्पर घाती ३४
तब सर क्षीण भये सबहिनके, टरे ठाट धनुष तिन तिनके।
आयुध क्षीण सकल जब भये, तब तिन करनि ऐरका लये ॥३५
मद मूसल चूरणते जेते, वज्र समान सिन्धु तट तेते।
तेते सकल करन करि लीन्हें, हरि सों युधहिं क्रोधहिं कीन्हें ।३६।
रामकृष्ण बहुभांति निवारैं, पर ते मूरख कछु न विचारैं।
रामकृष्णको रिपु करि जानें, युद्ध वुद्धि अन्तरगत आनै ॥३७॥
तब आपऊ कियो तिन कोप, करयौ चहैं सबहिनको लोप।
तब ऐरका करनि तिन लिये, थोरे माहिं प्रलय सब किये ॥३८॥
विप्रश्राप अच्छादित करै, हरिमाया विचार सब हरै।
पावक क्रोध प्रगट तहं भयौ, बांस विपिन कुल जरि भरि गयौ॥३
तब कुल सकल नष्ट हरि देख्यौ, भूको भर उतारयौ लेख्यौ।
जा कारन लीन्हों अवतार, सो परिहरयौ धरनिको भार ॥४०॥

तब समुद्र तटमें बलभद्र, कीन्हों ब्रह्मध्यान अति भद्र ।
आपुहि ब्रह्ममाहिं ले राख्यौ, मानवदेह दूरिकरि नाख्यौ ॥४१॥
राम प्रयाण लख्यौ हरि जबहीं, लघु पीपलतर बैठे तबहीं ।
निर्मल रूप चतुरभुज धार्‍यौ, दसउदिसाको तिमिर निवार्‍यौ॥४२॥
ज्यों निरधूम पावक परकास, ऐसो प्रगट भयौ उजास ।
पतो बसन तौ तन घनश्याम, तप्तस्वर्ण सोना अभिराम ॥४३॥
सुन्दर हास सहित मुखपद्म, कमल नयन सोभाके सद्म ।
कानन कुण्डल मकराकार, सोस मुकुट सोभा अधिकार ॥४४॥
सांचर नील सिर केस विसाला, उर मृगु लता मणि बनमाला ।
कंठ कोसु कटि सूत्र विराजै; क्षुद्रघंटिका नूपुर बाजै ॥४५॥
बहु आभूषण भूषत अंग, देखत मोहे अमित अनंग ।
आयुध मूरतवंत समस्त; सुमिरत जिनहिं होय भव अस्त ॥४६॥
उत्तम चरण कमल आसक्त, जिनको उर ध्यावे नित भक्त ।
दक्षिण जंघा नीचे कर्‍यो; बाम चरण तो ऊपर धर्‍यौ ॥४७॥
यों निश्चल ह्वै बैठे कृष्ण, सुमिरत तिन्हें मिटै भवतृष्ण ।
अति लघु मूसल खंड जो रह्यो, जलमें डार्‍यौ मच्छो गह्यौ ॥४८॥
सो वह मच्छ जालमें आयौ, ताके उदर लोह सो पायौ ।
जरा व्याध भल कासो कीन्हौं, ले करि सरके आगे दीन्हौं ॥४९॥
सो वह व्याध हुतो बनमाहीं, हरिको पद तिन जान्यो नाहीं ।
हरिको चरण दृष्टि जब पर्‍यौ, मृगमुख जानि घात तिन कर्‍यौ ५०
सोई बान लगायो चरण, विप्र बचन नहिं मिथ्या करण ।
सो वह बधिक निकट चलि आयौ, रूप चतुर्भुज दरसन पायौ ५१

बाण लग्यो तब हिकरो ध्यान, जरा भयो तब सूतक समान ।
कम्पनि करि बोल्यो जगदीश, कम्पत अंग लग्यो ज्यों शीत ॥५२॥
हे प्रभु मैं कीन्हों अपराध, तुमहिं न जान्यो मूरख व्याध ।
पशु मैं कीन्हों सकल अजाने, बान चलायो मृगको जाने ॥५३॥
पापात्महिं तुमही तारौ, जे तुम नाम लिये ते तारौ ।
तुव सुमरण सब पाप विनासै, मिटि अज्ञानरु ज्ञान प्रकासै ॥५४॥
ब्रह्मादिक करैं आराध, तिनको मैं कीन्हों आराध ।
तातें प्रभुजी विलम न करो, मो पापीके प्राणहि हरो ॥५५॥
तातें दूजो करै न ऐसो, यह अपराध करयो मैं जैसो ।
जिनकी मायाको विस्तार, ब्रह्माशिवसनकादिकुमार ॥५६॥
औरौं श्रुति दृष्टा हैं जेते, कसहु जानि सकैं नहिं तेते ।
मोहित सकल तुम्हारी माया, ताते किनहू पार न पाया ॥५७॥
तिनको पापजौनि हमजेते, कौनभांतिकरि जानेतेते ।
तातें अब दूजो न विचारै, वेगहि मोपापीको मारौ ॥५८॥
ऐसी जरा व्याधिकी बानी, सुनी निः कपट सारंग पानी ।
तवप्रभू आप वचन उचारे, ताके सकल सोक भयटारे ॥५९॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

उठि उठि जरा भयहि मतिमाने, अपनो करयो पाप गति जाने ।
यह समस्त लीला है मेरी, यामें कहा शक्ति है तेरी ॥६०॥
मेरी कृपा जाहि तू स्वर्ग, जहां महा सुख नहिं उपसर्ग ।
ऐसे वचन कहे हरि जबही, उतरयो विमान स्वर्गते तबही ॥६१॥

तीन परि क्रमा अरु परनाम, करिके बधिक गयो सुरधाम।
चढ़ि विमान सुरलोकहि गयो, जय जय शब्द जहां तहं भयो॥६२॥
तब रथ लिये सारथी देखै, परि हरिजीकूं कहूं न पेखै।
तुलसी गंध पवन जब आयो, ताके खोज कृष्ण पै आयो॥६३॥
पीपलमूल किये हैं आसन, प्रभा मनौ सिस सूर हुतासन।
आयुध आगे मूरतिवंत, योनि जपत देखे भगवन्त॥६४॥
तब दारुक धीरज नहिं धस्यौ, रथ तजि विह्वल चरणनि पस्यौ।
उमग्यो हृदय नैन जल छायो, प्रेम मगन मुख बैन न आयो॥६५॥
तब धरि धीरज अंसु निवारे, करुणा सहित बचन उचारे।
हे प्रभु मैं तुव चरननि देखे, ते मैं पलक कलप करि लेखे॥६६॥
तबसे नष्टदृष्टि मैं भयो, सब दुख एक बार अनुभयो।
भूली दसा न कहुं सुख पायो, ज्यों उपपति निसमाहिं छिपायौ
तुम बिन मैं जिमि तन बिन प्राण, जैसे नैन अन्ध बिन भान।
ऐसे बचन कहत ही सूत, देख्यो एक चरित्र अद्भूत॥६८॥
गगनिहु तें उत्तम रथ आयौ, हयनि सहित अरु गरुड़ सुहायौ।
मूरतिमय हरि आयुध जेते, रथमें जाय चढ़े सब तेते॥६९॥
यह चरित्र दारुक जब देख्यौ, विसमय भयो अचंभो लेख्यो।
तब हरि सूतहिं बैन सुनायौ, करि सनमान दुख विसरायौ॥७०॥

श्रीभगवानउवाच

सूत द्वारिकाको तुम जाओ, समाचार सब जाय सुनाओ।
सबको मरन राम निर जान, अरु मैं हूं अब करत पयान॥७१॥

द्वारावती रहौ नहि कोई, तनकूँ भर जहाँ लो जोई ।
यह नरलोक तजूं मैं जबहीं, सिन्धु द्वारिका बोर तबहीं ॥७२॥
हमरे मात पितादिक जेई, लै अपने लोगन ते तेई ।
इन्द्रप्रस्थ अर्जुन संग जैयो, द्वार पुरी रह दुःख न पैयो ॥७३॥
तिनको यह सन्देह सुनाओ, अरु तुम मम धर्महिं मन लाओ ।
सब माया रचना यह जानौ, नाम रूप सब मिथ्या मानौ ॥७४॥
जगसंसार मम माया रूप, निश्चल जानौ मोहि अरूप ।
जहं तहं व्यापक मोकूं जानौ, नामरूप सब मिथ्या मानौ ॥७५॥
मेरे चरण निरन्तर भजै, दूजी सकल वासना तजै ।
ऐसो ह्वै आवै मो माहीं, ताते फिर दुःख पावै नाहीं ॥७६॥
यह सुनि सूत कृष्णसूं ज्ञान, छोड्यो सोक मोह भय आन ।
नमस्कार करि बारम्बार, दई प्रदक्षिणा विविधि प्रकार ॥७७॥
हरि वियोग तें अति दुःख पायौ, ग्यान विचारि चित्त बहरायौ ।
हरिके चरण कमल उर धारे, तब दारुक द्वारिका पधारे ॥७८॥

दोहा

यह नृप मैं तुमसूं कह्यौ, यदुकुलको संहार ।
अब भाषों हरिको गवन, अरु हरिजन उद्धार ॥७९॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादसस्कंधे श्री सुकपरीक्षत संवादे बलद पयाणोनाम तीसमो अध्याय ॥३०॥

श्रीशुकउवाच

चौपाई—

तव ब्रह्मा सनकादिकनु लिये, भृगु आदिकन तथा संग किये।
सहित भवानी संकरदेव, इन्द्रादिक सुर अरु उपदेव ॥१॥
विद्याधर किंनर गन्धर्व, पितर महोरग चारण सर्व।
गरुड़ लोक पक्षी अरु सिद्ध, हरिके दरस कामनाबिद्ध ॥२॥
सब मिलि हरि दरसनको आए, सबहिन हरिके दर्शन पाये।
हरिके जनम करम गुन गावै,सब मिलि जय जय सबद सुनावै॥३॥
सकल विमान बिछायो गगन, बरषैं पुष्प प्रेम करि मगन।
बारम्बार करै परनाम, मुखते भाषै हरिको नाम ॥४॥
ब्रह्मादिक सब कृष्ण विभूति, कृष्णाहुं ते उनकी उद्भूति।
ते समस्त भाष भगवान, नैन मूंदि तब ठान्यौ ध्यान ॥५॥
ब्रह्मरु आप एक करि ध्यावै, द्वैतभाव सब दूरि विहावै।
निज तन लोकन अराम, ध्यान धारना मंगलधाम ॥६॥
ताकूं अगनि धारना धरी, अगनि उपाय भसम सो करी।
तब हरिजी बैकुण्ड पधारे, या बिधि सबके कारज सारे ॥७॥
तब दुन्दुभि बाजे सुरलोक, उपज्यो हरष मिटे भय सोक।
सत्य रु कीरत धीरज धरमा, सोभा अरु जे उत्तम करमा ॥८॥
ते तब गये संग जगदीस, जाते हरि सबहिनके ईस।
तातें जहाँ कथा हरिजीकी, पूजा ध्यान धारना नीकी ॥ ९ ॥
तहाँ समस्त रहै तेई ते, सत्यादिक सब बिधि जेई जे।
ब्रह्मा आदि सकल सुर जेते, हरिकी गतिहि न जानै तेते ॥१०॥

हरि वैकुण्ठ पयाणो करयौ, सो किनहू को जान न पर्यौ ।
काहू नहिं निज हरिको देख्यौ, बड़ो अचम्भा सबहिन लेख्यौ ११॥
जैसे मेघ होंहिं आकास, अरु दामिनि प्रगटै घन पास ।
है करि प्रगट गुपत ह्वै जावै, ताको खोज न कोई पावै ॥१२॥
त्यूं हरि कियो प्रयाणौ जबहीं, काहू तिनहिन देख्यो तबहीं ।
भू मैं प्रगट हुते तब देखे, गुपत भए किनहूं नहिं पेखे ॥१३॥
हे नृप यह अचम्भा नाहीं, शक्ति अनन्त सदा हरि मांहीं ।
यदुकुलमैं हरिको अवतार, अरु करियो नाना व्यौहार ॥१४॥
सो समस्त माया करि जानौ, हरिकी शक्ति होत सब मानौ ।
हरिजी सदा एक रसि रहै, करम न करै जन्म नहिं गहै ॥१५॥
औरै करम करत सब जानै, जनम लियौ हरिजीको मानै ।
ए सब देहनिके व्यौहार, हरिजी इन सबहिनके पार ॥१६॥
जैसे नट बाजी विसतारै, बहुसूं आपहि सकल निवारै ।
बाजीगर सब ही ते न्यारा, यूं हरिके करम अवतारा ॥१७॥
जिन हरि रच्यौ त्रिगुण संसार, नाना भांति प्रगट आकार ।
आप प्रवेश कियो तिन तिनमैं, सब वरताइ विनासै छिनमैं ॥१८॥
अन्ति आपके आपहि रहै, त्यूंही इन अवतारनि गहै ।
गुरुको पुत्र मृतक जिन आन्यौ, काल मृत्युको गरबहि भान्यौ॥१९
ब्रह्म सस्त्रतें तुमहिं बचांयौ, बधिकहि स्वरग सन्देह पठायौ ।
तेजो अपनी रक्षा करते, तो तनकूं काहे परिहरते ॥२०॥
सब जगकी उतपति प्रतिपाल, नास करै जिनको बलकाल ।
ऐसे सकल शक्ति मम देवा, ब्रह्मा आदि करै जो सेवा ॥२१॥

हरिबेकूं धरनीको भार, धरयौ हुतो मानुष अवतार ।
तासूं भूको भार उतारयौ, पीछे उहै दूरि करि मारयौ ॥२२॥
ज्यों कांटो लाग्यो पग माहीं, सो कांटे बिन निकसे नाहीं ।
कांटे कांटो काढ्यौ जबहीं, वहऊ डारि दियो पुनि तबहीं ॥२३॥
त्यूं हरि मृतक देह क्यूं राखै, निजानन्द पद सो क्यू नाखै ।
अरु ऐकैं अति ही अज्ञान, तिनकूं प्रगट दिखायो ज्ञान ॥२४॥
जोग साधि करि राखे देह, पुरुषारथ करि माने ऐह ।
सकल बिकारनको आगार, ताको राखि तजै संसार ॥२५॥
ताते तिनको मोह मिटायो, देह तजे लैं ब्रह्म बतायो ।
ऐसे तनको कियो अनादर, जाते कर न कोई आदर ॥२६॥
ताते हरि बेकुण्ठ पधारे, बाजी ज्यूं देहादि निवारे ।
इन्द्र ब्रह्म रुद्रादिक जेते, देख पयाणहु हरिको तेते ॥२७॥
विसमित भये कृष्ण गुण गावैं, अपने अपने लोकनि जावैं ।
जो यह चरित्र पढ़े उठि प्रात, कृष्णदेवकी निरमल जात ॥२८॥
सो दृढ़ भक्ति कृष्णकरि पावै, जाते कृष्ण लोककूं जावै ।
हरि दारुक द्वारिका पठायौ, सो बसुदेव नृपति पै आयौ ॥२९॥
कृष्णवियोग बिकल अति चित्त, जैसे कृपण गये ते वित्त ।
तिन दोनूंके चरणनि परे, तब सारथी बचन उचरे ॥३०॥
असु प्रवाह चले नैननते, अति व्याकुल कटपट बैननते ।
सब जदुकुलको नास सुनायौ, अरु बलको निरजान जनायौ ॥३१॥
यूं सुनि सो कतपत सब भए, करत बिलाप प्रभा सहि गए ।
तहां जाइ हरिजी नहो देखे, तब बैकुंठ गए करि लेखें ॥३२॥

तब देवकी रोहनी वसुदेव, उग्रसेन राजा नर देव ।
हरिवियोगते उपज्यौ सोक, ताते चहूं तज्यौ नरलोक ॥३३॥
राम कृष्णको इसो वियोग, जातें मिट्यो देह संयोग ।
बल युवती सब लै बलदेह, अगिन प्रवेस कियो अति नेह ॥३४॥
वसुदेवहिं ले षोड़स नारी, कियो सहगवन चिता संवारी ।
प्रदुमनादि जहां लौ जेते, तिनकी त्रियनि लिये सब तेते ॥३५॥
सबहिनके अति कृष्णवियोग, ताते कह्यौ अगनि संयोग ।
हरिकी वधू जहांलौ जेती, रुकमनि आदि सकल मिलि तेती ॥३६॥
हरिको रूप हृदयमें धस्यौ, अगनिप्रवेस सबनि मिलि कस्यौ ।
अर्जुन परम सखा हरिजीको, कृष्णवियोग प्रहारक जीको ॥३७॥
तातें अर्जुन बहु दुख पायो, कृष्ण ज्ञान तब हिरदे आयो ।
गीता माहिं कह्यौ हरि ग्यान, मिथ्या देह सत्ति भगवान ॥३८॥
ऐसो बहुविधि ग्यान विचास्यो, कृष्णवियोग सोक सब टास्यो
आपु आपुमें मारे जेते, अपने बन्धु ग्याति प्रिय तेते ॥३९॥
तिनको जो पिंडादिक दाना, मृतक क्रिया जेती विधि नाना ।
सोई सो अर्जुन सब करी, कृष्ण प्रीतते नहिं परिहरी ॥४०॥
तब द्वारका कृष्ण बिन भई, सायर बोरि पलकमें लई ।
केवल हरिजीके ग्रह तेते, त्योंही रहे सकलई जेते ॥४१॥
नित्य विहार तहां हरिजीको, सुमिरत सुनत उधारन जीको ।
मंगल सकल मंगलनि केरो, त्रिभुवन सुख ही वे चित चेरो ॥४२॥
स्त्री बाल वृद्ध सब जेते, मरत मरत उबरे ते चेते ।
ते अर्जुन निज भवनहिं लाये, समाचार पांडवनि सुनाये ॥४३॥

तुम्हरे सकल पिता मह जेते, कृष्ण पयानहिं सुन करि तेते ।
तुमही बलधर राजा कीन्हौं, मथुरा तिलक बज्र को दीन्हौं ॥४४॥
ते सब तजि उत्तर दिशि गये, कृष्णहिं सेइ कृष्णमय भये ।
जो यह हरिजीको अवतार, जामे कमरु गुण विस्तार ॥४५॥
तिनको कहे सुने नर जोई, सब पापनिते छूटे सोई ।
या विधि हरिजीके अवतार, बालापनते कम अपार ॥४६॥
लोक वेदमें प्रगटे जेते, गाव सुनैं विचारैं तेते ।
तब ते लहैं परम आनन्द, मिलैं कृष्ण छूटे दुख द्वन्द ॥४७॥

दोहा—

यह हरिको अवतार मैं, तुमसूं कह्यौ सुनाइ ।
याकूं कहि सुनि सुमिर नर, नारायण पे जाइ ॥४८॥

चौपाई

ब्रह्म निरीह निरंजन स्वामी, सकल लोकके अन्तर्यामी ।
भक्तन हेत धरैं अवतार, नाना भांति करै उद्धार ॥४९॥
तिनमें कृष्ण स्वयं भगवान, ज्ञान क्रिया सब सक्ति प्रधान ।
जिनके गुननि कह्यौ सुखदेव, सुनत तस्यौ परीक्षत नरदेव ॥५०॥
जिनको नाम लिये भव नाहीं, लै करि राखे निज पद माहीं ।
ऐसे कृष्ण सन्तनको वित्त, नमस्कार तिन प्रभुको नित्त ॥५१॥
ते अब सन्तदाससे नाम, देहु धरे जीवनिके काम ।
कृपानिधान भक्ति करवावै, अपनी भक्ति हृदयमें ल्यावै ॥५२॥
ऐसी विधि भव दुःख मिटावै, अपने परम पदहिं पहुंचावे ।
कृष्ण रूप तिन ज्ञान सुनायौ, उधव जन निज पद पहुंचायौ ॥५३॥

सो लै कह्यौ संस्कृत व्यास, ताते होय न अरथ प्रकास।
सो पंडित जानै पै सोई, दूजो कहे न जानै कोई ॥५४॥
ताते अब तिन करुणा कीन्हीं, मो सेवक कूं आज्ञा दीन्हीं।
सब लोकनिको हित मन धारी, मम उर ह्वै भाषा बिसतारी ॥५५॥
याको बांचे सुनै सुनावै, ध्यान करै ऊंचे स्वर गावै।
तेते लहैं ज्ञान बैराग, प्रेम भक्ति हरिको अनुराग ॥५६॥
प्रेम प्रवाह मगन नित रहै, भव दावानल कहे न दहै।
ऐसे ह्वै करि ब्रह्म समावै, तजि आनन्द जगत नहिं आवै ॥५७॥
कबहूं करै कामना कोई, याते लहै सकल सो सोई।
ताते जे जे होहिं सकाम, अरु जे बड़ भागी निःकाम ॥५८॥
तिन सबहिनको भाषा येह, मुक्तिरु भुक्ति भक्तिको गेह।
ताते यासों कीजे प्रीती, यहै सकल सन्तनकी रीती ॥५९॥
शुभ सम्वत् सोलह सौ बावन, जेष्ठ शुक्ल षष्ठी अति पावन।
सन्तदास गुरु आज्ञा दीन्हीं, चतुरदास यह भाषा कीन्हीं ॥६०॥

दोहा

प्रेम ज्ञान प्रगटन कर्यो, मम घट ह्वै निज भेव।
ते मेरे उर नित बसैं, सन्तदास गुरुदेव ॥६१॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादस स्कंधे श्रीसुकदेव परीक्षित सम्वादे भाषायां श्रीकृष्णदेव वैकुण्ठ प्रयाणो नाम इकतीसमोऽध्यायः ॥३१॥ इत्यलम्।

॥ शान्तिः ॥ ॥ शान्तिः ॥ ॥ शान्तिः ॥

नोटः—उक्त महात्माजीद्वारा लिखित महाभारत इतिहास संशोधनके साथ जो कि हिन्दी साहित्य-सुमनोंमें एक अपूर्व सुमन होगा पाठकोंकी सेवामें प्रकाशितकर शीघ्र प्रेषित किया जायगा।

भवदीय—
प्रकाशक।